देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
September 2025
Vol.-22, Issue-3

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

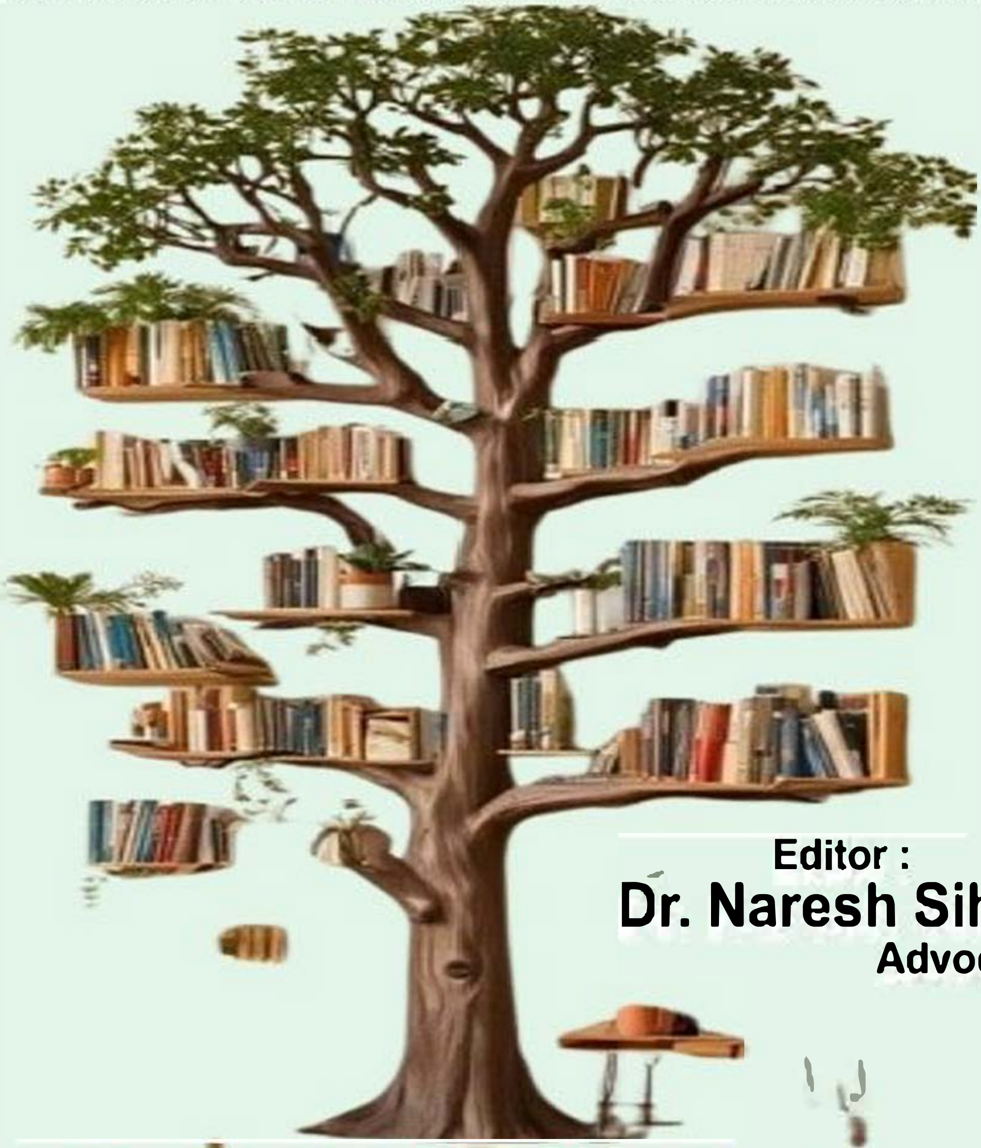

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-3 (सितंबर 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमणिका -सितंबर 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10 -10
2.	संत साहित्य की दार्शनिक अभिव्यक्ति: संत रज्जब के विशेष सन्दर्भ में	सुनाली बरगोहाँइ	11-16
3.	"महादेवी वर्मा के काव्य में स्त्रीमन"	शाइस्ता सना	17-21
4.	विद्यालयी शिक्षा में चित्रकला कला शिक्षा की आवश्यकता	सितेंद्र रंजन सिंह	22-26
5.	सांप्रदायिकता के दौर में 'वे वहाँ कैद हैं' उपन्यास	Anu B Babu	27-29
6.	झारखंड के हस्तशिल्प: परंपरा, पहचान और रोजगार का प्रतीक	समरेंद्र रंजन सिंह	30-31
7.	विद्यालयों में ड्रॉप आउट के कारण और उपाय	राजीव प्रियदर्शनम	32-36
8.	IMPACT OF EARLY ENTERAL NUTRITION ON POSTOPERATIVE RECOVERY IN CRITICALLY ILL GASTROINTESTINAL SURGERY PATIENTS	Rakesh Ranjan, Sanjay Kumar Mishra, Ranjay Kumar Kanoujiya, Sujoy Roy	37-44
9.	MITHILA PAINTING : THE RAINBOW OF ART	SABHYATA RANI SINGH	45-48
10.	स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन और नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में समानताएँ	अपराजित भारती	49-55
11.	Growing Industrialization and changing Land Use Land Cover Pattern In Nainital District	Aprajit Puri	56-60
12.	ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण की भूमिका	भूपेंद्र कुमार, डॉ० सरिता कुमारी	61-64
13.	'वत्सला' में मानवीय संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	संदीप कुमार	65-69
14.	WOMEN SECURITY INITIATIVES IN KERALA: A CASE STUDY ON PINK POLICE	Keerthi P R	70-74
15.	ਮੇਲਾ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ: ਬੁਲੰਦ ਦਾ ਧਾਰਮਿਕ ਪਿਛੋਕੜ	ਡਾ. ਮਾਈਵਲ ਖਿੰਦੋ	75-79

16.	తిక్కన మహా భారతం - కవితా శిల్పం	డా.పసుప్పులేటి నాగమల్లిక,	80-84
17.	भारतीय ज्ञान परम्परा और हिन्दी साहित्य : भक्तिकाल के आलोक में	डॉ० डी० सी० पाण्डेय, डॉ० महेश चन्द्र शर्मा	85-90
18.	हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा विश्लेषण	डॉ. राजेश कुमार मिश्रा	91-92
19.	अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में गिरमिटिया स्त्रियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. सीमा दास	93-96
20.	तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त वृद्धों का प्रवासी जीवन	सपना दास	97-100
21.	हिमाचल प्रदेश की हिन्दी कविता में अभिव्यक्त लोक संस्कृति	अक्षय कुमार	101-106
22.	2024 के संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव व उसके चुनावी मुद्दे	प्रियंका चौहान	107-111
23.	भारतीय लोकनाट्य परंपरा का विकास एवं आधुनिक परिदृश्य	Dr. Rakesh Ranjan	112-115
24.	हिंदी साहित्य की गद्य विधा में उपन्यास : उद्भव और विकास	आविर्भाव शर्मा	116-119
25.	गीतांजलि श्री के 'माई' उपन्यास में स्त्री विमर्श	कु० खुशी श्रीवास्तव	120-122
26.	मोहन राकेश के नाटक और स्त्री पात्र विश्लेषण	प्रा. डॉ. गायके मुंजाजी मारोतराव	123-125
27.	रामवृक्ष बेनीपुरी के काव्य संग्रह 'नया आदमी' का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण	मधु कुमारी	126-132
28.	Role, Function, and Grammatical Significance of Anubandhas: Pāṇinīya Dhātupāṭha vs. Kavikalpadruma	Dr. Ahasena Begum,	133-138
29.	पौराणिक आख्यानों पर आधारित नरेंद्र कोहली के उपन्यासों की प्रासंगिकता	आयुष तिवारी डॉ मनोज कुमार पांडेय,	139-141
30.	'सोशल मीडिया का छात्रों पर पड़ता प्रभाव'	सोनाली अवसरमोल	142-145
31.	भारतेन्दु और हिन्दी नवजागरण	डॉ. सुनीता राठौर	146-149

32.	कनुप्रिया रचना में मूल्य संवेदना	डॉ. श्रीदेवी. एस	150-152
33.	असम के उजापालि नृत्य का संक्षिप्त परिचय	परीक्षित नाथ	153-156
34.	স্বামী বিবেকানন্দের ভাবনায় বেদান্ত ও তার প্রাসঙ্গিকতা	ড. উত্তম পালুয়া	157-166
35.	सोशल मीडिया में हिन्दी की उड़ान	डॉ० डी० सी० पाण्डेय	167-172
36.	भारत एवं नेपाल के किन्नर समुदाय की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता कुमारी	173-177
37.	डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल की दृष्टि में भारतीय चित्रकला	प्रियंका कुमारी गर्ग	178-181
38.	आधुनिक भारतीय समाज में महिलाऐं	डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव	182-185
39.	आधुनिक हिंदी उपन्यासों में विवाह और स्त्री की नई पहचान	पिंकी	186-188
40.	भारतीय ज्ञान और विज्ञान परम्परा : सातत्य एवं विकास	डॉ. केशव लुइटेल	189-197
41.	आज के परिवेश में पत्रकारिता की दशा और दिशा	डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव	198-201
42.	आधुनिकीकरण में संवेदनाओं का क्षीण होना	डॉ. कृष्ण कान्त भट्ट	202-203

संपादकीय

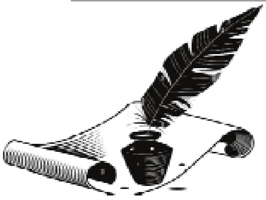

शोध की पहली शर्त: अज्ञात को ज्ञात कराना अथवा पहले से ज्ञात विषय को आगे बढ़ाना

मानव सभ्यता के विकास की यात्रा में ज्ञान की खोज सबसे महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति रही है। आदिकाल से ही मनुष्य ने अपने आस-पास के परिवेश, प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड को समझने का प्रयास किया है। इस समझ को व्यवस्थित और प्रमाणित रूप देने की प्रक्रिया को हम **शोध** या **अनुसंधान** कहते हैं। शोध की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं, परंतु उसका मूल उद्देश्य दो ही हैं—

1.अज्ञात को ज्ञात कराना – अर्थात जो तथ्य, सिद्धांत, घटना या संबंध अभी तक मानव ज्ञान की परिधि में नहीं है, उसे खोजकर सामने लाना।

ये सभी खोजें ऐसे तथ्यों को सामने लाती हैं जो पहले अज्ञात थे, और जिन्होंने मानव सभ्यता की दिशा बदल दी।

2. पहले से ज्ञात विषय को आगे बढ़ाना – अर्थात पूर्व में प्राप्त ज्ञान को और गहराई, विस्तार, परिशुद्धता या नये दृष्टिकोण के साथ विकसित करना।

ये सभी खोजें ऐसे तथ्यों को सामने लाती हैं जो पहले अज्ञात थे, और जिन्होंने मानव सभ्यता की दिशा बदल दी। इस प्रकार, ज्ञात विषय को आगे बढ़ाने का अर्थ है—पहले से मौजूद ज्ञान को परिष्कृत करना, नयी परिस्थितियों में उसकी प्रासंगिकता जाँचना, और उसके अनुप्रयोगों का विस्तार करना।

शोध की आवश्यकता और प्रासंगिकता

1. मानव ज्ञान का विकास – प्रत्येक नयी खोज और विस्तार हमें सत्य के और करीब ले जाती है।

2. समस्या-समाधान – अज्ञात कारणों की पहचान और ज्ञात तथ्यों के अनुप्रयोग से समस्याओं का समाधान।

3. नवाचार और प्रौद्योगिकी – विज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में नए आयाम।

4. संस्कृति और इतिहास का संरक्षण – अज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों की खोज और ज्ञात परंपराओं का संरक्षण।

शोध का उद्देश्य केवल 'नया' करना नहीं है, बल्कि 'सार्थक' नया करना है। कई बार अज्ञात को ज्ञात कराना कठिन और समयसाध्य होता है, इसलिए शोधकर्त्ता ज्ञात विषय पर नये दृष्टिकोण के साथ कार्य करता है। यह दोनों प्रक्रियाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं—

- अज्ञात को ज्ञात कराने से शोध में मौलिकता आती है।
- ज्ञात विषय को आगे बढ़ाने से शोध में निरंतरता और प्रासंगिकता बनी रहती है।

निष्कर्ष

शोध का मूल तत्व है—ज्ञान की सीमाओं का विस्तार। चाहे वह अज्ञात तथ्यों की खोज हो या ज्ञात विषय का उन्नयन, दोनों ही शोध की अनिवार्य शर्तें हैं। यही कारण है कि शोधकर्त्ता को सदा जिज्ञासु, विश्लेषणशील और नवीन दृष्टिकोण से युक्त रहना चाहिए। "अज्ञात को ज्ञात कराना अथवा ज्ञात को आगे बढ़ाना" केवल एक परिभाषा नहीं, बल्कि शोध की आत्मा है।

सादर,

डॉ.नरेश सिहाग 'एडवोकेट'

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 11-16
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संत साहित्य की दार्शनिक अभिव्यक्ति: संत रज्जब के विशेष सन्दर्भ में

सुनाली बरगोहाँइ
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय तेजपुर, नापाम सोनितपुर, असम 784028

शोध सार: भक्ति एक प्रकार से प्रेम और श्रद्धा की सर्वोत्तम अवस्था है। ईश्वर के प्रति जन्में हुए प्रेम जब प्रबल हो उठती है तब प्रेम भक्ति की अवस्था को प्राप्त करती है। ईश्वर की अलौकिक अस्तित्व ही भक्ति के प्रादुर्भाव का कारण है। भक्त इस अलौकिक शक्ति के अस्तित्व को मानते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ और सर्वशक्तिमान के रूप में स्वीकार करते हैं। ईश्वर के शक्ति के अनुरूप ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परिचालित है। भक्तिकालीन संत कवि भी इस विचार को साथ लेकर ही भक्ति की राह पर निकल पड़े। संत कविओं का मूल उद्देश्य था ब्रह्माण्ड के अलौकिक शक्ति को हृदयंगम करते हुए जीवन और जगत के सार को समझना। संतो की हमेशा यह कोशिश रही है कि अपने विचारों के द्वारा आत्मा] जड़] जगत आदि के रहस्यों को स्पष्ट करने के साथ ही समाज में उच्च मानवीय आदर्श को प्रतिष्ठित कर सके। यह शोध आलेख ज्ञात और अज्ञात रूप में हमारे समक्ष उपस्थित चींजो के प्रति संतो की दृष्टि या विचारों की एक प्रस्तुति है।
बीज शब्द: दर्शन, भक्ति, संत, ब्रह्म, जीव, जगत, माया।

दर्शन शब्द का सामान्य अर्थ है देखने की प्रक्रिया। अर्थात किसी विषय के प्रति तात्विक रूप में विवेचन करना। व्यक्ति प्रत्यक्ष दृष्टि से जीवन शैली और तत्वों को अनुधावन करके नए तरीके से जीवन को प्रतिपादित करते हैं। जीवन को प्रत्येक व्यक्ति पृथक दृष्टि से देखने और समझने की प्रक्रिया में स्वत: ही दार्शनिकता को जन्म देते हैं। अन्य एक अर्थ में दर्शन वो है जिसके द्वारा देखा जाए या ज्ञान प्राप्त किया जाए। काव्य और दर्शन साहित्य के क्षेत्र में हृदय और मस्तिष्क की भुमिका निभाते हैं। दर्शन यदि प्रत्यक्ष ज्ञान की समीक्षा है तो काव्य जीवन की अनुभूति की समीक्षा है। जीवन में घटित तथ्यों का तर्क संगत व्याख्या दर्शन है और काव्य जीवन की वह अभिव्यजंना है जिसमें रमणीयता विद्यमान होती है। एक में भाव की प्रधानता होती है तो दूसरे में विचार की। परन्तु प्रकट करने की पद्धति अलग होने के बावजुद उद्देश्य एक ही है और वह है-जीवन की सिद्धि। संतों ने भी जीवन के सहज ज्ञान को काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है जो कि दार्शनिक विचार बनकर व्यवहारिकता को लिए हुए लोकजीवन में खड़ी उतरी है। भक्तिकालीन काव्य संवेदना को साथ लेकर ही दर्शन की ओर अधिक उन्मुख होती है। भक्तिकाव्य का प्रत्येक पद जीवन के विविध दर्शन को प्रस्तुत करती है। एक प्रकार से कह सकते हैं कि भक्तिकाव्य जीव और जगत की दार्शनिक अभिव्यक्ति है।

संत शब्द का अर्थ सद आचरण वाले व्यक्ति के तात्पर्य में लिया जाता है। गम्भीर और शांत स्वभाव का व्यक्ति जो समाज का हित चिंतन करता है] संत कहलाने के योग्य है। मानक हिंदी कोश में "संत का अर्थ साधु] विरक्त या त्यागी

पुरुष] परम धार्मिक और साधु व्यक्ति के रूप में उल्लेख है।"[१] तुलसीदास के रामचरितमानस के बालकाण्ड, अरण्यकाण्ड और उत्तरकाण्ड में संत की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। बालकाण्ड में तुलसीदास कहते हैं-

"साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जस पावा ।।"[२]

अर्थात संत का व्यक्तित्व कपास के समान शुभ होता है। उनका हृदय सभी अज्ञानता और पापों से रहित गुणों से युक्त होता है। इसी क्रम में परशुराम चतुर्वेदी अपनी पुस्तक में संतो के विषय में वर्णन करते हुए लिखते हैं- "जो सत्य स्वरूप सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वही संत है।"[3] परवर्ती समय में आधुनिक समीक्षा के क्षेत्र में संत शब्द का प्रयोग निर्गुण उपासक के अभिप्राय में होने लगा। इसी दृष्टि को अपनाते हुए भक्तिकालीन काव्य को सगुण और निर्गुण तथा निर्गुण को पुन: संत और सूफी काव्य के रूप में विभाजित किया गया। संत साहित्य भारतीय समाज के इतिहास और संस्कृति की यथार्थ छबि है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक महत्व को अटूट रखते हुए जीवन-जगत संबंधी वैचारिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है। भारतीय दार्शनिक चिंतन का मूल तत्व हैं- ब्रह्म, जीव, जगत और माया। भक्तिकालीन संत कवियों ने भी भक्ति और ज्ञान में सामन्जस्य स्थापित करते हुए दर्शन के इन तत्वों को काव्यात्मकता के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

भारतीय आध्यात्मिक समाज में 'ब्रह्म' का अनेक नाम उपयोग में हैं। राम, अल्लाह, ब्रह्म, ईश्वर, खूदा इत्यादि अनेक ऐसे नाम हैं। परंतु सत्य ही इसका पहचान है। सत्य के द्वारा ही जीवन तथा संसार की वास्तविकता प्रकट होती है। ब्रह्म सत्य के रूप में सदैव ही इस संसार में व्याप्त है। संत रज्जब ब्रह्म के निराकार रूप को उपस्थापन करते हुए ब्रह्म को सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता के रूप में स्थापित करते हैं। रज्जब कहते हैं 'ब्रह्म' काल तथा स्थान आदि से रहित है। उनका अस्तित्व प्रत्येक प्राणी में हैं। किसी प्रकार के भार या दुख को अनुभव किये बिना ही संसार के प्रत्येक कण में प्रतिबिम्बित है-

"दरपन मैं दीस सब देसा, ताकूं भार नहीं दुख लेसा ।
यूं गुण रहित स अंतरजामी, ता माहां खेलै सब कामी ।।"[4]

संत रज्जब संसार के सृष्टि कर्ता को परम सत्य मानते हुए अवतार को केवल कार्य के रुप में प्रतिष्ठित किए हैं। सृष्टि के आरम्भ से अंत तक का सबका कारण परमब्रह्म है, अवतार कार्य के रुप में केवल जरिया मात्र है –

"सब कारन आदि नरायन, कारज मैं औतार ।
रज्जब कही बिचार करि, तामै फेर न सार ।।"[5]

रज्जब निर्गुण में सगुण की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं। निर्गुण की उपासना में सगुण की प्राप्ति है। आकाश रूपी निर्गुण परमात्मा में ही बादलों की तरह सगुण ईश्वर का आविर्भाव होता है-

"औतार सु आभौ की कला, सरगुन निरगुन मांहि।
आदिनराइन सुन्नि समि, लिपै छिपै सो नांहि।।"[6]

मनुष्य हो या अन्य किसी भी प्राणी के जड़ शरीर को चालित करने वाला तत्व ही जीव है। आध्यात्मिक रूप में इसे आत्मा कहा जाता है। आत्मा नित्य मुक्त तथा सर्वव्यापी और चैतन्यस्वरूप है। भारतीय विचारकों ने आत्मा को अमर और अविनाशी माना है। वे आत्मा को सदैव स्वप्रकाशमान और निर्विकार कहते हैं। संत रज्जब अद्वैतवाद को मानते थे। उनके अनुसार ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं है। ब्रह्म और जीव में अंतर का मूल कारण है अज्ञानता। मनुष्य

माया से वशीभुत होकर दृश्यमान जगत में ही लीन रहता है। अज्ञानता के कारण ब्रह्म का आभास हुए बिना ही ब्रह्म से दूर होने लगता है-

"रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता, जिता जिता अज्ञान।
ै नाँहीं निर्णय भया, परदे का परमान ॥"[7]

जिस प्रकार अपने पंख निकलने तक अनल पक्षी की गति नीचे की ओर रहती है तथा पंख निकलते ही वह ऊपर की ओर गति करने लगती है। उसी प्रकार ब्रह्म के ज्ञान के बिना मनुष्य अंधकार की ओर बढ़ता है। एकमात्र ज्ञान का अनुभव होने के साथ ही वे ब्रह्म में समाहित हो जाते हैं। रज्जब का कहना है जीव उस अंडे के समान है जो ज्ञान के अभाव में धरती पर पड़ा रहता है और पंख आने पर उड़ने लगता है। जीव माया रूपी सुख से आसक्त होकर धरती में ही निवास करता है। ज्ञान के द्वारा सुख की आसक्ति से मुक्त होकर ब्रह्म के निवास तक पहुँचता है-

"अंडा अवनि न छांड़ई, बिना पंष परगास।
रज्जब रहसी रज पड़चा, गम्म न गगन निवास ॥"[8]

रज्जब के अनुसार प्रत्येक शरीर में ब्रह्म ही जीव के रूप में प्रतिबिम्बित है। जीव संसार की समस्त माया से आच्छादित होने के कारण अविद्या और अज्ञानता से पीड़ित है। शरीर के आश्रय में स्थित जीव के कष्टों का मूल कारण रज्जब अविद्या और अज्ञान को मानते हैं। भक्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति से ही अज्ञानता की समाप्ति होती है और जीव मुक्त होकर ब्रह्ममय हो जाता है। ज्ञान ही माया से निस्तार का एकमात्र साधन है।

जगत की सृष्टि भगवान के लीलाओं का ही एक रूप है। इस जगत को वस्तुत: मिथ्या के रूप में माना जाता है। परंतु रामानुजाचार्य जगत की सृष्टि को सत्य मानते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जगत की सृष्टि ब्रह्म की भाँति ही सत्य है। जीव पर जब तक माया का आवरण रहता है तब तक जगत का अस्तित्व रहता है। माया का आवरण हट जाने पर जगत और सांसारिक रिश्तों का मोह निष्काम होने लगता है। जगत के आदि और अंत सदैव अज्ञात ही रहा है। इस जगत के रहस्य को यथावत उसके सृष्टिकर्ता को ही ज्ञात है। जगत अपार है, अतः उसके रहस्य का पूर्णतः उद्घाटन कर पाना असंभव है। गुरू नानकदेव के अनुसार जगत एक स्वप्न के समान है, जहाँ परमात्मा खेल की बाजी लगाकर क्षणमात्र के लिए खेल खेलाते हैं-

"जगु सुपना बाजी बनी खिन महि खेलु खेलाइ।"

नानक कहते हैं कि यह सारा जगत काजल की कोठरी समान है जिसमें व्यक्ति के तन, मन और जीवन राख की तरह काले हो गए हैं। संसार या जगत की पूरी सृष्टि को झूठा अथवा मिथ्या कहा गया। मिथ्या से अभिप्राय है कि वह नश्वर और क्षणभंगुर है, शाश्वत नहीं। जीवन के अन्त में मनुष्य हो या जगत की सृष्टि सभी परमात्मा में ही एकाकार हो जाती है।

असमिया समाज और संस्कृति में भक्ति की धारा को प्रचारित करने वाले श्रीमंत शंकरदेव जगत का निमित्त और उपादान कारण ब्रह्म को मानते हैं। ब्रह्म ही जगत को प्रकाशित करता है और इसीलिए जगत का अस्तित्व मिथ्या नहीं, सत्य है। शंकरदेव जगत को सत्य मानना अधिक संगत समझते हैं। घट के टूट जाने से जैसे घट के भीतर का आकाश बृहदाकाश में समा जाता है, वैसे ही प्रलय के समय जगत ब्रह्म में विलीन हो जाता है। शंकरदेव के अनुसार जगत माया से निर्मित है। महाप्रलय के समय पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत में, महत प्रकृति में और प्रकृति पुरूष में सिमट जाता है और अन्त में एकमात्र पुरूष अर्थात ईश्वर रह जाता

है। लोक और प्रकृति के साथ माया भी ईश्वर में ही लीन हो जाता है। शंकरदेव के अनुसार ईश्वर की ईच्छा से ही जगत की सृष्टि हुई है।

संत रज्जब जगत की सृष्टि को स्वत:पूर्ण मानते हैं। प्रथमावस्था में स्वत: ही इसकी उत्पत्ति होती है जो बाद के अवस्था में बीज के रूप में यह प्रक्रिया चलती रहती है। बीज के द्वारा शरीर की उत्पत्ति के बाद परमात्मा के द्वारा आत्मा रूपी वित्त का शरीर संचार होता है –

"ज्यों जल बीरज जलचर हुँ, अवनि अठारह भार ।
पीचैं बीरज बीज तैं, यहु मत मूल विचार ॥
ज्यों ओले सब अंभ तैं, त्यों पाणी करि पिंड ।
रज्जब उपजे आप सौं, अजों सु तिन के अंड ॥
जन रज्जब आत्मा अवलि, यहु वित अविगत दीन ।
और तत्त्व तत्त्वों भये, करनहार यूँ कीन ॥"[९]

दैनंदिन जीवन में हमारे सम्मुख आने वाले सभी प्रकार के प्रलोभन को माया कहा जा सकता है। नारी, स्वर्ण, धन और ऐसे अनेक प्रकार के मानसिक विकार माया है। माया से वशीभूत जीवन में चिंता, कष्ट, पारस्परिक संघर्ष और अशांति बढ़ जाती है। संत कवियों ने माया को कई रूपों में देखा है। माया तत्व का वर्णन करते हुए संतों ने कहा है कि माया विश्व मोहिनी सुंदरी के रूप में है जिसका स्वभाव है सबको प्रलोभन देना। व्यक्ति इसका त्याग करने की कितनी भी कोशिश करे, पर उससे मुक्त होना कष्टकर होता है। माया हमेशा मनुष्य के जीवन में व्याप्त रहता है। कभी माता-पिता, कभी स्त्री या पुत्र, कभी आदर या मान तो कभी जप-तप के रूप में बाँधे रखती है। माया परमात्मा की प्रेरणा से ही अपना कार्य करती है। परमात्मा ही माया का पालन एवं संहार करती है। इस संसार को माया के बंधन से परमात्मा ही परिचित कराता है। इसीलिए माया से केवल परमात्मा ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।

संतों ने माया को अत्यंत कठिन माना है। कबीर माया को 'महाठगनी' कहते हुए समस्त सृष्टि में इसकी उपस्थिति को मानते हैं। तो वहीं गुरु नानक देव मानव मन के अहंभाव को माया का प्रतीक मानते हैं। जीव की अज्ञानता पर खेद प्रकट करते हुए नानक कहते हैं कि प्राणी माया के धोखे में वास्तविक राग से ध्यान भटकर मिथ्या सांसारिक रंगों में खोए रहते हैं, यह जीव की अज्ञानता का ही परिणाम है। भक्ति और उसके साधनावस्था से ही माया नामक तत्व से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। शंकरदेव मानते हैं कि भक्ति के मार्ग में आने वाले समस्त विरोधी तत्व या विषय माया है-

"भक्ति विरोधी विषय सब माया"।

माया जीव और ब्रह्म के मिलन का एकमात्र बाधक तत्व है। मनुष्य का मन माया के कारण ही संसार के सब प्रलोभन जैसे आनंद, भोग-विलास, दुष्कर्मों और विषयवासनाओं में लिप्त रहता है। अविद्या के कारण ही मनुष्य बाहरी छल-कपट और बुराई के जाल में फँस जाता है। अपने आपको संतुष्ट अनुभव करता है। रज्जब मन को आकाश और माया को बादल के साथ तुलना करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बादल आकाश का परित्याग नहीं कर सकता वैसे ही माया भी मन को घिरे रहती है। माया मन से कभी दूर नहीं होती-

"जन रज्जब मन सुन्नि समि, बादल मैं सु बिभूति ।
सरगुण निरगुण संगि सों, क्यूं काढिये सु सूति॥"[10]

माया छल करके सर्पिनी की तरह मन को अपने में बाँधकर रखती है। मन में यदि खोट, वासना, दुष्टता हो तो माया से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। मन और माया दो ऐसे तत्व है जो जीव को हमेशा फाँसने का कार्य करते हैं। मन

आंतरिक दुश्चेतनाओं से तो माया बाहरी, मिथ्या और अस्थायी आकर्षणों से व्यक्ति को फाँसते हैं। मन को संयमित करना ही माया से निस्तार का वास्तविक उपाय है। रज्जब कहते हैं जैसे बिना जल के मछली नहीं रह सकती वैसे ही माया के बिना मन नहीं रह सकता-

"रज्जब रिधि बाहिली रमत ही, जीव माहिला जाइ।
तौ मन माया मीन जल, नर देखौ निरताइ ॥"[11]

रज्जब माया का सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही गुणों को देखते हैं। माया अगर बाँधती है, तो तारती भी है। वह नरक तक पहुँचने का सीढ़ी भी है, स्वर्ग का विमान भी। अर्थात् माया समस्या भी है और उसका समाधान भी। जो ज्ञानी इस रहस्य को समझ पाये वो अपने ज्ञान के माध्यम से माया से मुक्ति लाभ कर ब्रह्म में समा सकते हैं।

"माया बेड़ी बेड़ी माया, हरि सिध्दि का भेद सु पाया।
नरक नसेणी स्वरगि बिमान, रज्जब रिधि के दोय बखान ॥"[१२]

संत परम्परा अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक थे। इसीलिए वे अपने विचारों में किसी एक धर्म विशेष के अनुयायी के रूप में कार्य नहीं किए। इन्होंने इस्लाम से एकेश्वरवाद, वेदांत से ब्रह्म और जीव की एकता तथा मायावाद, सुफीओं के प्रेम साधना और वैष्णवों से जीव दया और भक्ति आदि को ग्रहण किया। संत रज्जब भी संतों के इसी विचार और परिवेश का अनुकरण करते हुए आगे बढ़े। उन्होंने भक्ति और दार्शनिक विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करते हुए अपने काव्य के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किये। उन्होंने अपनी भक्ति में सगुण एवं निर्गुण में भी समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया परंतु निराकार ब्रह्म को ही सर्वोपरि माने।

मध्यकालीन संतों का मुख्य उद्देश्य कविता लिखना नहीं था अपितु भगवतभक्ति का प्रचार व कुरीतियों का निराकरण था। अनुभूतियों की तीव्रता और अभिव्यक्ति की अकृत्रिमता के कारण मध्यकालीन संतों की वाणियाँ जनमानस के हृदय को छू गई। संतों ने अहिंसा, प्रेम और मनुष्य मात्र की समानता के सिद्धांतों का प्रचार किया। कहा जा सकता है कि वे केवल विचारक नहीं थे, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में पथ-भ्रष्ट और त्रस्त विश्व मानव का मार्ग प्रदर्शनकारी थे। रज्जब के आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन का लक्ष्य था पीड़ित मानव को उचित मार्ग का संकेत देना। अंत में कह सकते हैं कि रज्जब परम-आध्यात्मिकता के साथ-साथ दार्शनिकता के भी अध्यापक थे जो लोकनायक, सुधारक, समन्वयवादी व्यक्तित्व को लिए संत काव्य परम्परा में प्रतिष्ठित हुए।

संदर्भ ग्रंथ:

१. मानक हिंदी कोश(पाँचवाँ खण्ड), सं. रामचन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९६६, पृ. २१८

२. रामचरित मानस, बालकाण्ड, तुलसीदास, गीता प्रेस, पृ. २०

३. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, २०१९, पृ.१४

४. रज्जब बानी, डॉ. व्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. ४८५

५. वही, पृ. १११

६. वही, पृ. ११०

७. संत रज्जब, डॉ. नंदकिशोर पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, २००७, पृ. ११६

८. रज्जब बानी, डॉ. व्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. २२५

९. संत रज्जब, डॉ. नंदकिशोर पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, २००७, पृ. १२१

१०.रज्जब बानी, डॉ. व्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. २२९

११.वही, पृ. २२८

१२.वही, पृ. २२६

सहायक ग्रंथ:

१. संत रज्जब अली: वाणी और विचार, डॉ. रमेशचंद्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली-२००२

२. श्रीगुरु ग्रंथ दर्शन, डॉ. जयराम मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद- १९६०

३. शंकरदेव-साहित्यकार और विचारक, डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

संपर्क: 6901384468 sunaliborgohain09@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 17-21
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

“महादेवी वर्मा के काव्य में स्त्रीमन”

शाइस्ता सना
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

शोध-सार:- वेदना-करुणा से परिपूर्ण काव्य की रचना करने वाली महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य के छायावाद काल की कवयित्री तथा उत्कृष्ट काव्य लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है, संस्मरण और रेखाचित्र इनके काव्य लेखन का प्रिय विषय माना जाता है, अगर देखा जाए तो इनके काव्य का विश्लेषण करते हुए स्त्री के विभिन्न अनुभूतियों का परिचय मिलता है, महादेवी की कविता में दुःख और करुणा का भाव प्रधान माना जाता है। वेदना के विभिन्न रूपों की उपस्थिति उनके काव्य की प्रमुख विशेषता कही जाती है। वह यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करती कि स्त्री **‘नीर भरी दुःख की बदली’** के समान है। वस्तुतः समूचा छायावादी काव्य ही व्यक्तित्ववाद का प्रभाव लेकर चला और वहाँ उनके आत्माभिव्यक्ति को सहज स्थान मिला। उनकी कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति, दुःखवाद की अधिकता और भावुकता विशेष रूप से विद्यमान है। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, श्रृंखला की कड़ियां जैसी रचनाओं के माध्यम से महादेवी वर्मा जी ने भारतीय स्त्री के जीवन के अनदेखे पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसलिए स्त्री-विमर्श, स्त्री-चेतना, स्त्री-मन के सन्दर्भ में इनकी रचनाओं का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है।
बीज शब्द:- महादेवी वर्मा, स्त्री-चेतन, स्त्री-मन, दुःख-पीड़ा, वेदना, संघर्ष, जागरूकता

मूल आलेख :- महादेवी वर्मा को नारी चेतना, नारी-मन की भारतीय परम्परा पर विचार करने वाली प्रमुख विचारक कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके विचार रेखाचित्र से होकर श्रृंखला की कड़ियां बनकर हमारे सामने उभरकर ऐसे आते हैं जैसे घटना आंखों के सामने घटित हो रही हैं। सदियों से चली आ रही समाज की व्यवस्था में स्त्री की एक निश्चित भूमिका थी, और वही उसकी मानसिक संरचना भी। महादेवी ने इसी भूमिका को लेकर उसके हर पक्ष की माँग की। उनका यह मानना था कि स्त्री और पुरुष के बीच मानसिक या शारीरिक भेद किसी भी श्रेष्ठता की मांग नहीं करता और न ही उसके किसी हीनता का विज्ञापन भी। उन्होंने स्त्रियों की इसी दशा को लेकर उनके हर पहलुओं पर चर्चा करते हुए उसपर चिंतन भी किया। हिंदी साहित्य के इतिहास में स्त्रियों की दीन-दशा पर महादेवी वर्मा ने जो कार्य किया आज के इस युग में उसकी संकल्पना करना बहुत ही कठिन कार्य होगा। स्त्री-विषयक चिन्तन पर महादेवी जी ने अपना सारा जीवन गुजार दिया। वह अपनी आखिरी सांस तक स्त्रियों के हितों की रक्षा के लिए कार्य करती रहीं। वह खुद स्त्री होने के नाते स्त्री की पीड़ा को भली-भाँति जानती और समझती थी।

महादेवी वर्मा व्यापक सृष्टि के पक्ष में अपने स्वयं के दुःख,अपनी वेदना को भी तिरोहित करने को तैयार रहती है। एक कविता में वह कहती हैं कि :-

छिपा कर उर के निकट प्रभात,
गहनतम होती पिछली रात;
सघन बारिद अम्बर से छूट,
सफल होते जल-कण में फूट।[1]

उनके काव्यलोक में वेदना की परिणति आनन्द के रूप में होती है। कवियित्री दुःख और पीड़ा के बोझ तले घुट-घुटकर सिसकती नहीं, अपितु निरन्तर बढ़ते हुए आनन्द भाव की ओर लगातार उन्मुख होती रहती है। महादेवी वर्मा अपने निबन्धों के माध्यम से स्त्रियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों का विरोध ही नहीं करती वरन् समाज की उन रूढ़िग्रस्त मान्यताओं पर भी प्रहार करती हैं जो उस समय समाज में व्याप्त थी। यह मान्यता साम्राज्यवादी और सामंतवादी समाज की देन थी। वे अपने समय की स्त्रियों को अपने स्वत्व के लिए सचेत करती है। उनका मानना है कि स्त्रियों को सिर्फ देवी कहलाने के लिए प्रतिमावत न रहकर मानवी रूप धारण करना होगा तथा अपनी शक्ति को भी पहचानना होगा और साथ ही साथ अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए संघर्ष करना होगा, तभी तुम्हें समाज की बेड़ियों से मुक्ति मिलेगी। इसलिए वे अपने काव्य में स्त्री-अस्मिता के सवाल को बार-बार उठाती हैं वे स्त्री के जीवन को नीर भरी दुःख की बदली के समान बताती है। उनका मानना है कि स्त्री का न अपना अस्तित्व है और न ही अपनी कोई पहचान। इसलिए वह कह उठती हैं:-

प्रिय सांध्य गगन, मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव तरूण तरूण मेरा सुहाग,
छाया सी काया बीत राग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले हान।[2]

वाकई ऐसे समाज में स्त्री की मानसिक स्थिति का ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण कर पाना किसी अन्य लेखक के बस की बात नहीं है, जो महादेवी जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से कर दिखाया। नारी में परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेने की जितनी सहज प्रवृत्ति है, अपने स्वभावगत गुण न छोड़ने की आन्तरिक प्रेरणा उससे कम नहीं। **'सांध्यगीत'** में नारी की विरहाकुलता को व्यक्त किया है-

शून्य मंदिर मैं बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
अर्चना हो शूल भोले,
क्षार दृग जल अर्घ्य हो ले,
आज करूणा स्नात उजला,
दुख हो मेरा पुजारी।[3]

महादेवी जी ने समाज की विडम्वनाओं पर भी गहरा चिंतन किया है। उनका मानना है कि गर्वित समाज, जिन्हें पतित नारी की संज्ञा देता है वस्तुतः ऐसी नारियों ने पुरुष वासना की वेदी पर बलिदान किया। इनके काव्य में स्त्री की करुण वेदना के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है। महादेवी जी ने स्त्री के दुःख को अपने काव्य में जगह दी है और अपनी विरह वेदना से सब का मन जीत लिया है। **'संधिनी'** में प्रत्यक्ष दर्शन देखने को मिलते हैं-

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी वीणा-स्वर,
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर,
जब था कल कंठों का मेला,
बिहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।[4]

स्त्रियों का अनुभव ही नहीं अनुभूति भी पुरुषों से अलग होती है। कुछ ऐसा कि उनका सही अनुभव व अभिव्यक्ति स्त्री रचनाकारों द्वारा ही संभव होता है जो महादेवी जी ने अपनी रचनाओं में भारतीय स्त्री पर विशेष रूप से किया और विभिन्न सफलताओं को प्राप्त किया, वे ये बहुत संतुष्ट भाव से कहती हैं कि मेरे जीवन का लक्ष्य सहजता स्वीकार करना नहीं बल्कि किसी भी विपत्ति का निडरता से सामना करना है।

"पुजारी दीप कही सोता है
इस चितवन की अमिट निशानी
अंगारे का पारस पानी
इसके छूकर लौह तिमिर
लिखने लगता स्वर्ण कहानी।"[5]

नारी चित्रण में महादेवी का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा। उनकी उपेक्षित स्थिति ऐसी है कि कहीं वो उनके पक्ष में अपना समर्थन देती हैं तो कहीं आधुनिकताओं के कृत्रिमतावादी दृष्टिकोण के प्रति व्यंग्य करने से नहीं चूकती। नारी के प्रति सामाजिक परम्पराओं को महादेवी ने चुनौती दी है।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में स्त्री के मन की विरह वेदना को उल्लेखित किया है। उन्होंने स्त्री के विरह वेदना को पूर्ण रूप से चित्रित करके अपने काव्य कला को एक नया मोड़ दिया। वेदना महादेवी को इसलिए प्रिय है कि उसमें व्यक्ति का अभिमान समाप्त हो जाता है। वेदना की ज्वाला में गलने पर ही मानव मन की निष्ठुरता दूर हो पाती है इसलिए उन्होंने अपने जीवन दीपक को मधुर-मधुर जलने के लिए कह रहीं है

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिफल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।"[6]

इनकी वेदना में व्याकुलता भी दिखाई देती है। मुरझाये फूल को देखकर वह व्याकुल हो उठती है। उन्हें जीवन एवं जगत दुःखमय तथा नश्वर प्रतीत होने लगता है, उनके हृदय में क्षोभ असमर्थता एवं विवशता के कारण व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है। वहाँ भी बुद्ध के विश्व मंगल की कामना से उद्‌भूत दुःखवाद का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। इसलिए अपने शब्दों में वह कहती हैं:-

पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा,
तुमको ढूंढेगी पीड़ा।[7]

वर्तमान समय में नारी के साथ होने वाले व्यवहार पर बेबाक टिप्पणी की है। वस्तुतः साठोत्तरी चिंतन में नारी की दिशा बदल सी गई है। जहाँ भारतीय समाज की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए एक आधुनिक एवं पुरुष से परे संघर्ष तथा उसके समानान्तर स्त्री की छवि गढ़ी आ रही है। इसके विपरीत महादेवी वर्मा का लेखन भारतीय संस्कृति की परिधि में स्त्रियों की महत्ता का प्रतिस्थापन है, साथ ही स्त्री की सामाजिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता पर चिन्तन भी। इनका स्त्रियों के प्रति विरह,चिन्तन की गहराइयों को खोजकर जगाने का कार्य करने में सफल रहीं।

निष्कर्ष:- महादेवी की वेदना को उसके सही परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए। उन्हें दुःखवाद का प्रचारक नहीं मानना चाहिए। महादेवी जी पार्थिक मिलन को महत्व न देकर सर्वत्र विरह और मिलन की आशा का उल्लेख करती है। उनके अनुसार वेदना दुःख मूलक नहीं है, वह प्रिय और अप्रियतम है। नारी-चित्रण में महादेवी का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है। अप्रत्यक्ष रूप से महादेवी नारियों से सीधे कह रही हैं कि अपने साथ होने वाले अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध बगावत करें और अपने स्वाभिमानी अस्तित्व के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाओ। महादेवी वेदना की कवयित्री है परन्तु वेदना को उनके निजत्व से जोड़ना उनके साथ घोर अन्याय है। क्योंकि कोई भी कवि अपने दुःख से दुःखी होकर रचना नहीं करता **जैसे – वाल्मिकी तीर बंधे क्रोंच पक्षी के दुःख से दु:खी होकर कवि बने, तो गौतम बुद्ध बूढ़े बीमार मृत व्यक्ति को देखकर ही परिव्राजक बन ज्ञानी बने थे।**

आज हमारे जीवन में संतुलन, व्यवस्था एंव उच्च आदर्शों का अभाव परिलक्षित होता है। जिसके कारण स्त्री समाज में अनेक विकृतियाँ आ गई है। इससे हमारी शक्तियों का उपभोग स्वार्थ- साधना एवं दूसरे का नाश हो रहा है परिणामस्वरूप स्त्री समाज की प्रगति एवं उसके नवनिर्माण का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इनके यहां संघर्ष नारी जागरण के रूप में आता है। इन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर भावुकता के स्थान पर अत्यंत गंभीर एवं शांत मन से विचार विमर्श किया, उन्होंने नारी जगत को भारतीय संदर्भ में मुक्ति का संदेश दिया। नारी मुक्ति के संदर्भ में उनका विचार है कि भारत की स्त्री तो भारत मां का प्रतीक है वह अपनी समस्त संतान को सुखी देखना चाहती है उन्हें मुक्त करने में ही उनकी मुक्ति है। वस्तुतः महादेवी का नारी चिंतन कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि महादेवी का समय ऐसा समय था जब भारतीय नारी का 90% हिस्सा निराश था,लेकिन आज तो नारी साहित्य लेखन के केंद्र में भी आ गई है। ऐसा नहीं लगता कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति में कोई विशेष सुधार आया भले ही आज सरकारी आरक्षण से नारी की सामाजिक गति बढ़ी है किंतु अपने परिवार के भीतर उसकी स्थिति पूर्ववत ही है। स्त्री विमर्श के इस दौर में नारी जाति के गौरव को पुनः वापस दिलाना तो दूर बल्कि उसके स्वाभाविक गुण को भी नष्ट कर दिया गया है यह सब पश्चात मानसिकता का फल है। इस तरह से उनका चिंतन स्त्री विषयक इतिहास लेखन की दशा और दिशा को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आधुनिक भारतीय शिक्षित नारी से जुड़ी अनेक समस्याओं पर भी महादेवी ने अपनी लेखनी चलाई। इस नारी के सम्मुख घर और बाहर की समस्या है और अपनी अनेक समस्याओं के जूझने के साथ ही उनका एक बड़ा दायित्व भी है। भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूपरेखा हो? उसके अधिकारों की क्या सीमा हो? आदि समस्याओं का समाधान महादेवी जी अपने काव्य में नारी जागृति के द्वारा उजागर किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. पंडित देवदत्त शास्त्री, महादेव अभिनंदन ग्रन्थ, भारती परिषद् प्रयाग, 1964, पृष्ठ संख्या – 47
2. इन्द्रनाथ मदान, महादेवी चिन्तन व कला, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2-अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6, 1967, पृष्ठ संख्या-12

3. प्रो० कृष्णदेव शर्मा, महादेवी वर्मा और उनका 'आधुनिक' कवि हिन्दी साहित्य संसार 1543, नई सड़क दिल्ली-6, 1969, पृष्ठ संख्या -25
4. महादेवी वर्मा, सन्धिनी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं० 1965, पृष्ठ संख्या -132
5. पं० देवदत्त शास्त्री, महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ, भारती परिषद प्रयाग, 1964, पृष्ठ संख्या -16
6. https://www.amarujala.com
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -469

shaistaamu272152@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 22-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यालयी शिक्षा में चित्रकला कला शिक्षा की आवश्यकता

सितेंद्र रंजन सिंह
शोधार्थी (ललित कला),
सोना देवी विश्वविद्यालय ,घाटशिला, पूर्वी सिंहभूम, झारखण्ड I

सारांश- चित्रकला विषय के विद्यार्थी अपने चाक्षुस ज्ञान के आधार पर जीवन से संबंधित विभिन्न क्रियाओं, वस्तुओं, जड़ चेतना और स्वरूपों को चित्रित कर अपनी क्षमताओं का विकास करते हैं ।चित्रकला के द्वारा विद्यालय के विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं जैसे रेखाओं द्वारा आलेख तैयार करना, रंगों का मिश्रण, रंगों की प्रकृति, रंगों द्वारा आलेखनों, अलंकरणों एवं विभिन्न प्रकार के आकारों को बनाता है। कला में प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न सामग्रियों एवं उनकी विधियों को जानता है। क्षेत्रफल की जानकारी, पोत ,टेक्सचर ,रंग, रंगों का मनोविज्ञान, रेखा,रूप,तान, अन्तराल, लय एवं संतुलन इत्यादि के महत्व को जानता है। कला शिक्षण कला का बोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना होता है। इसके लिए हर विषय के शिक्षण में, शाला की साज-सज्जा में और दैनिक व वार्षिक गतिविधियों में कलात्मकता का पुट समाहित करना अधिक उपयोगी है। लेकिन कला में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि वह लोगों को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर उसे ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँचा दे जहाँ मनुष्य् केवल मनुष्य रह जाता है। कला व्यक्ति के मन में बनी स्वार्थ, परिवार, क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति आदि की सीमाएँ मिटाकर विस्तृत और व्या।पकता प्रदान करती है। व्यक्ति के मन को उदात्त बनाती है। वह व्यक्ति को “स्व” से निकालकर “वसुधैव कुटुम्बदकम्” से जोड़ती है। विद्यालयों में कला शिक्षा का उद्देश्य कला के सम्बन्ध में एक पारखी नज़र विकसित करना और जीवन के हर पहलू में कलाबोध का अन्तःकरण करना है, चाहे वह मेज पर अपना सामान रखना हो, या कपड़े सुखाने के लिए टाँगना हो, या उपयोगी सामान बनाना या उसका रंग-रोगन हो। कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को दिशा देने की अद्भुत क्षमता है।

बीज शब्द- कला शिक्षा , चित्रकला, आत्म अभिव्यक्ति, मोटर कौशल, रचनात्मकता I

परिचय- कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है- कला संस्कृत भाषा का शब्द है। कला शब्द 'कल' धातु से बना है जिसका अर्थ है प्रेरित करना। इसकी उत्पत्ति 'कड़' धातु से संबंधित मानी जाती है जिसका अर्थ है ‘प्रसन्न करना’। कुछ विद्वान 'कं' से संबंधित मानकर इसका अर्थ ‘आनंद’ के रूप में लेते हैं। यूनान में कला को 'तेख्ने' (technique) कहते थे। प्राचीन लैटिन शब्द 'आर्स' का अर्थ भी कौशल अथवा शिल्प है जिससे अंग्रेजी का शब्द 'आर्ट' (ART) विकसित हुआ है जिसका अर्थ ‘बनाना या उत्पन्न करना’ अर्थात शारीरिक, मानसिक कौशल से नवीन कृत्रिम का निर्माण करना माना जाता है। प्राचीन भारतीय मान्यताओं में कला के लिए ‘शिल्प’ शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन ग्रंथो

में कलाओं की विविध सूचियाँ वर्णित हैं- 'कामसूत्र' में 64 कलाओं की सूचियाँ दी गई है। प्राचीन भारत में प्रकृति को 'देव शिल्प' तथा मानवीय कृतियों को 'मानव शिल्प' कहा गया है। कला विषय को शब्दों के माध्यम से परिचित करवाना कठिन है क्योंकि कला का वास्तविक स्वरूप तो इसके अनुभव से ही जाना जा सकता है ।चित्रकार अपनी कला को रंगों और रेखाओं के माध्यम से उजागर कर आनंद की अनुभूति करते हैं। कला का आदर्श ही आनंद की प्राप्ति है। व्यक्ति द्वारा जब कला का सदुपयोग किया जाता है तो उसका जीवन आनंदित हो उठता है और उसके आसपास का वातावरण भी आनंदित हो उठता है। कला के अध्ययन में कला इतिहास,सौंदर्य शास्त्र, दर्शन शास्त्र, समाजशास्त्र, गणित, विज्ञान और मनोविज्ञान सहित कई विषय शामिल हैं ।

कला मनोरंजन, सौन्दार्य, प्रवाह, उल्लाास न जाने कितने तत्त्वों से यह भरपूर है, जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है। इस प्रकार हम यह समझ सकते है की कला शिक्षा विद्यार्थियों के सृजनात्मक विकास के लिये महत्त्वपूर्ण उपयुक्त माध्यम के रूप में पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा है। यह शिक्षा मुख्यत: दो तथ्यों पर आधारित है। प्रथम तथ्य है कि प्रत्येक विद्यार्थी अनेकों छुपी हुई सृजनात्मक योग्यताओं से परिपूर्ण होता है एवं द्वितीय तथ्य है कि कला शिक्षा बालक की इन सृजनात्मक योग्यताओं को परिपूर्ण करने में सहायक होती है।

ज्ञान के लिए भाषा का विशेष स्थान है पर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है। उसके उस अभाव की पूर्ति करती हैं ललित कलाएँ - नृत्य, संगीत , चित्रकला एवं दूसरी कलाएँ। चित्रकला की अभिव्यक्ति की अपनी विशिष्टता होती है। मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा जगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान एवं उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही अपनी कला के माध्यम से दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करता है। शिक्षा के क्षेत्र में कला के कारण मनुष्य की अवधारणा एवं रसानुभूति, दोनों उत्कर्ष को प्राप्त करती हैं l यदि हमारा उद्देश्य शिक्षा का सर्वांगीण विकास हो तो हमारे पाठ्यक्रम में कला का स्थान अन्यान्य पढ़ाई-लिखाई के विषयों के समान ही होना चाहिए। हमारे विद्यालयों में अब तक जो व्यवस्था है, वह नितान्त अपर्याप्त है। इसका कारण यह है कि अनेक लोगों की मान्यता है कि कला-साधना मात्र पेशेवर कलाकारों का काम है, साधारण आदमी को उससे कुछ लेना-देना नहीं है। सौन्दर्यबोध के अभाव में मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी क्षति होती है। सौन्दर्यबोध के अभाव में जो लोग घर में कूड़ा जमा करके रखते हैं, अपने शरीर एवं वस्त्रों की गन्दगी साफ नहीं करते, घर की दीवार पर, रास्ते में, रेल के डिब्बों में पान की पीक थूकते चलते हैं, वे अपने स्वास्थ्य के साथ –साथ पूरे राष्ट्र के स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाते हैं।

चित्रकला हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है और इसके बहुत सारे सकारात्मक पहलू हैं -

आत्म अभिव्यक्ति- अभिव्यक्ति के वास्तविक रूप को हम वास्तविक विचारों के रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं हम जो सोचते हैं या महसूस करते हैं उसे रचनात्मक रूप में व्यक्त कर सकते हैं बच्चे इस तरीका के माध्यम से अपने विचार को अभिव्यक्त कर सकते हैं जो अन्य माध्यम से व्यक्त नहीं कर सकते हैं पाठ्यक्रम में कला शिक्षा को शामिल करना अधिकतम भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण है। यदि कोई शिक्षक किसी छात्र के आत्म अभिव्यक्ति को अमान्य कर देता है तो उसमें ऐसा करने की इच्छा उत्पन्न नहीं होगा l

कला के साथ अकादमिक विषयों को एकत्रित करने पर सीखने की कला आसान हो जाती है- ज्यादातर बच्चों के लिए पढ़ाई सबसे कम दिलचस्प होती है जटिल विषयों को कलात्मक प्रक्रिया से आकर्षक बना सकते हैं अक्सर बच्चों को नोटबुक में कुछ लिखने के लिए या नकल करने के लिए डांटा जाता है जो ध्यान भटकने वाला माना जाता है और यह अक्सर सत्य भी होता है इस अवलोकन को ध्यान में रखते हुए शिक्षक सैद्धांतिक प्रवचनों के बीच ऐसी गतिविधियों के लिए कुछ समय रख भी सकते हैं।

बौद्धिक विकास को बढ़ावा देता है- हमारे मस्तिष्क को विकसित करने के लिए कला शिक्षा बहुत मदद कर सकती है। कला के माध्यम से विषयों की खोज करते समय कम से कम प्रतिबंध होना चाहिए। कला व्यक्तिगत होता है इसलिए कोई भी व्यक्ति पक्षपाती धारणाओं को रख सकता है। कला शिक्षा हमें कार्य के विश्लेषण के बारे में बताती है जो छात्रों को अभिव्यक्ति कौशल को विकसित करने में मदद करती है जो छात्रों के संचार को भी निखारती है।

नवाचारों को बढ़ावा देती है- कला कल्पना को बढ़ाती है इसलिए कुछ अलग प्रकार से कार्य करने के लिए यह बहुत आवश्यक है l नवाचार नई भावनाओं को भी जगह देती है बच्चे कला शिक्षा के माध्यम से बहुत सारे नए-नए प्रयोग कर सकते हैं बशर्ते इसके लिए अच्छी तरह का माहौल हो। चित्रकला के विभिन्न शैलियों में यही गुण पाए जाते हैं।

मोटर कौशल को बढ़ावा देना- कला और शिल्प बच्चों में मोटर कौशल को बढ़ावा देने में मदद करता है। कला के लिए छात्र विभिन्न प्रकार के सामग्रियों जैसे रंग ,कागज ,कैंची, ब्रश ,पेंसिल ,कैनवस, विभिन्न प्रकार के तेल इत्यादि का उपयोग करते हैं जिससे वह काटने, चिपकाने, पैटर्न बनाने, मिट्टी के विभिन्न प्रकार के आकार बनाने और कलाकृति बनाने के लिए दक्ष होने लगते हैं l इस प्रकार वह अपनी मांसपेशियों को मजबूत करते हैं और अपने आंखों और हाथों में समन्वय स्थापित कर सफलता प्राप्त करते हैं।

सामाजिक कौशल में सुधार- कला सभी व्यक्ति के लिए बहुत ही व्यक्तिगत होता है जहां कोई भी व्यक्ति खुद से अपना प्रदर्शन कर सकते हैं l एक बच्चे अन्य बच्चों के सामने अपने धारणा को रख सकते हैं जिस पर कक्षा में चर्चा हो सकती है और जो शर्मीले बच्चे हैं उनकी भी भावना पर कक्षा में चर्चा हो सकती है। कला प्रतियोगिता आयोजित करने से छात्रों को बहुमुखी प्रतिभा को प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। समूह कला गतिविधियों और परियोजना से सामाजिक संपर्क को बढ़ावा मिलता है। जर्नल ऑफ़ एजूकेशन और साइकोलॉजी के अनुसार, जो छात्र बचपन में कला और शिल्प में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं उनका शैक्षणिक रिकार्ड बेहतर होता है तथा उनमें पढ़ने और सीखने की समझ भी बेहतर होती है। चित्रकला में शामिल होने से बच्चे आलोचनात्मक सोच समस्या समाधान और निर्णय लेने जैसे आवश्यक कौशल विकसित करते हैं विभिन्न आकृतियों रंगों और विचारों पर सोचने के लिए मजबूर करता है जिससे उनमें रचनात्मकता का विकास होता है और उनकी कल्पनाशक्ति को बढ़ाता है l

मोटर कौशल विकसित करता हैं- चित्रकला और सिर्फ गतिविधियां करने से बच्चों को अपने हाथों और उंगलियों का भरपूर प्रयोग करने का मौका मिलता है l पेंट ब्रश पकड़ना और उसे रंग करना और क्रेयोन से एक निश्चित स्थान में रंग करने से उनके उंगलियों में नियंत्रण और पकड़ की भावना को उत्पन्न करती है।

निपुणता बढ़ता है- बार-बार अभ्यास करने के कारण शारीरिक निपुणता,गति और कलात्मक कौशल भी बढ़ाता है।

संस्कृति प्रशंसा को बढ़ावा देता है- देश के विभिन्न कलात्मक गतिविधियों और विभिन्न कलाकृतियों से परिचित कराती है यह बच्चों में विविधता में सुंदरता को परिचित कराती है अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णु होने विभिन्न कलात्मक अभिव्यक्तियों के प्रति प्रशंसा और सम्मान दिखाने का अवसर देता है।

आत्मसम्मान को बढ़ाते हैं- जब बच्चे कला के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं तो उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उन्हें गर्व करने की अनुमति देता है और वह आत्म सम्मान बढ़ा हुआ महसूस करते हैं। कला बच्चों को यह सिखाता है की गलतियां करना एक सामान्य बात है और कभी-कभी गलतियों से नए विचार की उत्पत्ति होती है।

नवाचार और रचनात्मकता को बढ़ावा देती है- बच्चों को अपनी रचनात्मकता और सोच को प्रस्तुत करने के लिए नए तरीके और रचनात्मकता को दिखाने का अवसर प्राप्त होता है चाहे वह एक गांव का दृश्य बनाने का कार्य ही क्यों

ना हो खोज करना जोखिम लेने की स्वतंत्रता से नवाचार की भावना को बढ़ावा मिलते हैं क्योंकि व्यक्ति नये दृष्टिकोण को अपनाता है और चुनौतियां आने पर अद्वितीय समाधान खोजता है।

दृश्य सीखने और स्मृति में सुधार- कला बच्चों को आकृति, रंगों , बनावटों इत्यादि में ध्यान देने के कारण उनके दृश्य धरणा और पैटर्न की क्षमता को बढ़ाने में मदद मिलती है।

समीक्षा-

विद्यालय की शिक्षा के लिए कला शिक्षा क्यों आवश्यक है ?

शिक्षा में कला की भूमिका का उद्देश्य कलाबोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना है और इसके लिए अलग से कला विषय की ज़रूरत तो है ही और साथ ही हर विषय के शिक्षण में, शाला की साज-सज्जा में और दैनिक व वार्षिक गतिविधियों में कलात्मकता का पुट समाहित करना आधिक उपयोगी है। कला शिक्षा हर अवस्था में छात्रों में आलोचनात्मक सोच को मजबूत करने में और निर्णय लेने की क्षमता में सुधार करने में मदद करती है। यह किसी का विश्लेषण करने और मूल्यांकन करने की क्षमता को बढ़ाता है ताकि किसी के बारे में सही निर्णय लिया जा सके।

कला शिक्षा छात्रों को और क्या लाभ प्रदान करती है?- कला शिक्षा आत्म अभिव्यक्ति के लिए भी मूल्यवान है। यह छात्रों को रचनात्मक जोखिम लेने के लिए प्रेरित करती है । कला शिक्षा छात्रों में लचीलापन बढ़ाने में मदद करती है ताकि वे तनाव की स्थिति का बेहतर तरीके सामना कर सकें। यह छात्रों को सशक्त बनाता है जो कला के माध्यम से आत्म विश्वास की भावना का निर्माण करते हैं और उपलब्धि की भावना को प्राप्त करते हैं।कला शिक्षा सकारात्मक कक्षा संस्कृति को बढ़ावा देने में भी मदद करती है जो स्कूल के बाहर भी छात्रों को प्रभावित करती है। यह चरित्र निर्माण करती है और छात्रों में सहानुभूति बढ़ती है क्योंकि उन्हें एक अलग दृष्टिकोण से परिचित कराया जाता है।

कला शिक्षा मूल्यवान है- कला शिक्षा छात्रों को अभिनव तरीके से सोचने और रचनात्मकता को बढ़ावा देने में मदद है। कला का मूल्य निर्विवाद है। जब किसी बच्चे को कागज पेंसिल या कलम दी जाती है तो वह अपने मन की स्थिति को कागज पर उड़ेल देता है। उसकी आड़ी तिरछी लाइनें उनमें छिपे चित्र बहुत कुछ कहते हैं।बच्चे किन रंगों का इस्तेमाल करते हैं इससे भी उनकी मनःस्थिति का पता चलता है जिससे किसी व्यक्ति में चल रहे किसी समस्या के बारे में पता किया जा सकता है। रंगों की लकीरों के साथ बच्चे अपने आप में मगन होते हैं, कल्पना की उड़ान भरते हैं,अपनी अभिव्यक्ति देते हैं और रचनात्मक कार्य में व्यस्त रहते हैं। कला के शिक्षा द्वारा 'सत्यम शिवम सुंदरम' की अनुभूति झलकती है। कला में शिक्षा छुपी होती है। कला की शिक्षण प्रयोगी है। कला की शिक्षा सभ्याचार, सभ्यता, रीति-रिवाजों पर निर्भर करती है। कला के शिक्षा मानवीय जीवन को संवारती है। कला की शिक्षा में स्वतंत्र भाव के अभिव्यक्ति की जा सकती है। कला की शिक्षा द्वारा दूसरों को आगे बढ़ने का मौका मिलता है। कला की शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी भावनाओं को रंगसाजी द्वारा बाहर लेकर आता है। अपनी मानसिकता की अभिव्यक्ति कर सकता है।

छात्रों के लिए लाभ- जो छात्र गणित में कठिनाई महसूस कर रहा है। वह दृश्य प्रस्तुति बनाकर अवधारणाओं को बेहतर ढंग से समझ सकता है। जो छात्र कला में अपना करियर बनाने में रुचि रखते हैं कला शिक्षण के माध्यम से प्रशिक्षण और अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। जो छात्र किसी विशेष क्षेत्र जैसे विज्ञान या व्यवसाय में रुचि रखते हैं वह कला शिक्षामें सीखे गए कौशल का उपयोग बच्चों को बेहतर ढंग से समझाने के लिए कर सकते हैं। जो छात्र रचनात्मक ढंग से अपने आप को प्रस्तुत करने का तरीका खोज रहा है कला शिक्षा उसे वह रास्ता प्रदान करती है जिसकी उसे आवश्यकता है। जो छात्र आत्मसम्मान से संघर्ष करता है वह कोई अच्छा पेंटिंग बनाकर अपने आत्मसम्मान को बढ़ा सकते हैं।

विद्यालयों में कला शिक्षण के लिये सुझाव -कला शिक्षण के लिए विद्यालयों के लाइब्रेरी में, पढ़ने तथा रहने के कमरे में कुछ अच्छे चित्र एवं मूर्तियाँ तथा अन्य ललित कला इत्यादि वाली कृतियाँ सजाकर रखनी चाहिए। यह संभव नहीं होने पर इनके अच्छे फोटो या नकल रखी जा सकती है। दूसरी बात, अच्छी कलाकृतियों के चित्र वाली पुस्तकों को विशेषज्ञ व्यकियों द्वारा लिखवाना होगा। तीसरी बात, फिल्मों के माध्यम से भी स्वदेश एवं विदेश की चुनी हुई अच्छी कलाकृतियों से विद्यार्थियों का साक्षात्कार कराना चाहिए। चौथी बात, श्रेष्ठ कृतियों को देखने के लिये योग्य शिक्षकों के साथ पास के आर्ट गैलरी में विद्यार्थियों को भेजना चाहिए। अच्छी कलाकृतियों को अपनी आँखों से देखने से अपने आप अच्छी-बुरी कलाकृति का विवेचन करने की शक्ति पैदा होगी और उनका सौन्दर्यबोध विकसित होगा। पाँचवी बात, प्रकृति के निकट सम्पर्क में आने के लिये हर ऋतु में विशेष उत्सवों का आयोजन करना होगा और काव्य तथा कला के क्षेत्र में उस ऋतु से सम्बन्धित जो भी श्रेष्ठ रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनसे विद्यार्थियों को परिचित कराना उचित होगा। छठी बात, शरद ऋतु में धान के खेत और कमल से भरे तालाब तथा वसन्त ऋतु में पलाश और सेमल की बहार वे स्वयं अपनी आँखों से देख सकें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। ऋतु के उपयुक्त वेशभूषा एवं खेलकूद आदि का आयोजन करना चाहिए। अन्तिम बात यह है कि साल में किसी भी समय विद्यालय में एक कला महोत्सव करना चाहिये। उसमें हर विद्यार्थी द्वारा कोई-न-कोई चीज़ अपने हाथ से बनाकर लाना जरूरी होगा।

रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा के क्षेत्र में कला-साधना को उपयुक्त स्थान दिया था। नंदलाल बसु आधुनिक भारतीय कला के प्रवर्तक थे। उनके अनुसार कला आनंद की अभिव्यक्ति है। कलाकार अपने मानस में जो आनंद अनुभव करता है उसी को अनुभव करने के लिये वह रचना करता है। उनके अनुसार स्कूलों में कला शिक्षा का उद्देश्य कला के सम्बन्ध में एक पारखी नज़र विकसित करना और जीवन के हर पहलू में कलाबोध का अन्तःकरण करना है।

उद्देश्य-

कला शिक्षा संतुलित शिक्षा का एक अनिवार्य हिस्सा है। यह छात्रों को उनकी रचनात्मकता,आलोचनात्मक सोच कौशल और समस्या समाधान क्षमताओं को विकसित करने में मदद कर सकता है ताकि उन्हें अच्छी तरह से विकसित व्यक्ति बनाया जा सके और उन्हें आगे उज्जवल भविष्य के लिए तैयार किया जा सके। यह एक दूसरे के साथ संवाद करने, खुद को अभिव्यक्त करने और दुनिया पर नया दृष्टिकोण प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। कला शिक्षा उच्च विद्यालयों के छात्रों को उनकी रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच, कौशल और समस्या समाधान संस्थाओं को विकसित करने में मदद कर सकती है। यह आत्मविश्वास और लचीलापन बढ़ाने में भी मदद कर सकती है।

संदर्भ :

1. सिंह, डॉ. आभा (2014). दृश्य कला, उपकार प्रकाशन, दिल्ली.
2. ब्रूकिंग्स आर्ट्स एडुटोपिया
3. संदर्भ- कला एवं शिक्षण -डिप्लोमा इन एजुकेशन, D.El.Ed. प्रथम वर्ष, दूरस्थ शिक्षा हेतु पठन सामग्री, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद छत्तीसगढ़ रायपुर प्रकाशन वर्ष 2013
4. "साभार"- पत्रिका अनौपचारिका के दिसंबर 2008 अंक
5. प्रसाद, देवी (1998). शिक्षा का वाहन कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, नईदिल्ली.
6. साही, जेन व साही, रोशन (2023). कला से सीखना, एकलव्य प्रकाशन, भोपाल.

मोबाईल -9241956672, E.Mail: sitendraranjansingh@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 27-29
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सांप्रदायिकता के दौर में 'वे वहाँ कैद है' उपन्यास

Anu B Babu
Research Scholar,
Sree Narayana College Kollam, Kerala

शोधसार – उपन्यासकार प्रियंवद जी ने 'वे वहाँ कैद है' उपन्यास में सांप्रदायिक समस्या के सूक्ष्म बिंदुओं तक समर्थन किया है। सांप्रदायिकता, सांप्रदायिक दंगें, फासियोन्मुख राष्ट्रवाद, सँस्कृति और भारत इतिहास का महत्व, अमानवीयता आदि अभिव्यक्त करना उपन्यासकार का लक्ष्य है।

बीज शब्द – साँप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना- आजकल सांप्रदायिकता एक जटिल समस्या के रूप में हमारे सामने है। भारत जैसे देश में सांप्रदायिकता से राष्ट्रीयता टूट सकती है। भारत में एक विशेषता है कि विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, रीतिरिवाज़ है। स्वतंत्रता संग्राम के समय में भारतीय लोग के बीच में बिखराव पैदा करने के लिए अंग्रेज़ों ने सांप्रदायिकता को ही अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। इसलिए विष्णु प्रभाकर जी कहती है कि "मनुष्य के प्रबल शत्रुओं में दो है- साम्राज्यवाद और सांप्रदायिकता" (1)। ब्रिटीश शासन के बाद यहाँ की राजनीतिक नेताओं ने उस तरह धर्म के नाम पर जनता को गुमराह कर यहाँ शासन कर सत्ता को हासिल करती है। हमारे पूर्वज समाज और मानव की भलाई के लिए धार्मिक संस्कृति का प्रचार प्रसार करते थे, परंतु आजकल धर्म अपना मूल वृत्ति से बदलकर समाज में असुरक्षा और अत्याचार फैल रहा है। हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता का विविध विशेषणात्मक चेहरों को दिखाती प्रियंवद का उपन्यास 'वे वहां कैद है' इस श्रेणी का एक महत्वपूर्ण कृति है, जो समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और जातिगत भेदभाव जैसे अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालती है। यह उपन्यास में लेखक ने इन मुद्धों का चित्रण करते हुए समाज में बदलाव लाने की आवश्यकता पर बल दिया है। साथ ही सांप्रदायिकता के खिलाफ समाज में एक सकारात्मक बदलाव लाने के लिए भारतीय संस्कृति की महानता के बारे में कहते हैं।

यह उपन्यास 1984 के सिक्ख विरुद्ध दंगा, विभाजन, बाबरी मस्जिद द्वंसा के कारण बढ़ती हिंदू-मुस्लिम तनाव के प्रेरणा से लिखा है। इस उपन्यास में सिर्फ पाँच-छह प्रमुख पात्र है उतनी ही गौण पात्र है। प्रमुख पात्र है- दादु, दादु का बेटी, प्रातु, अविनाश और चिन्मय। दादु इतिहास का प्रोफसर है, साथ ही हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। जो समाज में व्याप्त अन्याय और अत्याचारों से खिलाफ निरंतर लड़ता है। दादु को यह विश्वास है कि सांस्कृतिक बोध केलिए हमारा इतिहास का बोध होना ज़रूरी है। हिस्टरी के महत्व के साथ हमारी संस्कृति के आशावाद के बारे में वे कहते है कि "काल प्रवाह में सत्ताएं नष्ट होती है, व्यक्ति नष्ट होते है, देश नगर सभ्यताएं नष्ट होते है। यह तुम्हें इतिहास बतायेगा, पर यह तुम्हें ढूंढना होगा कि इन अंधेरों में जब सब नष्ट होता है तब चीज़ अक्षत अक्षुण्ण रहती है और वह है मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता उसकी गरिमा पर आस्था और उस आस्था के कभी न क्षरित

होने की आशा। नेच्चर गिव अप दिस होप, दिस थर्ड आई इस योर प्रिविलेज। प्रिविलेज आफ बीईंग ए स्टुडेंट आफ हिस्ट्री।"[2]

दादु का मानना है कि इतिहास का अध्ययन करके हम अपना संस्कृति को समझ सकते है और इसके माध्यम से समाज में बदलाव ला सकते है। इस उपन्यास में दादु का आशावादी स्वर सदा मुखरित है। दादु की विडंबना है कि चिन्मय उसके शिष्य होते हुए भी एक हिंदु नेता है। चिन्मय इतिहास का छात्र होते हुए भी भारतीय संस्कृति के मूल्यों को पहचानने के लिए असमर्थ बन गया है। हमेशा भारत को एक हिंदु राष्ट्र बनाने का सपना देखता रहता था। चिन्मय एक साँप्रदायिक व्यक्ति है। चिन्मय के अनुसार भय, आतंक, रक्त की सत्ता शाश्वत है। उसका दर्शन हिंसात्मक था। वह धर्म निरपेक्षता को एक ढ़ोंग मानता है। चिन्मय दादु से इस प्रकार कहता है कि "धर्म विहीनता या धर्म निरपेक्षता एक कल्पना है।"[3] साथ ही यह भी मानता है कि "धार्मिक राष्ट्र कोई पाप नहीं है"[4]। दादु का एक अन्य शिष्य है अविनाश। अविनाश अपने प्रोफसर के सकारात्मक दृष्टी को सदा अपनाता है और धर्म निरपेक्षता पर विश्वास रखता है। वैज्ञानिक दृष्टि से धर्मनिरपेक्ष राज्य का मतलब राजनीतिक अधिकारों के उपयोग केलिए अपने नागरिकों को धार्मिक वर्गों में विभक्त करना नहीं, कानून के समक्ष सभी नागरिक समान है, इन में धर्म का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आमतौर पर धर्मनिरपेक्षता का मतलब नागरिक अपने धर्म में विश्वास रखते हुए दूसरे धर्म का सम्मान करना है। इस उपन्यास में उपन्यासकार अविनाश द्वारा हमेशा धर्मनिरपेक्ष संस्कृति और मानवीय संवेदना की ओर इशारा करना चाहते है।

साँप्रदायिकता राष्ट्र और समाज को अलग करती है। बंग विभाजन, पाक विभाजन जैसी घटनाएं साँप्रदायिकता के नाम पर हुआ है। एक विघटित समाज का भविष्य दादु इस प्रकार उपन्यास में कहते है "विघटित होने वाला समाज का भावी वाता निश्चित रूप से तलवार से सज्जित होगा।"[5] "समाज खंडित होकर चुर चुर हो जाता है, और चुनौतियाँ छोटी हो तो फिर संघर्ष की प्रेरणा पाकर अपनी आंतरिक ऊर्जा से समाज खड़ा होता है। कभी किसी महान धर्म की शरण में। किसी दर्शनिक अतिमानव के पीछे और फिर वही क्रम। विनाश-विकास-विनाश।"[6] आलोच्य उपन्यास में पूरे धार्मिक राष्ट्रवाद को देख सकते है। राष्ट्रवाद एक भावना है, अपना राष्ट्र के प्रति प्रेम, समर्पण, एकता और गौरव का भावना है। अनेकता में एकता हमारा संस्कृति है। परंतु आज राष्ट्रवाद की अवधारणा इसके ठीक उलटे रूप में है। उपन्यास में धर्म पर आधारित धार्मिक राष्ट्रवाद देख सकते है। चिन्मय सदा हिंदु राष्ट्र की बात करता रहा था। वह कहा था कि " भाषा, भोजन, वस्त्र, धर्म और विचार किसी भी स्तर पर, यह सब अब एक होना होगा तब हम कह सकते है कि हम एक राष्ट्र है, और वह एक राष्ट्र ही सकता है सिर्फ हिंदु राष्ट्र की धारणा पर।"[7] हिंदु साँप्रदायिकता मुसलमानों के खिलाफ अपनी ताकत के प्रदर्शन के लिए मुहल्लों में हिंदु शक्ति प्रकट करता था। हिंदु घरों में भगवान का झंडा लगवाता था। हिंदु तिलक लगाकर बाहर निकलना, बड़ी आवाज़ में लाउडस्पीकर पर भजन डाल कर हिंदु साँप्रदायिकता, हिंदु शक्ति का प्रदर्शन करते थे। मुसलमान ने अपने घरों में हरे झंडे लगाकर, मस्जिदों में अज़ान करके धर्मों का प्रदर्शन करते थे। मोहल्ले में जुलूस करके आदि से मुसलमानों ने ताकत का प्रदर्शन करते थे। साँप्रदायिकता के दौर में सामाजिक विभाजन का विभिन्न चेहरा इस उपन्यास में अलग-अलग स्थानों पर इस प्रकार देख सकता है।

समाज में साँप्रदायिकता बढ़ाने का एक ओर कारण है राजनाति। वह जनताओं को गुमराह करके स्वयं संपन्न बन गया है। राजनीतिक नेता अपने लाभ केलिए हिंदु और मुसलमानों के बीच धर्मिक प्रतिध्वन्दिता फैलाकर बहुसंख्यक हिंदुओं से वोट पाने की कोशिश कर रहे है। राजनीतिक नेताओं की संकीर्ण मनोवृत्ति की पर्दाफार्श इस प्रकार से कहा गया है "पैर आज हमारे दल के पास पूरा हिंदु वोट बैंक है, मुस्लिम वोट के सामने।"[8] शहर में दंगे फैलते के समय राजनीतिक नेता दंगे समाप्त करने की कोशिश नहीं प्रकट करता है। शहर में मुसलमान को हिंदुओं के

शक्ति प्रदर्शन, संगठन और आक्रमण की समय मुसलमानों की स्थिति के बारे में राजनीतिक नेताओं राजनीतिक नेता सोचते तक नहीं है।

साँप्रदायिकता की दौरान हिंदु-मुसलमानों के बीच एक दूसरे के प्रति बहुत अधिक घृणा, क्रोध और विरोध की विचारधाराएं उत्पन्न हुई। प्रत्येक के हृदय में किस प्रकार बस चुकी थी देशवासियों में एक दूसरे के प्रति कितनी निर्ममता है यह पंक्तियाँ इसकी गवाह है कि "एक हिंद मरा पड़ा है। सिक्ख ने गाड़ी चढ़ा थी।"(9) यहाँ इनसान को इनसान की तरह नहीं देखा जाता बल्कि हिंदु, सिक्ख, मुसलमान आदि नज़रियों से ही देखते है। लेखक ने दिखाया है कि कैसे सामाजिक असमानता के कारण लोगों के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उपन्यास में हिंदु वर्चस्ववादी समाज हिंदु राष्ट्र बनाने में लगा है। "धर्म या जातीय महानता का उन्माद सिर्फ एक बाबरी तानाशाही में खत्म होते है जिसे कुछ मूर्ख लोग या मूर्ख पुस्तकें नियंत्रित करते है। कंबाइली संस्कृति यही थी"(10) परंतु फासियोन्मुख राष्ट्रवाद और साँप्रदायिकता के कारण इस उपन्यास का अंत त्रासदीपूर्ण होता है। दादु का आशावादी संस्कृति को तोड़नावाला तत्व है साँप्रदायिकता। इस उपन्यास में सिर्फ भारत की ही नहीं बल्कि अन्य देश की भी सांप्रदायिक समस्याएं है। दादु की पहली बेटी कादंबरी जो एक पत्रकार है, अफगान से दादु को वहाँ की भयानक संघर्ष और हथियार बंद लड़ायी पर चिट्ठी लिखती है। साँप्रदायिकता का ज़हर न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया भर में फैल रहा है। भारत-पाक विभाजन साँप्रदायिक मुद्दों को सुलझाने के लिए लिखा गया था । सिक्ख दंगा और बाबरी मज़जिद विद्वंस के बाद लिखे गए इस उपन्यास यह कहा है कि भारत-पाक विभाजन से हमारा साँप्रदायिक समस्याएं अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। हमारा साँप्रदायिक समस्याओं का समाधान करना है तो हमें अपनी संस्कृति की महानता को याद रखना होगा। उपन्यासकार के शब्दों में कबइली संस्कृति यहीं थी।

निष्कर्ष : फासियोन्मुख राष्ट्रवाद किस तरह समाज को तोड़ रहा है, इस का चित्रण है 'वे वहाँ कैद है' उपन्यास है। साँप्रदायिकता द्वारा समाज पतनोन्मुख होता जा रहा है। दादु कथापात्र द्वारा उपन्यासकार निरंतर भारतीय संस्कृति का महत्व की ओर इशारा करती है और चिन्मय कथापात्र द्वारा फासियोन्मुख राष्ट्रवाद की विभीषिका को अभिव्यक्त किया है।

सहायक ग्रंथ सूचि :

1. साँप्रदायिकता एवं साँप्रदायिक दंगे – गीतेश रमी – समायोजन प्रकाशन 1985, कलकत्ता- पृ : 5
2. वे वहाँ कैद है – प्रियंवद – नैशनल पब्लिशिंग हउस 1994, दिल्ली – पृष्ठ: 13
3. वहीं- पृष्ठ: 60
4. वहीं- पृष्ठ: 62
5. वहीं- पृष्ठ: 97
6. वहीं- पृष्ठ: 97
7. वहीं- पृष्ठ: 48
8. वहीं- पृष्ठ: 24
9. वहीं- पृष्ठ: 96
10. वहीं- पृष्ठ: 63

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 30-31
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झारखंड के हस्तशिल्प: परंपरा, पहचान और रोजगार का प्रतीक

समरेंद्र रंजन सिंह
शोधार्थी,ललित कला,
सोना देवी विश्वविद्यालय घाटशिला, जमशेदपुर झारखण्ड

भारत का प्रत्येक राज्य अपनी सांस्कृतिक विविधताओं और परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है, और झारखंड भी इससे अछूता नहीं है। यह राज्य न केवल खनिज संपदा के लिए जाना जाता है, बल्कि इसकी समृद्ध आदिवासी संस्कृति, लोक कलाएं और हस्तशिल्प इसे एक विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। झारखंड के हस्तशिल्पों में केवल कला नहीं, बल्कि एक समुदाय की आत्मा, इतिहास और जीविका भी छिपी होती है।

झारखंड की अधिकांश हस्तशिल्प कलाएं आदिवासी समुदायों से जुड़ी हुई हैं। यहाँ की लोककला प्रकृति, जनजातीय जीवन और दैनिक जीवन की गतिविधियों से प्रेरित होती है। इन कलाओं में ग्रामीण जीवन की सादगी, मेहनत और सौंदर्यबोध झलकता है। आज जब दुनिया हस्तनिर्मित वस्तुओं की ओर फिर से आकर्षित हो रही है, तब झारखंड के हस्तशिल्प वैश्विक मंच पर अपनी विशेष जगह बना सकते हैं।

कुंजी शब्द- झारखंड,पारंपरिक , सांस्कृतिक , ग्रामीण , कला ।

1. लकड़ी की नक्काशी (Wood Carving)

झारखंड की हस्तशिल्प परंपरा में लकड़ी की नक्काशी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आदिवासी कारीगर लकड़ी पर अद्भुत डिजाइन उकेरते हैं, जिनमें देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, जानवरों की आकृतियाँ, दैनिक उपयोग की वस्तुएं और सजावटी सामान शामिल हैं। यह कला गुमला, लोहरदगा और पश्चिमी सिंहभूम जिलों में अधिक प्रचलित है। यहां के उत्पादों में प्राचीनता और आधुनिकता का सुंदर संगम देखने को मिलता है।

2. लाह शिल्प (Lac Craft)

लाह या लाख झारखंड का एक पारंपरिक हस्तशिल्प है, जिससे आकर्षक चूड़ियाँ, झुमके और अन्य गहने बनाए जाते हैं। विशेषकर महिलाएं विवाह एवं त्योहारों पर लाह की चूड़ियाँ पहनती हैं। रांची, खूंटी और सिमडेगा जिलों में यह शिल्प बहुत विकसित है। प्राकृतिक रंगों से रंगी इन चूड़ियों में न केवल परंपरा है, बल्कि सौंदर्य और सामाजिक प्रतीक भी छिपा होता है।

3. डोकरा कला (Dhokra Art)

डोकरा या धातु शिल्प झारखंड की सबसे प्राचीन कलाओं में से एक है। यह कला मोम ढलाई तकनीक से पीतल या कांसे की मूर्तियाँ बनाने की पारंपरिक विधि है। इन मूर्तियों में प्राचीनता, आदिवासी भावनाएं और शिल्प कौशल की उत्कृष्टता दिखाई देती है। चाईबासा, सरायकेला और कुछ अन्य जिलों में यह कला आज भी जीवित है। वैश्विक बाजार में डोकरा कला की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है।

4. सोहराय और कोहवर चित्रकला (Sohrai and Kohvar Painting)

झारखंड की पारंपरिक चित्रकला, विशेष रूप से 'सोहराय' और 'कोहवर', राज्य की सांस्कृतिक पहचान है। सोहराय चित्रकला मुख्य रूप से फसल कटाई के समय बनाई जाती है, जबकि कोहवर चित्रकला विवाह समारोहों के अवसर पर घरों की दीवारों पर बनाई जाती है। इन चित्रों में जानवर, पौधे, देवी-देवता और प्रतीकात्मक चित्रों का उपयोग होता है। महिलाएं इन्हें मिट्टी, कोयला और प्राकृतिक रंगों से सजाती हैं। अब यह कला कैनवास और कपड़ों पर भी दिखाई देने लगी है।

5. पत्थर शिल्प (Stone Craft)

झारखंड में कई क्षेत्र जैसे रजरप्पा, हजारीबाग और देवघर पत्थर की मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ के कारीगर स्थानीय पत्थरों से मंदिरों, मूर्तियों और सजावटी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। इन मूर्तियों में पारंपरिक धार्मिक भावनाएं और वास्तुकला की समृद्धता झलकती है। झारखंड की यह कला प्राचीन भारत की स्थापत्य परंपरा की निरंतरता को दर्शाती है।

6. पत्तों से बनी कलाकृतियाँ (Leaf Craft)

झारखंड के जंगलों में पाए जाने वाले सखुआ, पलाश और अन्य पेड़ों की पत्तियों से स्थानीय महिलाएं और कारीगर टोकरियाँ, सजावटी वस्तुएं, प्लेटें और चित्र बनाते हैं। यह कला पर्यावरण के अनुकूल है और इसकी मांग अब शहरी बाजारों में भी बढ़ रही है। यह न केवल कलात्मक दृष्टि से सुंदर है, बल्कि आजीविका का एक सशक्त माध्यम भी है।

7. बाँस और बेंत शिल्प (Bamboo and Cane Craft)

झारखंड के कई क्षेत्रों में बाँस और बेंत से टोकरियाँ, चटाइयाँ, फर्नीचर और सजावटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। यह शिल्प आदिवासी समुदायों में अत्यधिक प्रचलित है और पूरी तरह से पारंपरिक तकनीकों पर आधारित है। वर्तमान में इन उत्पादों को आधुनिक डिज़ाइन में ढालकर बड़े बाज़ारों में बेचा जा रहा है।

निष्कर्ष

झारखंड के हस्तशिल्प केवल पारंपरिक कारीगरी का उदाहरण नहीं हैं, बल्कि यह राज्य की सांस्कृतिक आत्मा और सामाजिक-आर्थिक जीवन का भी अहम हिस्सा हैं। ये कलाएं सदियों पुरानी परंपराओं को संजोए हुए हैं और आज भी उनमें नवीनता और प्रासंगिकता बनी हुई है। ये न केवल राज्य के कारीगरों को रोजगार प्रदान करती हैं, बल्कि झारखंड की सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूती देती हैं।

आज के समय में आवश्यकता है कि इन हस्तशिल्पों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उचित स्थान मिले। सरकार, स्वयंसेवी संस्थाएं और निजी उद्यम मिलकर इन पारंपरिक कलाओं को बढ़ावा दें, आधुनिक डिज़ाइन और तकनीक से जोड़ें और उन्हें ई-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म तक पहुँचाएं। इससे न केवल कारीगरों की आर्थिक स्थिति बेहतर होगी, बल्कि झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर भी सुरक्षित रहेगी।

अंततः, झारखंड के हस्तशिल्प हमें यह सिखाते हैं कि परंपरा और आधुनिकता साथ-साथ चल सकती हैं, बशर्ते हम उन्हें सहेजने और प्रोत्साहित करने का सामूहिक प्रयास करें।

संदर्भ –

1. फोक ट्रेडिशनल आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स ऑफ झारखंड – उज्जवल घोष
2. झारखंड: इतिहास एवं संस्कृति – डॉ. वी. वीरोत्तम
3. झारखंड के इतिहास एवं संस्कृति – डॉ. शत्रुघ्न कुमार पांडेय
4. झारखंड की आदिवासी कला परंपरा – मनोज कुमार कपरदार

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 32-36
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यालयों में ड्रॉप आउट के कारण और उपाय

राजीव प्रियदर्शनम
शोधार्थी, (शिक्षा शास्त्र),
सोना देवी विश्वविद्यालय, घाटशिला, पूर्वी सिंहभूम, झारखण्ड

सारांश

ड्रॉप आउट का तात्पर्य है कि कोई छात्र या व्यक्ति योग्यता पूरी करने के पहले ही विद्यालय महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय को छोड़ दें। शिक्षा के संदर्भ में ड्रॉप आउट वैसे छात्र जो अपने शैक्षिक पाठ्यक्रम को पूरा करने से पहले ही अपना रजिस्ट्रेशन अथवा दाखिला रद्द कर देता है। भारत में स्कूल छोड़ने वालों का मुद्दा देश की शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण चुनौती बना हुआ है। शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के प्रयासों के बावजूद कई बच्चे अपनी पढ़ाई पूरी करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देते हैं। यह समस्या व्यक्तिगत भविष्य को भी प्रभावित करती है और भारत के समग्र विकास में बाधा डालती है। शिक्षा के संदर्भ में ड्रॉप आउट एक छात्र होता है जो उनके पाठ्यक्रम को पूरा करने से पहले विद्यालय या महाविद्यालय से अपना रजिस्ट्रेशन या दाखिला रद्द कर देता है।यह आमतौर पर छात्र द्वारा विद्यालय या महाविद्यालय छोड़ने से पहले आता है। ड्रॉप आउट के कई कारण हो सकते हैं जैसे वित्तीय समस्याएं, शैक्षिक स्तर पर ध्यान नहीं देना सामाजिक या पारिवारिक दवा और अन्य व्यक्तिगत अथवा पेशेवर रुक सकता है,। ड्रॉप आउट छात्रों के लिए शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने की संभावना काम हो जाता है, जो जो उनके भविष्य में करियर विकास के लिए एक बहुत बड़ी बाधा हो सकती है। संचालन अधिकारियों और शिक्षकों को छात्रों की समय-समय पर उपस्थित को बढ़ावा देने और उनकी सहायता करने की आवश्यकता प्रतीत होती है ताकि ड्रॉप आउट के दर को कम किया जा सके।

बीज शब्द- ड्रॉप आउट, व्यक्तिगत शिक्षा, शैक्षिक कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान

परिचय:-

शिक्षा एक समृद्ध और सशक्त समाज की नींव है। शिक्षक किसी भी राष्ट्र के विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय विद्यालयों में ड्रॉप आउट दर नीति निर्माता और शिक्षकों के लिए चिंता का एक प्रमुख कारण रही है। यह शब्द ड्रॉप आउट शब्द का इस्तेमाल उन छात्रों के लिए किया जाता है जो विद्यालय महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करने से पहले छोड़ देते हैं।शिक्षा एक मौलिक अधिकार है जो सामाजिक पूर्वाग्रह और असमानताओं का मुकाबला कर सकती है। जबकि भारत में सर्व शिक्षा अभियान जो अब समग्र शिक्षा के रूप में जानी जाती है उसमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसी पहलुओं के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा में लगभग सार्वभौमिक नामांकन सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है। देश की उन्नति असाधारण रूप से से अपने नागरिकों के शिक्षा पर

निर्भर करती है जो विश्व व्यापी परिप्रेक्ष्य का एक निर्माण सत्य है। शिक्षा एक व्यक्ति को एक उत्पादक नागरिक बनाने के लिए एक केंद्रीय भूमिका निभाती है और राष्ट्र की प्रगति में योगदान देने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। हालांकि विकासशील देशों में बच्चे विभिन्न कर्म से पढ़ाई छोड़कर अपने शिक्षा के अधिकार से वंचित हो गए हैं। पढ़ाई छोड़ने के जोखिम वाले छात्र को आमतौर पर SARDO के रूप में जाना जाता है। यह फिलीपींस के शिक्षा विभाग द्वारा गढ़ा गया एक शब्द है जिसे एक छात्र के रूप में परिभाषित किया जाता है जो पढ़ाई छोड़ने वाला विद्यार्थी उम्मीदवार बनने की संभावना रखता है।कॉलेज डिक्शनरी ड्रॉप आउट को विश्लेषण और संज्ञा के रूप में सूचीबद्ध करती है,जिसमें ड्रॉप आउट भी लिखा है। यदि आवृत्ति के अनुसार देखेंगे तो ड्राप आउट समकालीन अमेरिकी अंग्रेजी के कपास में ड्रॉप आउट की तुलना में लगभग 10 गुना अधिक बार आता है।

समस्या की पहचान करना

अंतर्वस्तु, ड्रॉप का दर क्या है? ड्रॉप आउट ऑफ दर और निकास डर के बीच क्या अंतर है? ड्रॉप का दरो को मापने का महत्व। ड्रॉप का दर की गणना कैसे करें? ड्राप ऑफ़ दर उन उपयोगकर्ताओं का प्रतिशत है जो किसी विशिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने से पहले किसी प्रक्रिया या कार्यवाही को छोड़ देते हैं।

ड्रॉप आउट समस्या

1. आर्थिक पृष्ठभूमि 2. पारिवारिक दबाव 3. शैक्षणिक स्तर पर ध्यान ना देना

4. विद्यालय से जुड़े कारण 5. सामाजिक मानदंड 6. अन्य कारण

उद्देश्य एवं लक्ष्य

ड्रॉप आउट बच्चों से जुड़े उद्देश्य

1 ड्रॉप आउट बच्चों की संख्या को कम करना

2 ड्रॉप आउट बच्चों की शैक्षणिक योग्यता हासिल करने में मदद करना

3 ड्रॉप आउट बच्चों को फिर से विद्यालय में नामांकित करना

4 ड्रॉप आउट बच्चों को शिक्षा की सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना

5 राजनीतिक इच्छा शक्ति और केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच उचित समन्वय स्थापित करना।

6 ड्रॉप आउट बच्चों को शिक्षा के सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना।

धारणा या विचार -

1 ड्रॉप आउट के कई कारण हो सकते हैं जैसे वित्तीय समस्या शैक्षिक स्तर पर ध्यान ना देना सामाजिक या पारिवारिक दबाव और अन्य व्यक्तिगत अथवा पेशेवर उत्सुकताएं।

2 समय प्रबंधन कौशल और ड्रॉप आउट इरादों के बीच संबंध पर विचार विमर्श करना।

3 ड्रॉप आउट इरादों और वास्तविक ड्रॉप आउट के बीच संबंध की जांच करें

4 रुचि और ड्रॉप आउट के बीच संबंध पर विचार करना।

शिक्षा के संबंध में ड्रॉप आउट दर एक सुंदर एक सांख्यिकी माप है जो उन उन छात्रों के प्रतिशत को दर्शाता है जो अपना शैक्षिक कार्यक्रम पूरा करने से पहले आमतौर पर उच्च विद्यालय डिप्लोमा या समकक्ष प्रमाण पत्र प्राप्त करने से पहले ही छोड़ देते हैं।

उच्च ड्रॉप आउट दरो को व्यक्तियों और समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि वे भविष्य के शैक्षिक और रोजगार के अवसरों को सीमित कर सकते हैं।

शैक्षिक संस्थान और नीति निर्माता रुझान ऑन की पहचान करने और उन्हें कम करने के लिए राजनीति विकसित करने के लिए ड्रॉप आउट दलों की बारीकियां से निगरानी करते हैं। हस्तक्षेप में जोखिम वाले छात्रों को अतिरिक्त सहायता और संसाधन प्रदान करना, वैकल्पिक शिक्षा कार्यक्रम लागू करना और छात्रों के विघटन में योगदान देने वाले कारकों को संबोधित करना शामिल हो सकता है। शैक्षिक समानता को बढ़ावा देने और समग्र शैक्षिक परिणाम के में सुधार करने के प्रयासों में ड्रॉप आउट दर को कम करना एक प्रमुख प्राथमिकता है।

वर्तमान समय की समस्या की प्रासंगिकता

ड्रॉप आउट की समस्या का पता लगाना और उनका निराकरण करना। विद्यालय छोड़ने की समस्या आर्थिक रूप से वंचित बच्चों को मुख्य धारा के विकास पथ में लाने के लिए प्रयास करना।

कार्य की योजना

1 प्राथमिक कक्षाओं से ही बेहतर शिक्षा प्रदान करना

2 सामुदायिक संगठनों और विद्यालयों का सहयोग

3 परिवारों को शामिल करना

4 छोटे विद्यालय बनाना

5 प्रशिक्षण केंद्र खोलना

6 छात्रों की सहभागिता बढ़ाना

विद्यालय छोड़ने वालों पर साहित्य की आलोचनात्मक समीक्षा दिसंबर 2013 शैक्षिक अनुसंधान समीक्षा डी ओ आई 10, 1016/j,edurev2013,o5,002 l

यह पेपर समय से पहले स्कूल छोड़ने पर बढ़ते साहित्य की समीक्षा करता है। हम स्पष्ट करते हैं कि समय से पहले विद्यालय छोड़ने से क्या-क्या खतरनाक परिणाम होते हैं और साहित्य में उठाए गए अंतर निहित समस्याओं और पद्धतिगत मुद्दों पर बात करते हैं। यह पेपर उन स्तर, विधियों और मॉडल की जांच करता है । जिनके साथ विषय का अध्ययन किया गया है और उनमें से प्रत्येक के संभावित बिंदुओं पर चर्चा करता है।

विषय का विश्लेषण

सर्वेक्षण ड्रॉप आउट विश्लेषण के लिए शोधकर्ता को कम से कम दो पैरामीटर को ध्यान में रखना चाहिए।

1. **प्रतिक्रिया दर**

प्रतिक्रिया दर उन लोगों की संख्या है जिन्होंने अपने प्रतिक्रियाएं प्रस्तुत की है, जिन्हें कल नमूने से विभाजित किया गया है। यह देखा गया है की अधिकांश सर्वेक्षण के मामले में प्रतिक्रिया दर की औसत सीमा 10– 15% है।

2. **पूर्णता दर**

पूर्णता दर की गणना वास्तव में संपूर्ण सर्वेक्षण को पूरा करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या को सर्वेक्षण में शामिल होने वाले कुल उत्तरदाताओं की संख्या से विभाजित की जाती है।

एक शोध सर्वेक्षण ड्रॉप आउट विश्लेषण क्यों आयोजित किया जाना चाहिए?

1 शोधकर्ताओं के लिए प्रभावी सर्वेक्षण बनाना बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसमें ड्रॉप आउट दर कम हो। सर्वेक्षण ड्रॉपआउट विश्लेषण करने से ऐसे कारकों के बारे में जानकारी मिलती है।

2 सर्वेक्षण ड्रॉप आउट विश्लेषण परिणाम के आधार पर ही प्रश्नों का प्रवाह तय किया जा सकता है

ड्रॉप आउट विश्लेषण

क्लिनिकल ट्रायल से ड्रॉप आउट होना आम बात है और यह अध्ययन के नतीजे को प्रभावित कर सकता है भले ही ट्रायल के अलग-अलग हिस्सों में ड्रॉप आउटडोर एक जैसी दिखे। ड्रॉप आउट सांख्यिकीय विश्लेषण विशिष्ट डेटा विश्लेषण वीडियो को संदर्भित करता है जिसका उपयोग या सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। इस विधि में हम अज्ञात समस्या को सरल भागों में विभाजित करते हैं और फिर अवलोकन करते हैं की समाधान ज्ञात करने के लिए इन्हें कैसे पुनः संयोजित किया जा सकता है।

विश्लेषण की इकाई किसी शोध परियोजनाओं के लिए सबसे छोटा स्तर है। विश्लेषण की सही इकाई चुनना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आपको अपने डेटा के बारे में अधिक सटीक निष्कर्ष निकालने में मदद करता है।

विश्लेषण की इकाई क्या है ?

विश्लेषण की इकाई डाटा सेट में सबसे छोटा तत्व है जिसका उपयोग किसी घटना की पहचान करने और उसके वर्णन करने के लिए किया जा सकता है अथवा सबसे छोटी इकाई जिसका उपयोग किसी विषय के बारे में डाटा एकत्र करने के लिए किया जा सकता है ।भारत में विद्यालय छोड़ने की दर को कैसे कम करें यह एक विचारणीय प्रश्न है। स्कूल के बुनियादी ढांचे में सुधार ड्रॉपआउट दरों को कम करने में महत्वपूर्ण है। कई बच्चे विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण विद्यालय छोड़ देते हैं। समुदायों सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्थानीय कारकों के साथ काम करके CRY सुनिश्चित करता है की विद्यालयों में पर्याप्त कक्षाएं, स्वच्छ पानी और स्वच्छता उपलब्ध है कि नहीं। यू डी आई एस ई (UDISE) 2021- 22 के मुताबिक भारत में स्कूलों में ड्रॉप आउटडोर 12.6% है। यह दर माध्यमिक स्तर (कक्षा 9- 10) पर सबसे ज्यादा है। वहीं प्राथमिक स्तर (कक्षा 1- 5) पर ड्रॉप आउट दर1.5% और उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6- 8) पर 3% है। UDISE के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में कल ड्रॉप आउटदर 1.5% है। जो पिछले वर्ष की तुलना में कम है।

विद्यालय छोड़ने कि दर को लेकर कुछ खास बातें

शिक्षा के सभी स्तरों पर लड़कियों की तुलना में लड़कों के लिए ड्रॉपआउट दर ज्यादा है।

ड्रॉपआउट दर सबसे ज्यादा भारतवर्ष में उड़ीसा जैसे राज्य में है जहां 27.3 प्रतिशत है।

भारत में स्कूल छोड़ने की समस्या को काम करने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार माता-पिता और समुदायों के बीच जागरूकता पैदा करना जरूरतमंद छात्रों को वित्तीय सहायता देना और बाल श्रम से जुड़े मुद्दों पर ध्यान देना होगा। विद्यालय छोड़ने के सबसे बड़े कर्म में घरेलू कामों में मदद, आर्थिक स्थिति और रुचि की कमी शामिल है। UDISE 21-22 के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में कुल ड्रॉप आउट डर 1.5% है जो पिछले वर्ष से 1.8% की दर से काम है।

निष्कर्ष

विद्यालय छोड़ने की समस्या सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आम बात हो गई है। ड्रॉप आउट को कम करने के लिए माता-पिता की सहभागीता उनसे बातचीत खेलों में भागीदारी और रोल मॉडल होना मजदूर होता है। ड्रॉप आउट में वैसे बच्चों को ज्यादातर देखा गया है कि वह परिवार की मदद के लिए कहीं ना कहीं रोजगार में लिप्त रहते हैं। विद्यालय की गुणवत्ता भी ड्रॉप आउट के लिए कुछ हद तक जिम्मेदार होती है और इसकी रोकथाम के लिए समाज में जागरूकता की काफी आवश्यकता है। सभी को सरकार के द्वारा प्रदत्त सारी योजनाओं को ग्रामीण के जमीनी स्तर तक बताना होगा और शिक्षा कितनी जरूरी है बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक कितनी जरूरी होती है यह काफी आवश्यक है। शिक्षा मानव का बहू मुख्य विकास करता है और समाज को एक नई दिशा प्रदान करती है हमें राष्ट्र के

नाम निर्माण में नौनिहालों को अधिक से अधिक संख्या में विद्यालय जाने के लिए प्रेरित करना होगा ताकि हमारा राष्ट्र एक संबल विकसित सुदृढ़ और पूरे विश्व मे अग्रगामी बने।

संदर्भ-

1. फार्मिंग ड्रॉप आउट नोटिस ओं थे पॉलिटिक्स ऑफ़ एन अर्बन हाई स्कूल (सनी सीरीज टीचर एंपावरमेंट एंड स्कूल रिफॉर्म),लेखक मिशेलफाइन ,पब्लिकेशन स्टेट यूनिवर्सिटी का न्यू यॉर्क 5 मार्च 1991
2. लेसन फ्रॉम ए थर्ड ग्रेड ड्रॉप आउट में, लेखक ऋषि रिग्वे, प्रकाशक थॉमस नेल्सन 2017
3. डोंट ड्रॉपआउट ऑन यू ,लेखक व्हिटनीडी स्मिथ और ड्वेन ग्राहम ,*प्रकाशक आउट स्कर्ट्सप्रेम* 30 अप्रैल 2019
4. इंश्योरिंग दैट नो चाइल्डईस लेफ्टबिहाइंड,लेखक जे डी जॉन्स,पब्लिकेशन यूनिवर्स 1 अगस्त 2018

मोबाइल-9934039915. E.mail-rajivnamrata2002@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 37-44
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

IMPACT OF EARLY ENTERAL NUTRITION ON POSTOPERATIVE RECOVERY IN CRITICALLY ILL GASTROINTESTINAL SURGERY PATIENTS

Rakesh Ranjan,
Research Scholar,
University Department of Home Science (Food and Nutrition),
Patliputra University, Patna, Bihar, India.
Sanjay Kumar Mishra,
Research Scholar,
Post Graduate Department of Home Science- Food & Nutrition,
Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar, India.
Ranjay Kumar Kanoujiya,
Technical officer (Ophthalmology),
Regional Institute of ophthalmology,
Indra Gandhi Institute of Medical Sciences, Patna, Bihar, India.
Sujoy Roy
Dietician,
All India Institute of Medical Sciences, Deoghar, Jharkhand, India.

ABSTRACT
Background: The impact of early enteral nutrition (EEN) on postoperative outcomes in gastrointestinal surgery, critically ill patients remains underexplored despite its potential benefits. This study investigated the effects of early enteral nutrition (EEN) on recovery markers and complications in this patient population. Early Enteral Nutrition (EEN) in critically ill postoperative gastrointestinal surgery patients is associated with improved outcomes. It can lead to reduced mortality, decreased length of hospital stay, gastrointestinal function and improved wound healing.
Methods: For this purpose, a cross sectional-observational study was carried out on 190 patients who underwent gastrointestinal surgery. The patients were randomly assigned to receive either early enteral nutrition (EEN) within 48 hours after the surgery or late enteral nutrition more than 48 hours. The main outcomes assessed were rate of infections, duration of hospitalization and total mortality. The secondary outcomes assessed included the duration until the first bowel movement,

gastrointestinal problems, and wound healing. Albumin and pre-albumin levels were used to evaluate the nutritional status of patients.
Results: The use of early enteral nutrition (EEN) resulted in a substantial decrease in infection rates (25% *vs.* 35%) and a shorter duration of hospital stay (7.6 *vs.* 8.9 days). The overall morbidity rate was slightly lower; however the difference was only marginally significant (19% *vs.* 33%). Patients with early enteral nutrition (EEN) also exhibited a reduced duration until the first bowel movement (35 hours *vs.* 65 hours), a higher incidence of gastrointestinal surgical complications (23% *vs.* 56%), and enhanced wound healing. The early enteral nutrition (EEN) group had a superior nutritional state at discharge, characterized by elevated levels of albumin and pre-albumin.
Conclusion: Early Enteral Nutrition (EEN) had a considerable positive impact on the postoperative outcomes of patients undergoing gastrointestinal surgery. It effectively reduced the infection rates, hospital stay duration and gastrointestinal surgical complications. Additionally, early enteral nutrition (EEN) improved nutritional markers and enhanced patient satisfaction. These findings endorsed the integration of early enteral nutrition (EEN) into conventional postoperative therapy to enhance recovery but no any major impact on total mortality.
Key-words: Early enteral nutrition, gastrointestinal surgery, critically ill, Infection, Mortality.

INTRODUCTION:

Numerous studies have demonstrated that early enteral nutrition (EEN) significantly benefits postoperative recovery in critically ill patients undergoing gastrointestinal surgery. It has the potential to decrease the likelihood of complications, shorten the duration of hospital stays, enhance nutritional status, and improve immune function, all of which contribute to better recovery and overall outcomes. Early enteral nutrition (EEN) can effectively reduce the occurrence of postoperative infections, peritonitis, and multiple organ failure by modulating the inflammatory response and strengthening the immune system. Furthermore, EEN aids in the recovery of gastrointestinal function, encourages bowel movements, and minimizes the risk of ileus. By ensuring timely and sufficient nutrition, early enteral nutrition (EEN) assists patients in maintaining or enhancing their nutritional status, which is vital for wound healing and overall recovery. Research has linked enteral nutrition (EEN) to lower rates of postoperative complications and mortality in certain studies, especially in the context of emergency gastrointestinal surgery. Patients who receive early enteral nutrition (EEN) may report higher satisfaction levels due to a faster recovery and an improved overall experience. EEN is particularly advantageous for critically ill patients who have undergone gastrointestinal surgery. Typically, early enteral nutrition (EEN) is initiated within 24 to 48 hours post-surgery, as soon as the patient's condition permits. It is crucial to monitor patients closely to ensure they tolerate the nutrition and to make necessary adjustments to the feeding regimen.

Parenteral nutrition (PN) and enteral nutrition (EN) are two crucial supportive therapies for patients undergoing gastrointestinal surgery. Whenever feasible, early enteral nutrition (EEN) should be favored over total parenteral nutrition (TPN), particularly when the patient possesses a functioning gut. The significance of administering early enteral nutrition (EEN) to enhance recovery in gastrointestinal surgery patients post-operation is a vital focus of clinical research. This is due to the fact that gastrointestinal procedures often lead to numerous complications, increased

nutritional needs, and challenges in recovery. The response to these procedures is characterized by an elevated metabolic rate, resulting in greater energy expenditure and protein breakdown. Such metabolic disturbances can exacerbate recovery challenges, extend hospital stays, and heighten susceptibility to complications. Traditionally, there has been a tendency to delay the reintroduction of food through the digestive tract following gastrointestinal surgery, primarily due to concerns regarding the functionality of the gastrointestinal system and the surgical connections. However, recent shifts in clinical practice suggest that early enteral nutrition (EEN) may not only be feasible but could also offer significant benefits for this patient population.

A multitude of studies have indicated that early enteral nutrition (EEN) positively impacts the enhancement of intestinal function and decreases the occurrence of postoperative complications, particularly in cases of severe illness. Furthermore, early enteral nutrition (EEN) has been shown to be more physiological, to avert morphologic and functional alterations in the gut related to trauma, to regulate immune and inflammatory responses to injury, and to be more cost-effective compared to total parenteral nutrition (TPN). Nevertheless, the practicality and effectiveness of early enteral nutrition (EEN) in patients undergoing digestive tract surgery remain uncertain. Randomized controlled trials (RCTs) suggested that the early resumption of oral intake does not decrease the duration of postoperative ileus or lead to a significantly increased rate of nasogastric tube reinsertion. The present meta-analysis was performed to investigate RCTs in patients with and without early enteral nutrition (EEN) after digestive tract surgery to provide concrete clinical evidence for the feasibility and efficacy of early enteral nutrition (EEN).

The objective of this research was to assess the effects of early enteral feeding on postoperative recovery outcomes, including infection rates, duration of hospital stay, and overall morbidity, in patients undergoing gastrointestinal surgery.

Aim: To determine the impact of early enteral nutrition (EEN) versus late enteral nutrition (LEN) on intensive care unit (ICU) outcome in postoperative gastrointestinal surgical patients for both groups.

Methods: For this purpose, a cross sectional-observational study was carried out on 190 patients who underwent gastrointestinal surgery and admitted at the intensive care unit (ICU). The patients were randomly assigned to receive either early enteral nutrition (EEN) within 48 hours after the surgery or late enteral nutrition (LEN) more than 48 hours. The study included patients with age more than 18 years who underwent gastrointestinal surgeries and critically ill. Patients with renal failure, liver failure, and extensive burns were excluded in this study. Preoperative nutrition screening was done using Nutritional Risk Screening (NRS 2000). Patients were divided into two groups: group A: 95 (50%) patients received early enteral nutrition (EEN) within 48 hours stay in ICU and group B: 95 (50%) patients received late enteral nutrition (LEN) more than 48 hours stay in ICU. Early enteral feeding in group A was started within 48 hours postoperatively and late enteral feeding in group B was started more than 48 hours via Ryle tube or feeding jejunostomy. Total feeding volume, macro and micro nutrients provided in early and late enteral feeding vary patient to patient depends on multiple factors e.g. age, gender, urine output, post operative response, feeding tolerance level and other vitals. All micronutrients were added to both groups, including water-soluble and fat-soluble vitamins, minerals, and trace elements. Patients were

followed up daily to assess gastrointestinal tolerance, re-feeding syndrome, electrolyte balance and other vital parameters. The energy (25-30kcal/kg of ideal body weight) and protein (1.2- 1.5gms/kg of ideal body weight) requirement was achieved within 3 to 7 days for both group A and group B. The main outcomes assessed were rate of infections, duration of hospitalization and total mortality. The secondary outcomes assessed included the duration until the first bowel movement, gastrointestinal problems, and wound healing. Albumin and pre-albumin levels were used to evaluate the nutritional status of patients. In addition, all patients were followed up for 3-month survival after discharge and readmission within 30 days.

Results:

Table 1: Comparison between the studied groups regarding demographic data

		Early Enteral Nutrition 95 (50%)	Late enteral Nutrition 95 (50%)
Gender	Male	55 (58%)	55 (58%)
	Female	40 (42%)	40 (42%)
Age (Years)		47.6 + 14.7 __	48.4 + 13.7__
ICU stay (days)	Mean + SD	4.65 + 2.29 __	5.68 + 2.74__
	Need for MV	36 (38%)	48 (50.5%)
	Need for inotropes	17 (18%)	21 (22%)
ICU outcomes	ICU survival	90 (94.73%)	78 (82%)
	In hospital mortality	5 (5.26%)	7 (7.36%)
	3 months survival	78 (82%)	72 (76%)
	ICU readmission rate	25 (26.31%)	26 (27.36)

Surgical data: A statistically significant improvement in serum albumen and protein levels was found at postoperative day 3 and postoperative day 5 in comparison with postoperative day 1 in the early enteral nutrition group, but there was no statistically significant difference in serum protein levels at postoperative day 3 and postoperative day 5 in comparison with postoperative day 1 in the late enteral nutrition group. There was a statistically significant improvement in serum urea levels in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups respectively. There was a statistically significant improvement in serum calcium levels also in both the early enteral group and late enteral group.

Table 2: Comparison between the studied groups regarding types of operation and surgical complications

		Early Enteral Nutrition 95 (50%)	Late enteral Nutrition 95 (50%)
Types of operation	Esophagectomy	18 (18.94%)	15 (15.79%)
	Gastrectomy	43 (45.26%)	35 (36.84%)
	Colectomy	13 (13.68%)	09 (9.47%
	Pancreaticodenectomy	09 (9.47%)	13 (13.68%)
	Repair of intestinal obstruction	12 (12.63)	23 (24.21%)
Surgical complications	Wound infection	08 (8.40%)	25 (26.31%)
	Wound leakage	12 (12.63%)	27 (28.42%)
	Paralytic ileus	02 (2.10%)	04 (4.20%)

Effect of nutrition on infection markers: Postoperative infection incidence was 24/95 (25.26%) cases in the early enteral feeding group and 33/95 (34.74%) cases in the late enteral feeding group. The use of early enteral nutrition (EEN) resulted in a substantial decrease in infection rates (25% vs. 35%) and a shorter duration of hospital stay (7.6 vs. 8.9 days). Patients with early enteral nutrition (EEN) also exhibited a reduced duration until the first bowel movement (35 hours vs. 65 hours), a higher incidence of gastrointestinal problems (17% vs. 35%), and enhanced wound healing. The early enteral nutrition (EEN) group had a superior nutritional state at discharge, characterized by elevated levels of albumin and pre-albumin. We found a significant decrease in the white-blood cell (WBC) count at POD7 in comparison with POD1 in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups respectively. There was a significant decrease in CRP (C-reactive protein) levels at POD3, POD5, and POD7 in comparison with POD1 in both early enteral nutrition group and late enteral nutrition groups.

Discussion:

Nutritional support is a vital part of the therapy of all gastrointestinal surgical patients. Early enteral nutrition initiation has a significant effect on postoperative recovery in a wide variety of patients. Early enteral feeding appears to provide significant benefits to those who have gastrointestinal surgery, severely injured and/or malnourished and at a higher risk of infectious complications. The improvement of nutritional status and quality of life are the most important nutritional goals in the postoperative period, including the parameters of mortality, morbidity, and length of hospital stay, while taking into consideration of postoperative infection. CRP(C-reactive protein) may be a first signal of a complicated course such as infection, so in order to assess metabolic recovery, the CRP/albumin ratio is a promising new prognostic parameter that has to be validated in the future. The prognostic role of CRP(C-reactive protein) and albumin can be explained by their abilities to reflect inflammation in the acute phase in critical settings and in the nutritional status of critically ill patients, respectively. We aimed in this study to determine the

effect of early enteral nutrition and late enteral nutrition on nutritional status, postoperative infection rate, and ICU outcome in postoperative gastrointestinal surgical patients and to investigate the effect of early enteral nutrition and late enteral nutrition on CRP/albumin ratio as an inflammatory marker and its correlation with SOFA score.

Effect of nutrition on nutritional status: In our study, there was a statistically significant improvement in serum calcium levels at POD7 in comparison with POD1 in early enteral nutrition group, with no statistically significant difference in serum calcium levels at POD7 in late enteral nutrition group. In our study, there was a statistically significant improvement in serum urea and creatinine levels at POD7 compared with POD1 in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups respectively. Due to low baseline serum total proteins and albumin levels, our study showed a statistically significant improvement in serum protein levels found at POD3 and POD5 in comparison with POD1 in early enteral nutrition group but there was no statistically significant difference in serum protein levels at POD3 and POD5 in comparison with POD1 in late enteral nutrition group. In addition, there was no statistically significant difference in serum protein level at POD7 in comparison with POD1 in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups.

Effect of nutrition on infection markers: We found a significant decrease in the WBC count at POD7 in comparison with POD1 in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups. There was a significant decrease in CRP levels at POD3, POD5, and POD7 in comparison with POD1 in both early enteral nutrition and late enteral nutrition groups.

ICU outcome: In our study, the mean days for ICU stay in group A (early enteral nutrition group) were 4.65±2.29 days and in group B (late enteral nutrition group) were 5.68±2.74 days with no significant differences. In our study, ICU survival rate was statistically higher in group A (early enteral nutrition group) than group B (late enteral nutrition group). Late enteral nutrition group had slightly higher in-hospital mortality than early enteral nutrition group.

Conclusion: Early Enteral Nutrition (EEN) had a considerable positive impact on the postoperative outcomes of patients undergoing gastrointestinal surgery. It effectively reduced the infection rates, hospital stay duration and gastrointestinal surgical complications. Additionally, early enteral nutrition (EEN) improved nutritional markers and enhanced patient satisfaction. These findings endorsed the integration of early enteral nutrition (EEN) into conventional postoperative therapy to enhance recovery but no any major impact on total mortality.

References:

1. Mishra Sanjay, Kumari Mamta, et al., Effect of early enteral nutrition in critically ill patients and their outcomes, 2023 IJNRD/volume 8, Issue 6 June 2023, pg no. c373-c384.
2. Faris, Farouk M.; Fattah, Alia H.A., et. al; impact of early enteral and parenteral nutrition on postoperative outcome after abdominal surgery, Research and Opinion in Anesthesia and Intensive Care 8(4):p 181-188, Oct-Dec 202.
3. Siegel RL, Giaquinto AN, Jemal A. Cancer statistics, 2024. CA Cancer J Clin.2024; 74(1):12–49.
4. Sonkin D, Thomas A, Teicher BA. Cancer treatments: Past, present, and future. Cancer Genet. 2024; 286–287:18–24.

5. Yasutaka Koga, Motoki Fujita, Takeshi Yagi, Masaki Todani, Takashi Nakahara, Yoshikat su Kawamura, Kotaro Kaneda, Yasutaka Oda, Ryosuke Tsuruta, et al. Early enteral nutrition is associated with reduced in-hospital mortality from sepsis in patients with sarcopenia, Journal of critical care, volume 47, October 2018, Pages 153-158.
6. Braun K, Utech A, Velez ME, Walker R. Electrolyte abnormalities and associated factors before and after nutrition support J Parenter Enteral Nutr. 2018; 42:387–392.
7. Oh TK, Ji E, Na HS, Min B, Jeon YT, Do SH, et al C-reactive protein to albumin ratio predicts 30-day and 1-year mortality in postoperative patients after admission to the intensive care unit J Clin Med. 2018;7:39.
8. Yu HM, Tang CW, Feng WM, Chen QQ, Xu YQ, Bao Y. Early enteral nutrition versus parenteral nutrition after resection of esophageal cancer: a retrospective analysis Indian J Surg. 2017; 79:13–18.
9. Ge X, Cao Y, Wang H, Ding C, Tian H, Zhang X, et al Diagnostic accuracy of the postoperative ratio of C-reactive protein to albumin for complications after colorectal surgery World J Surg Oncol. 2017; 15:15.
10. Ishizuka M, Nagata H, Takagi K, Iwasaki Y, Shibuya N, Kubota K. Clinical significance of the C-reactive protein to albumin ratio for survival after surgery for colorectal cancer Ann Surg Oncol. 2016; 23:900–907.
11. Tamiya H, Yasunaga H, Matusi H, Fushimi K, Akishita M, Ogawa S. Comparison of short-term mortality and morbidity between parenteral and enteral nutrition for adults without cancer: a propensity-matched analysis using a national inpatient database Am J Clin Nutr. 2015; 102:1222–1228.
12. Kim MH, Ahn JY, Song JE, Choi H, Ann HW, Kim JK, et al The C-reactive protein/albumin ratio as an independent predictor of mortality in patients with severe sepsis or septic shock treated with early goal-directed therapy PLoS ONE. 2015; 10:e0132109.
13. Harvey SE, Parrott F, Harrison DA, Bear DE, Segaran E, Beale R, et al Trial of the route of early nutritional support in critically ill adults N Engl J Med. 2014;371:1673–1684.
14. Li B, Liu HY, Guo SH, Sun P, Gong FM, Jia BQ. Impact of early enteral and parenteral nutrition on prealbumin and high-sensitivity C-reactive protein after gastric surgery Genet Mol Res. 2014; 2:7130–7135.
15. Li B, Liu HY, Guo SH, Sun P, Gong FM, Jia BQ. Impact of early enteral and parenteral nutrition on prealbumin and high-sensitivity C-reactive protein after gastric surgery Genet Mol Res. 2014; 2:7130–7135.
16. Kobayashi K, Koyama Y, Kosugi S, Ishikawa T, Sakamoto K, Ichikawa H, Wakai T. Is early enteral nutrition better for postoperative course in esophageal cancer patients? Nutrients. 2013; 5:3461–3469.
17. Park JS, Chung HK, Hwang HK, Kim JK, Yoon DS. Postoperative nutritional effects of early enteral feeding compared with total parental nutrition in pancreaticoduodectomy patients: a prospective, randomized study J Korean Med Sci. 2012; 27:261–267.

18. Chambrier C, Sztark F. French clinical guidelines on perioperative nutrition − update of the 1994 consensus conference on perioperative artificial nutrition for elective surgery in adults J Visc Surg. 2012; 49:e325–336.
19. Park JS, Chung HK, Hwang HK, Kim JK, Yoon DS. Postoperative nutritional effects of early enteral feeding compared with total parental nutrition in pancreaticoduodectomy patients: a prospective, randomized study J Korean Med Sci. 2012; 27:261–267.
20. Liu C, Du Z, Lou C, Wu C, Yuan Q, Wang J, et al Enteral nutrition is superior to total parenteral nutrition for pancreatic cancer patients who underwent pancreatico-duodenectomy Asia Pac J Clin Nutr. 2011; 20:154–160.
21. Liu C, Du Z, Lou C, Wu C, Yuan Q, Wang J, et al Enteral nutrition is superior to total parenteral nutrition for pancreatic cancer patients who underwent pancreatico-duodenectomy Asia Pac J Clin Nutr. 2011; 20:154–160.
22. Doig GS, Heighes PT, Simpson F, Sweetman EA, Davies AR. Early enteral nutrition, provided within 24 hrs of injury or intensive care unit admission, significantly reduces mortality in critically ill patients: a meta-analysis of randomized controlled trials Intensive Care Med. 2009; 35:2018–2027.
23. Curtis CS, Kudsk KA. Enteral feedings in hospitalized patients: early versus delayed enteral nutrition Pract Gastroenterol. 2009; 33:22–30.
24. S. J. Lewis et al. Early enteral nutrition within 24 hours of intestinal surgery versus later commencement of feeding: a systematic review and meta-analysis, Journal of Gastrointestinal surgery, volume 13, Issue 3, March 2009, Pages 569-575.
25. Carriere I, Dupuy AM, Lacroux A, Cristol JP, Delcourt C. Biomarkers of inflammation and malnutrition associated with early death in healthy elderly people J Am Geriatr Soc. 2008;56:840–846.
26. Farreras N, Artigas V, Cardona D, Rius X, Trias M, González JA. Effect of early postoperative enteral immunonutrition on wound healing in patients undergoing surgery for gastric cancer. Clin Nutr. 2005; 24:55–65.
27. *Hu YL, Xiao XM, Yang CY, Xia HS. Early enteral nutrition after gastrointestinal surgery clinical research. J Clin Surg. 1999; 7:14–16.*
28. Gurpreet Singh MS, R.Prashanth Ram MS, Satish K. Khanna MS, et al. Early postoperative enteral feeding in patients with nontraumatic intestinal perforation and peritonitis, Journal of the American college of surgeons, volume 187, Issue 2, August 1998, Pages 142-146.
29. American Gastroenterological Association Medical Position Statement, corp-author. Guidelines for the use of enteral nutrition. Gastroenterology.1995; 108:1280–1281.

E.Mail : dr_rranjan@yahoo.com, skmishra1973@rediffmail.com, ranjay.aiims@gmail.com & sujoyranaroy@gmail.com.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 45-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

MITHILA PAINTING : THE RAINBOW OF ART

SABHYATA RANI SINGH
RESEARCH SCHOLAR(FINE ART),
SONA DEVI UNIVERSITY, GHATSILA, JHARKHAND

ABSTRACT----------
Mithila painting, also known as Madhubani painting, is a beautiful art form of traditional Indian paintings, originated from the Mithila Region of Bihar and Nepal. The women artists used vibrant colors and geometric patterns to portray their mythological beliefs and social themes on walls and floors. They used their own fingers, or twigs and match sticks to depict their art during festivals and ceremonies. They created paint to decorate walls by using natural dyes and pigments. The beauty of the Mithila art lies in it's abundant use of symbolism, depicting deities, flora, fauna, tantric themes. The land of Mithila has been culturally very rich. The lively art works of simple\village women captivates the mind and soul. Their natural talent have contributed to the recognition of Mithila painting globally and their skill passed down from generation to generation. It played a significant role in women empowerment by providing them a platform for creative expression and economic independence. The women artists created their masterpieces by using natural colors derived from plants and minerals, rice paste and various flowers, They used to portray their paintings by using bold lines and intricate patterns. The women artists of Mithila painting were encouraged and also awarded at both national and international level. The growing demand of Mithila painting has provided an incredible platform and popularity all over the world. We witness the very essence of this particular art all around, whether it is any showpiece, or any bag or dupatta etc. It has become a fashion statement.

KEYWORD - Mithila, Madhubani, Wall Painting, Culture, Theme, Folk Art, Traditional, Natural Pigments, Recognition

INTRODUCTION-Mithila art is a well- known style of folk painting practiced in the Mithila region of India and Nepal. The most prominent center of Mithila painting is Jitwarpur, Ranti and Rashidpur, located in Madhubani district of Bihar. This art is dominated by female artists of the region who used to decorate the walls and floors of their house on several occasions such as birth or marriage or some particular festivals. For preparing their colors, they used various plants and flowers, minerals and rice powder. They invented brushes from bamboo twigs. They used their own fingers and match sticks also.

This vibrant art is being created since many centuries. It is believed that it's roots are linked with the great epic Ramayana. During the grand wedding ceremony of Devi Sita and Lord Rama, king Janak wished that the lovely memories of his dear daughter's wedding should remain evergreen. That's why he ordered his court artists to portray the beautiful wall painting of the grand wedding ceremony all over the Mithila region. Since that period, the Mithila or Madhubani painting became a tradition which reflects the cultural identity of the Mithila region. The beauty of Mithila art reflects the social structure, beliefs and customs of the region.

The depiction of specific motifs like fish, peacocks and serpents represent fertility, good luck and love.

The evolution of the Mithila painting gradually began a new era in the world of art. An era that is infinite.The ordinary women of the region won recognition and fame by practicing Mithila painting, not only on walls and floors, but the women artists started exploring new mediums to express their sentiments. They painted on canvas, paper and clothes also. Madhubani painting is remarkable for it's geometric patterns.

THE COLOURFUL BACKDROP – Madhubani painting has a colorful and vibrant backdrop that belongs to an ancient art -form of the land of Mithila. The art became globally famous and the whole credit goes to those remarkable women artists whose talent and perseverance provided all women of the upcoming generation an open stage for expressing their emotion through their magical eco -friendly brush and paint.

There have been National Award winning artists also whose great contribution to the art is incredible. The revival of this art is notable and the novel themes simply add a special appeal to the art.

The term 'Madhubani' means forests of honey. Madhubani is a market town and most of the artists of Mithila paintings work in villages like Jitwarpur, Rashidpur, and Ranti. Mithila art is a term which includes art on paper, apparel,pots,dishes,fans and other decorative items . The institutions such as Kala Kriti in Darbhanga, Vaidehi in Benipatti and Gram Vikas Parishad in Ranti have kept this ancient and prosperous art form alive.

Some of the notable artists include Ganga Devi ,Sita Devi, Baua Devi and Mahasundari Devi who have contributed to the evolution of Mithila painting. There are some contemporary artists also who are expanding the beauty of Mithil art by practicing contemporary themes. These artists include Pushpa Kumari , Mahalaxmi karn and Shalini karn.

During ancient times, the women artists used to prepare wall surface by applying a coat of cow dung or white washing. They used colors like gulabi, nila, sindura and sugapankhi etc. Black color was made from burnt barley seeds, yellow color from turmeric, or chuna (lime) mixed with milk from banyan leaf, orange color from palash flower, red color from the juice of the Kusuma flower and green from bel leaves. Rice powder was mixed with water for white color. The berries of a herb called sikkar was used to obtain blue color. Light brown was obtained by mixing cow- dung and gum in fresh water, dark green from the siam creeper and parrot green from the sepals of gulmohar. Red color was obtained from clay, yellow color from pollen.

Now a days Madhubani artists are using organic, synthetic and minerals colors also.

The wall paintings are mostly done on the wall of three places ,The Ghosain- ba-ghara, i.e. room of the family deity, the Kohbara ghara,i.e room for newly -wed couple and Kohbara ghara ka koniyan, i.e. the verandah outside the Kohbara. The theme includes mythological stories, nature, plants and animals. The artists of Mithila painting also depict their daily life and ritual practices.

Some world famous artists are Maha Savitri Devi of Ranti, Sita Devi of Jitwarpur, Baua Devi, Jagadamba Devi and Mahasundari Devi whose iconic paintings are globally famous.

The symbols of the Madhubani paintings resemble those pots found during Harappa period, The art of Aripana or drawings on the floor is a legacy, passed down from generation to generation. Any festival or occasion is incomplete without Aripana. During various pujas and rituals, women execute the aripanas related to Gods and Goddesses. The aripanas are done in different ways, mandala drawings and the tantric designs, vrata mandalas. Aripanas are traditionally made with a mix of rice powder and water which is called pithara. Various Hindu deities are depicted like Shiv- Parvati, Radha- Krishna, Vishnu- Lakshmi etc. There are various types of aripanas. The Sarvatobhadra is a diagram drawn during Tulasi puja, Durga puja and in vrata. Aripanas symbolizes the presence of Shakti.

The folk-art of Mithila was mostly religious in nature. The wall paintings are also called bhitti-Shobha. The Mithila art is practiced by Brahmin and Kayastha caste women.

The Mithila art was unnoticed since many centuries. In 1934, a British Civil Servant went there to explore some places after an earthquake. He also visited Darbhanga ,Purnia in 1940 as Provincial Census Superintendent. He was very much impressed and named this art as "Maithil"painting.This art got national recognition when artists like Jagadamba Devi, Sita Devi got National awards by the President of India. The women artists also exhibited their paintings after getting big platform like Expo-70 in Japan and Asia-72.

A Mithila Museum has been established in Japan by Tokio Hasegawa, a Japanese visitor to Madhubani. Nowadays we can see this art form everywhere like trains, station,sarees, decorative items , jute bags,t-shirts,kurtis, dupattas etc.

Mithila art got worldwide fame when scholars, film makers and art enthusiasts played a vital role in documenting, promoting, and exhibiting Mithila Art. Some remarkable scholars and authors who have contributed to the study of Mithila art are Raymond Owens ,Pupul Jayakar ,David L-Szanton, Paula Richman ,William G.Archer, Ajit Mukherjee, Suraj Prasad and Anjan Sen.

But despite this ,there are some challenges also like balancing commercialization with the preservation of it's cultural essence .

Mithila painting is not just an art. It's something beyond it. Through this art ,an artist expresses desire , dreams expectations, hopes and aspirations to the people.

Some individual artists have innovated new styles of art and paint landscapes, rivers, and any other things as per the buyers demand.

The commercialization has affected this art badly. The people are learning this art among the markets in towns where the trainers have no knowledge of the essence and aesthetic beauty of this folk art. The buyer- centric approach has affected the originality of the color, design, motive and sensitivity of this great art form.

Mithila paintings mostly depict people and their connection with nature. It also depicts their association with their surroundings and deities from the ancient epics. Symbols like natural objects such as the sun, the moon, and religious plants like tulsi and lotus are very common. Social events like weddings and festivals can be seen easily in most of the paintings. The artists fill the empty space by drawing flowers , animals, geometric patterns.

Mithila art has five distinctive style -Bharni,Katchni,Tantric,Godna,Kohbar.

In the 1960's, Madhubani artists began to paint on canvas and paper.

The Mithila painting tradition played a key role to protect local trees in Bihar from being cut down when some painters were employed to paint trees by Gram Vikas Parishad.

This ancient art form has ties to the Self Employed Women's Association[SEWA] of Madhubani district.

Mithila painting got recognition in 1969 when Sita Devi received the State Award by the government of Bihar. Mamta Devi from the village Jitwarpur received the National Award. Jagadamba Devi got Padmashree in 1975. Sita Devi received the Padmashree in 1981. Sita Devi was also honored by Bihar Ratna in 1984 and Shilp Guru in 2006. In 1984 Ganga Devi was awarded by Padmashree. Maha Sundari Devi received the Padmashree in 2011.

Mithila art has some challenges including the impact of commercialization on traditional techniques, finding sustainable markets, and preserving its cultural authenticity. There are some copyright issues also. Artists struggle to find markets that offer a big amount of money to support their livelihoods.

The artists are compromising on traditional themes, colors and compositions which is affecting the authenticity and symbolism of the art form. There is a need to prepare a well-organized market to minimize the influence of middle man.

There are many organizations that are working to preserve and promote Madhubani art. Some galleries and collectors have also taken initiatives. It is very necessary to encourage artists to use only traditional techniques and materials. The artists also need some support in finding fair markets. The cultural significance of Mithila art and its unique characteristics should remain its originality.

CONCLUSION-----

Mithila painting stands as a treasured Indian art form with a rich history and distinctive characteristics that make it truly special. The elaborate patterns, strong lines, and vivid colors of Madhubani art are well-known throughout the world. Every piece of art is carefully positioned which beautifully exhibit amazing symmetry and accuracy It maintains it's position as an important element of India's artistic legacy and has been shown in galleries all around the world. The Mithila paintings feature the divine in exquisite detail. It captures social scenes from rural Indian life. Artists depict daily activities, wedding ceremonies, harvests, and markets, reflecting the vibrancy and simplicity of rural life.

Mithila painting is popular, however it has a lot of problems. Though commercialization of the art form has led to a decline in traditional techniques and materials.

Yet , the Mithila artists and art rule over the art world as a colorful rainbow.

REFERENCE-

1. Mithila paintings: Past, Present and Future--- DR. K.Mishra Kailash
2. Vibrant folk art of Mithila – Ghosh Soma

MOB:7368034393/E-mail Id:sabhyataranisingh@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 49-55
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन और नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में समानताएँ

अपराजिता भारती
शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र),
राधागोविंद विश्वविद्यालय, रामगढ

सारांश –

राष्ट्र के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा अति आवश्यक है। शिक्षा मानव जीवन का सबसे बड़ा सौन्दर्य है। शिक्षा से भारत देश का संबंध अति प्राचीन है। भारत में शिक्षा का समृद्ध संसार रहा है जो कि वैदिक काल से वर्तमान समय तक चला आ रहा है। भारत में अनेक महान दार्शनिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों का आगमन हुआ जिन्होंने शिक्षा की उन्नति के लिए अपने बहुमूल्य सुझाव दिए। उन्हीं महापुरूषों में एक नाम स्वामी विवेकानंद का भी है जो कि महान उदारवादी दार्शनिक, संत एवं शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने अपनी विद्वता से न सिर्फ भारत बल्कि वैश्विक मंच को भी प्रभावित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार द्वारा शिक्षा में सुधार के लिए कई आयोगों का गठन किया गया और शिक्षा नीतियाँ बनाई गई है। वर्त्तमान समय में NEP 2020 लागू किया गया हैं। NEP 2020 और स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन में काफी समानताएँ है।

तकनीकि शब्द– शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, स्वामी विवेकानंद, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन और NEP 2020 में समानताएँ।

प्रस्तावना –

शिक्षा विकास की रीढ़ है और आजीवन और सतत चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के महत्त्व, इसके गुणों और उपयोगिता की गिनती और वर्णन करना संभव नही है।

शिक्षा का कार्य या विशेषता

शिक्षा का कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत है इसलिए इसके कई कार्य और विशेषताएँ है जिसे निम्न रूप से देख सकते हैं।

शिक्षा के कार्य

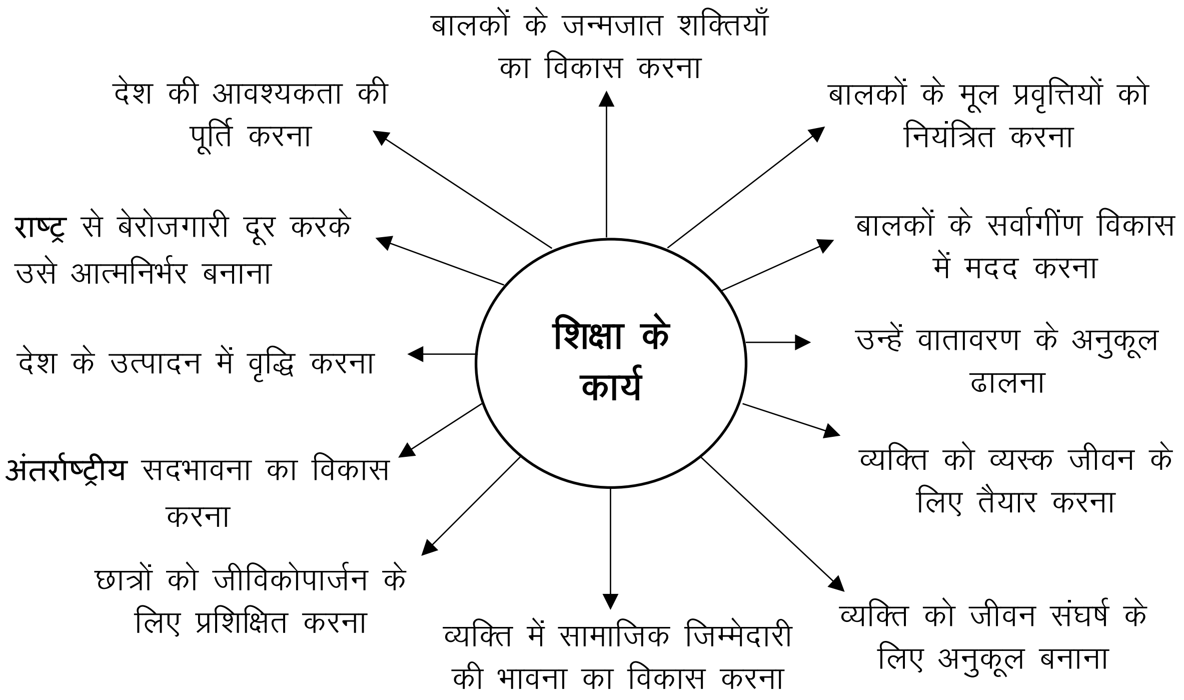

भारत शिक्षा और संस्कृति का गढ़ रहा है। भारत में शिक्षा का समृद्ध इतिहास रहा है। वैदिककाल में जहाँ शिक्षा का स्वरूप आध्यात्मिक था और इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के शारीरिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ छात्रों को मोक्ष दिलाना था। वहीं बौद्धकाल में शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के शारीरिक विकास के साथ अनंत ज्ञान की प्राप्ति थी। मुस्लिम काल में शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था और उनका उद्देश्य धार्मिक तथा सांस्कृतिक प्रचार प्रसार करना था। ब्रिटीश काल के पूर्व भारतीय शिक्षा भारतीय परंपरा के अनुकूल थी। शिक्षा दिशाहीन जरूर थी लेकिन समृद्ध थी। स्थानीय लोगों के जरूरत के अनुसार शिक्षा का आयोजन किया जाता था।

ब्रिटीशों ने भारत के पारंपरिक शिक्षा को खत्म करके आधुनिक शिक्षा की नींव रखी। इसमें लार्ड मैकॉल के द्वारा लाई गई 1835 की नई शिक्षा नीति तथा 1854 में चार्ल्स वुड के घोषणा पत्र का मुख्य स्थान है। ब्रिटिश कालीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य के विकास के लिए योग्य लोगों को तैयार करना तथा अंग्रेजी ज्ञान को बढ़ावा देना था।

स्वतंत्र प्राप्ति के बाद भारत सरकार द्वारा शिक्षा में सुधार लाने के लिए विभिन्न आयोगों का गठन किया गया तथा शिक्षा नीतियाँ बनाई गई जिन्हें निम्न रूप से देखा जा सकता है।

- विश्वविद्यालयी शिक्षा आयोग–1948, डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्ण।
- माध्यमिक शिक्षा आयोग–1952, डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर।
- कोठारी आयोग–1964–66, डॉ० दौलत सिंह कोठारी।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986
- क्रियात्मक कार्यक्रम–1992
- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम अध्यापक शिक्षा–2009
- न्यायमूर्ति वर्मा समीति रिपोर्ट–2012
- नई शिक्षा नीति–2020

NEP 2020

समाज परिवर्तनशील है। भारत एक विकासशील देश है। समय के साथ 1986 की शिक्षा नीति में बदलाव और सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। भारत द्वारा अपनाएं गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य (4) चार का उद्देश्य सभी के लिए समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करना है। साथ ही इसमें सभी को सीखने के अवसरों को बढ़ावा देने पर बल दिया गया है।

भारत द्वारा इस लक्ष्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए NEP 2020 को 29 जुलाई 2020 को लागू किया गया। NEP 2020 34 वर्षों के बाद लाया गया है।

इसे प्रसिद्ध भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तुरीरंगन की अध्यक्षता में तैयार किया गया है। NEP 2020 को काफी सोच समझ कर और काफी अनुसंधान करके भारतीय परिस्थिति और आवश्यकतानुसार तैयार किया गया हैं। इसका लक्ष्य छात्रों का सर्वागींण विकास करके एक योग्य नागरिक तैयार करना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा भारत के महान युवा दार्शनिक तथा शिक्षाशास्त्री स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों में काफी समानताएँ है।

स्वामी विवेकानंद का जीवन और शिक्षा दर्शन

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 ई० को सोमवार के दिन 6:33 मिनट पर बंगाल की राजधानी कलकत्ता के सिमुलिया पल्वी गाँव के एक समृद्ध तथा स्वतंत्र विचार वाले दयालु परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम भुवनेश्वरी देवी है। स्वामी जी की माता काफी धार्मिक थी और भगवान शिव की अनन्य भक्त थी, जिसका प्रभाव स्वामी जी के शानदार और विराट व्यक्तित्व पर पड़ा। स्वामी जी के बचपन का नाम विरेश्वर था। बाद में उन्हें नरेन कहा जाने लगा। उनकी माँ उन्हें बिला कह कर भी पुकारती थी। बालक नरेन बचपन से ही कुसाग्र बुद्धि के थे। उनकी विलक्षण विद्धता से प्रभावित होकर खेतड़ी नरेश ने उन्हें स्वामी विवेकानंद नाम दिया था। स्वामी जी ने शिक्षा के विभिन्न पक्षो पर अपना विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है। जैसे कि शिक्षा क्या है? कौन सी शिक्षा नाकारात्मक है और कौन सी शिक्षा साकारात्मक। कैसी शिक्षा बच्चों को देनी चाहिए? जो शिक्षा बच्चों को दी जा रही वह उनके अनुकूल है या नही ? शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम शिक्षण विधि छात्र और शिक्षक के कर्त्तव्य, अनुशासन के अलावे जनशिक्षा, बालिका शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा पर भी उन्होंने अपने विचार प्रकट किए।

स्वामी विवेकानंद के विचार और NEP 2020 में समानताएँ –

NEP 2020 और स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन में काफी समानताएँ परिलक्षित होते हैं।

1. छात्रो के शारीरिक, मानसिक तथा सर्वांगीण विकास –

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन और NEP 2020 दोनों छात्रों के सर्वागींण तथा समग्र विकास का समर्थन करता है। स्वामी विवेकानंद शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के शारीरिक, मानसिक चारित्रिक, नैतिक आध्यात्मिक विकास को मानते थे। वे युवाओं के बलिष्ठ शरीर पर बल देते थे। उनका मानना था कि राष्ट्र की शक्ति स्वस्थ और बलवान युवा हैं कमजोर व्यक्ति नहीं। शिक्षा स्वास्थ निर्माण में काफी सहायक है। यद्यपि वे वेदान्त समर्थक एक आध्यात्मिक व्यक्ति थे, फिर भी उन्होंने युवाओं से कहा गीता पढ़ने से पहले फुटबॉल खेलो और अपने शरीर को लोहे की तरह मजबूत बनाओ। उनके अनुसार गीता का सार और रहस्य समझने के लिए छात्रों को मानसिक रूप से भी स्वस्थ होना आवश्यक है।

वर्त्तमान समय में छात्र प० जीवनशैली तथा अनुचित खान–पान से अस्वस्थता के शिकार हो रहें हैं, जो एक विकासशील देश के लिए बिल्कुल भी सही नही है। NEP 2020 प्रत्येक बालक के शारीरिक, मानसिक तथा व्यक्तित्व के विकास पर बल देता है। इसके लिए पाठ्यक्रम में खेलकूद, बागवान, नृत्य, योग मार्शल आर्ट को शामिल करने पर बल दिया गया है। मार्शल आर्ट से छात्रों में एकाग्रता, आत्मविश्वास, मानसिक एकाग्रता, धैर्य तथा आत्मरक्षा जैसे कौशलों का विकास होता है। नई शिक्षा नीति में छात्रों के शारीरिक, मानसिक विकास के लिए आरंभ से ही स्वास्थ की बुनियादी शिक्षा, स्वच्छता, मादक पदार्थों के हारिकारक प्रभावों के संबंध में जागरूकता जैसे विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल करने की बात कही गई है। NEP 2020 में पाठ्यक्रम में

योग, स्थानीय खेलों, राष्ट्रीय स्तर तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों के जीवनी, योग, ध्यान को शामिल करने की बात कही गई है। नई शिक्षा नीति में इस बात पर भी चर्चा की गई है कि शारीरिक शिक्षा को रोजगार केन्द्रित बनाया जाए। सरकार द्वारा चलाई जा रही फिट इंडिया मूवमेंट भी स्वामी विवेकानंद के दर्शन से प्रेरित है।

2. भारतीय ज्ञान परम्परा पर स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन तथा NEP 2020 में समानता –

भारतीय ज्ञान परम्परा अद्वितीय है। स्वामी विवेकानंद भारतीय ज्ञान और परम्परा से काफी प्रभावित थे। स्वामी जी के अनुसार भारतीय ज्ञान और परम्परा विश्व की धरोधर है जिसे हर कोई को अपनाना चाहिए। वर्त्तमान समय में भारतीय युवा भारतीय ज्ञान और परम्परा को भूलते जा रहे हैं और पश्चिमी संस्कृति से आकर्षित हो रहे हैं।

यद्यपि स्वामी विवेकानंद पश्चिम जगत के समृद्ध विकास, वभैवशाली जीवन से काफी प्रभावित थे, वे भारत में भी वैसा ही वैभव देखना चाहते थे, लेकिन भारतीय संस्कृति को वे सर्वोपरि मानते थे। कई जगहों पर उन्होंने भाषणों में कहा था मैं चाहता हूँ कि मेरे देश के लोगो को शिक्षा बिल्कुल भारतीय स्वरूप में दी जाएं।

वर्त्तमान समय में भारतीय ज्ञान, परम्परा और संस्कृति लुप्त होते जा रही थी, युवा छात्र भारतीय संस्कृति भूलते जा रहे थे। ऐसे में NEP 2020 स्वामी जी के दर्शन का समर्थन करती है और छात्रों को अपनी पुरानी विरासत को अपनाने की जरूरत पर बल देती है जिसमें छात्र अपनी समृद्ध परम्परा के पालन, संरक्षण और विस्तार करने के प्रति जागरूक हो।

NEP 2020 में पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) को शामिल किया गया है जिसके द्वारा छात्रों को प्राचीन दर्शन, ग्रन्थों, कला, साहित्य सामाजिक प्रथाएँ, भाषा, योग, ध्यान आदि के साथ–साथ प्रोधौगिकी की शिक्षा भी दी जा सके। इसके द्वारा छात्र न सिर्फ भारतीय ज्ञान परम्परा को जानकर एक जागरूक, संवेदनशील, ईमानदार नागरिक बन सकेंगे, बल्कि आने वाली चुनौतियों के लिए तैयार होगें।

3. मानव निर्माण या जीवन निर्माण शिक्षा–

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का परम उद्देश्य मानव निर्माण होना चाहिए। स्वामी जी के अनुसार मानव निर्माणकारी शिक्षा वह है जो छात्रों को आत्मसाक्षात्कार कराए, इनके चरित्र का निर्माण करें, इनमें नैतिकता का विकास करें। स्वामी जी के अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो छात्रों में मानवीय मूल्यों का विकास करें।

वर्त्तमान समय में युवा मानवीय मूल्यों से दूर हो रहे हैं, उनमें जातीय संघर्ष, धार्मिक कट्टरता, ईष्या, द्वेष की भावना जोर पकड़ रही है। ऐसे में नई शिक्षा नीति में भी मानवीय मूल्यों पर व्यापक चर्चा की गई है। NEP 2020 में मानव निर्माण शिक्षा को प्रेरित करने के लिए बहुविषयक शिक्षा पर बल दिया गया है।

4. जीवन संघर्ष की तैयारी–

स्वामी जी ने कहा लोगों को नाकारात्मक नही साकारात्मक शिक्षा दी जानी चाहिए। साकारात्मक शिक्षा वह है जो छात्रों को जीवन संघर्ष के लिए तैयार कर सके। उनके अनुसार आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास ही व्यक्ति को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करती है। "उठो जागो और तब तक आगे बढ़ो जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए"। उनका यह वाक्य आज भी विश्व के समस्त युवाओं के लिए प्रेरणा मंत्र है। उन्होंने कहा देश के विकास के लिए देश–विदेश में जो भी अच्छा मिले उसे पाठ्यक्रम में शामिल कर लेना चाहिए।

NEP 2020 में छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए छात्रों में संचार, सहयोग, लचीलापन, सकारात्मक सोच, रचनात्मक कौशल, आलोचनात्मक दृष्टिकोण, आदर्श मूल्यांकन तथा सूझ–बूझ विकसित करने पर बल दिया गया है। NEP 2020 में समकालीन विषयों जैसे A.I, पर्यावरण शिक्षा, भाषा कला, साहित्य, वैश्विक नागरिकता, समग्र स्वास्थ, जैविक जीवन, डिजाइन थिकिंग जैसे विषयों को शामिल किया गया है जिससे कि छात्र हर क्षेत्र में ज्ञान अर्जित करे और जीवन संघर्ष के लिए तैयार हो सके।

5. आत्मसाक्षात्कार–

शिक्षा का कार्य छात्रों को आत्मसाक्षात्कार कराना है। इस बात पर स्वामी विवेकानंद और NEP 2020 दोनो सहमत हैं। स्वामी विवेकानंद वेदान्त के उपासक थे उनका मानना था कि ”शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से विद्यमान है।“ शिक्षा का कार्य व्यक्ति के अंदर छिपी शक्ति से उसकी पहचान कराना है, जो उनके मानव निर्माण, चरित्र निर्माण तथा जीवन निर्माण में सहायक हो सके।

NEP 2020 का उद्देश्य भी सिर्फ छात्रों को ज्ञान देना नही बल्कि उसके अन्दर छिपी हुई अद्वितीय क्षमता को पहचानना है और उस क्षमता से छात्र को परिचित कराना है। आत्मसाक्षात्कार के लिए NEP 2020 में छात्रों के रचनात्मक कौशल के विकास पर बल दिया गया है और पाठ्यक्रम में बहुविषय विषय को शामिल किया है।

6. चरित्र निर्माण पर बल—

भारतीय संस्कृति में उत्तम चरित्र का काफी महत्त्व है। स्वामी जी के अनुसार भी ”हम वैसी शिक्षा चाहते हैं जिससे चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति बढ़े और बुद्धि का विस्तार हो।“ उनके अनुसार आत्मत्याग आत्मसंयम, आत्मज्ञान, आत्मविश्वास तथा आत्मनियंत्रण से चरित्र निर्माण होता है।

वर्त्तमान समय में चारित्रिक पतन बड़े पैमाने पर देखा जा रहा है। चारित्रिक और नैतिकता का पतन मानवता का पतन है। NEP 2020 में भी शिक्षा का परम उद्देश्य छात्रों के चारित्रिक विकास को माना गया है। देश भर के विषय विशेषज्ञों की सहायता से मूल्यसंवर्धन पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। पाठ्यक्रम में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं, सामुदायिक शिक्षा के साथ शिक्षक प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि छात्रों के चरित्र निर्माण में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा के विभिन्न स्तर पर भारतीय ज्ञान, परम्परा, मूल्यों, कला, संस्कृति को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

7. मातृभाषा की शिक्षा—

मातृभाषा और संस्कृति का सीधा संबंध है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए क्योंकि इससे बच्चे आसानी से सीखते है क्योंकि मातृभाषा सरल होती है और इसके द्वारा हर व्यक्ति हर उम्र में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वे मातृभाषा के अलावे संस्कृत को दिव्य भाषा और भारत की प्रतिष्ठा का प्रतीक मानते थे। अंग्रेजी भाषा को दुनिया के ज्ञान और तकनीकि से परिचित होने के लिए छात्रों के लिए आवश्यक मानते थे।

भारत विविध भाषाओं का देश है इसलिए NEP 2020 में भाषा शिक्षण पर विशेष महत्व दिया गया है। जिसमें मातृभाषा, स्थानीय भाषा और क्षेत्रीय भाषा शामिल है। NEP 2020 में लुप्त हो रही भारतीय भाषाओं को भी सरंक्षित करने का प्रयास किया गया है। विदेशी भाषाओं को भी एक अतिरिक्त विकल्प के रूप में पढ़ाए जाने का सुझाव दिया गया है।

8. व्यवसायिक शिक्षा—

स्वामी विवेकानंद भारत की बदहाली के लिए गरीबी और अशिक्षा को जिम्मेदार मानते थे इसलिए वे लोगों को शिक्षित करने के लिए सामान्य शिक्षा तथा देश की गरीबी दूर करने तथा देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए विशिष्ट शिक्षा या व्यवसायिक शिक्षा पर बल देते थे। वे पश्चिम जगत की संपन्नता का कारण वहाँ की उच्च्य शिक्षा, ज्ञान विज्ञान तथा तकनीकि विकास को मानते थे। वे अक्सर अपने भाषणों में कहते थे देश में धर्म से ज्यादा रोटी आवश्यकता है।

NEP 2020 व्यवसायिक शिक्षा केन्द्रित है। छात्रों में व्यवसायिक विकास करने की पहल कक्षा 6 से ही की गई। यह नीति शिक्षा के सभी स्तर पर स्कूल कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में क्रमबद्ध रूप से व्यवसायिक शिक्षा कार्यक्रम को शिक्षा में एकीकृत करने पर विचार करती है। इसका उद्देश्य है प्रत्येक बच्चा कम से कम एक व्यवसाय में जानकारी प्राप्त करें। इस नीति का लक्ष्य 2025 तक कम से कम 50% स्कूली बच्चों तक व्यवसायिक शिक्षा पहुँचाना है। इसका उद्देश्य देश के आर्थिक विकास का बढ़ावा देना, स्वरोजगार कौशल छात्रों में विकसित करना, बेरोजगारी दूर करके देश को आत्मनिर्भर बनाना। जहाँ महात्मा गाँधी बुनियादी शिक्षा के समर्थक थे वही स्वामी जी प० शिक्षा और तकनीकी शिक्षा भी छात्रों को देना चाहते थे।

NEP 2020 में व्यवसायिक शिक्षा के अन्तर्गत ओधौगिक पाठ्यक्रम को शामिल करने पर चर्चा की गई है साथ ही साथ स्थानीय शिल्पकारों और समुदाय को भी शिक्षा से जोड़ने की बात कही गई है। NEP 2020 में तकनीकी शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है। छात्रों में डिजिटल साक्षात्कार बढ़ाने, बहुविषयक शिक्षा, ईलर्निंग, डिजिटल लाइब्रेरी के उपयोग को प्रेरित करने की पहल की गई है।

Covid 19 के समय सारी गतिविधियों के थम जाने पर भी शिक्षा की रफ्तार नही रूकी थी और डिजिटल प्लेटफार्म पर शिक्षा चलती रही इसलिए प्रौद्योगिकी एकीकरण, अनुसंधान और नवाचार को NEP 2020 प्रोत्साहित करती है।

9. शिक्षक संबंधी विचारों में समानता –

स्वामी विवेकानंद शिक्षक को शिक्षा का केन्द्र मानते थे। उनका मानना था कि छात्र में छिपी शक्ति होती है और उस शक्ति से छात्रों को अवगत कराने का कार्य शिक्षक का होता है। शिक्षक के व्यक्तित्व का सीधा प्रभाव छात्रों पर पड़ता है इसलिए शिक्षक की जिम्मेदारी काफी अधिक होती है।

NEP 2020 में भी शिक्षक को छात्रों के भविष्य को आकार देने वाला माना गया है। प्राचीन काल में शिक्षकों को उच्चतर दर्जा प्राप्त था। वर्तमान समय उनकी यह प्रतिष्ठा खोती जा रही है। NEP 2020 इस बात की पहल करता है कि राष्ट्र के भविष्य के लिए शिक्षको का सशक्तिकरण आवश्यक है ताकि शिक्षकों के प्रति सम्मान को पुर्नजीवित किया जा सके। NEP 2020 में शिक्षक प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि इस व्यवसाय में गहरी रूचि रखने वाले योग्य व्यक्ति ही इस व्यवसाय के लिए प्रेरित हो सके।

10. बालिका शिक्षा पर स्वामी विवेकानंद के विचारों और NEP 2020 में समानताएँ–

स्वामी विवेकानंद की तीन बहने असमय विपरीत परिस्थितियों में मृत्यु की शिकार हो गई। उनकी बहने शिक्षित थी। लेकिन विभिन्न परिस्थितियों को सहन न कर सकने के कारण उन्होंने मृत्यु को गले लगाया। शायद इसीलिए स्वामी जी महिलाओं की समस्या के प्रति संवेदनशील थे। वे उनके लिए ऐसी शिक्षा चाहते थे जो कि उन्हें निडर बनाए और उनमें आत्मविश्वास जगाए। उनके अनुसार बालिका शिक्षा के बिना देश के उन्नति संभव नही है। वे लैंगिक भेदभाव को भी अस्वीकार करते थे।

NEP 2020 में भी लड़कियों के शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए कई पहल की गई है। जैसे– जेंडर इंक्लूजन फंड स्थापित करना, कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय का विस्तार, शिक्षक प्रशिक्षण में लिंग संवेदीकरण आदि प्रयास।

11. जनशिक्षा पर समानता –

स्वामी जी उस समय के दयनीय भारत की स्थिति का कारण अशिक्षा को मानते थे। उन्होंने कहा जनता को शिक्षित करो तभी एक राष्ट्र का निर्माण संभव है। उनके अनुसार जनशिक्षा का मतलब देश के अशिक्षित बच्चों, प्रौढ़ों युवाओं और महिलाओं को शिक्षित करने से है। उनके अनुसार पश्चिमी राष्ट्र उन्नत है क्योंकि वहाँ शिक्षा जनसामान्य में व्याप्त है लेकिन यहाँ ऐसा नही है। उनका कहना था यदि गरीब शिक्षा ग्रहण करने विद्यालय नही आ सकते तो शिक्षा हर जगह उनके पास पहुँचाओं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के जनशिक्षा का काफी प्रयास देश में किया जा रहा है लेकिन अभी भी शत प्रतिशत सफलता प्राप्त नही हो सकी है। NEP 2020 सभी के लिए समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर जोर देती है।

निष्कर्ष –

स्वामी विवेकानंद ने 100 साल से पहले शिक्षा के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किए थे वे उस समय से ज्यादा वर्त्तमान समय में प्रासंगिक है। NEP 2020 स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन से प्रेरित है और दोनों में काफी समानताएँ हैं। स्वामी जी ऐसे शिक्षा चाहते थे जोकि छात्रों के अन्दर छिपी शक्ति से उसकी पहचान कराए जोकि उनके चरित्र निर्माण और जीवन निर्माण में सहायक हो और उन्हें स्वावलम्बी बनाए। NEP 2020 में शिक्षा के सभी स्तर पर भारतीय ज्ञान परम्परा तथा बहुविषय को शामिल किया गया है

ताकि छात्रों के समग्र व्यक्तित्व एवं उत्तम चरित्र का निर्माण हो सके। स्वामी विवेकानंद ने भारतीयों के लिए जैसी शिक्षा का सपना देखा था उसे सफल बनाने की दिशा में NEP 2020 निश्चित रूप से क्रान्तिकारी कदम साबित होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेद निष्ठानंद, स्वामी, (2022), नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति और स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार, ई संस्कृति। https://www.esamskriti
2. धर, निहारेंदु, (2021), शिक्षा पर विवेकानंद के विचारों के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, way2barak Gate way of information. https://way2barak.com
3. ग्रोवर, डॉ० किरण, (2022), नई शिक्षा नीति 2020 के सृजन से विवेकानंद के शिक्षा दर्शन की पुर्नस्थापना, व्यक्तित्व–संवर्द्धन और शैक्षिक नीति, Page No-137 to 145, हंस प्रकाशन, दिल्ली।
4. गुप्ता, प्रो० नीलम, (2022), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व के समग्र विकास की शैक्षणिक रणनीति, अमर उजाला, उत्तरप्रदेश। https://www.amarujala.com
5. गुप्ता, डॉ० रेनु, शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार, टंडन पब्लिकेशन्स लुधयाना।
6. गुटवारा, डॉ० सिम्मी, (2021), शिक्षा पुर्नकल्पना और पुर्नभाषित करना : NEP 2020 और स्वामी विवेकानंद का दृष्टिकोण, सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ।
7. कुमार, कृष्ण, प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली।
8. लाल, प्रो० रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक आधार, आर० लाल बुक डिपो।
9. पाठक, पी० डी० एवं मंडल, के० पी०, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा के आधार एवं विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
10. सिंह, डॉ० नंदन, सिंह गंगा, (2024), NEP 2020 में स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन, ISSN: 2321–8037, संगम, Vol-11, Issue 9-10 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति।
11. तिवारी, डॉ० रवीन्द्रनाथ, (2022), स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति। https://rashtriyashiksha.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 56-60
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Growing Industrialization and changing Land Use Land Cover Pattern In Nainital District

Aprajit Puri
Pursuing M.A. Geography,
Uttarakhand Open University, Haldwani (Nainital)

Abstract
The study is conducted in Kaladhungi- Bealparao region in Nainital district of Uttarakhand to raise a concern of depleting agricultural tracts in the region due to increasing Factories in the study area. The growth of factories is seen as sign of increasing industrialization of the region creating new job opportunities for residents in the region. But this new source of employment is a major threat to agricultural tracts in the region. The major aim is to point out the factors responsible for the conversion of Agricultural Tracts into Industrial areas, which in future may potentially turn to be an Industrial zone and losing all its cultivable land resource.

Land Use Change Introduction

Land use change involves the transformation of land from one purpose to another due to human activities. This includes converting natural landscapes into areas for farming, housing, forestry, or infrastructure projects. Land management, by contrast, focuses on the planning, regulation, and maintenance of these uses to ensure sustainability. Examples of land use changes include deforestation, urban expansion, agricultural intensification, and infrastructure growth, all of which alter the Earth's surface to accommodate human needs.

Alterations in land use significantly affect environmental systems, contributing to approximately 25% of global carbon dioxide emissions, according to the Intergovernmental Platform on Biodiversity and Ecosystem Services (IPBES). Over 70% of the world's ice-free land is influenced by human activities, a figure projected to reach 90% by 2050. Land degradation affects 3.2 billion people globally and results in an annual loss of $10.6 trillion in ecosystem services, including agriculture, forestry, and tourism. The Food and Agriculture Organization (FAO) predicts that by 2050, an additional 500 million hectares of agricultural land will be needed to meet global food demands.

Potential Explanations for Land Use Change

- **Population Growth**: Rapid increases in population place significant pressure on land resources, leading to their overexploitation and degradation.
- **Land Encroachment**: Rising food demands have driven the expansion of agricultural lands into previously untouched areas, such as forests, shrublands, and wetlands.

- **Forest Resource Use**: Continuous and intensive harvesting of forest resources for construction materials, fuel, and agricultural tools has degraded forested agricultural areas.
- **Grazing on Farmland**: Declining soil fertility often prompts farmers to abandon cultivated fields for grazing purposes.

The land use changes in Nainital district, especially in the Kaladhungi–Bealparao area, show notable alterations influenced by swift urban growth, an increase in demands and modifications of farm land into Industries. Although specific data for Kaladhungi–Bealparao is scarce, trends noted in Nainital district emphasize important ecological and socio-economic issues. These consist of deforestation, soil erosion, water shortages, loss of biodiversity, and heightened susceptibility to natural catastrophes like landslides and flash floods. Unplanned building and encroachments have worsened environmental damage, endangering the delicate Himalayan ecosystem. Furthermore, commercial interests frequently take precedence over conventional land management methods, compromising environmental sustainability and community livelihoods.

These alterations have stressed natural resources, intensified socio-economic inequalities, and uprooted indigenous populations. To tackle these problems, it is crucial to adopt a balanced and integrated land use planning strategy that emphasizes both development and conservation. Essential strategies involve bolstering local governance, implementing sustainable land use regulations, encouraging community-driven resource management, and increasing public awareness.

Study Region

The Kaladhungi- Bealparao region lies in Nainital district of Uttarakhand state. Kaladhungi at Coordinates 29° 17' 0.636" N & 79° 21' 3.6" E. The region is rich in agriculture and orchards. The Kosi River, a significant geographical feature, forms a natural boundary between Nainital and Almora districts before merging with the Ramganga River flows through this region, and the region is well irrigated by these rivers.

Objectives The following objectives are sufficient to understand the cause and changes in land use pattern in the study area.

- To study land use Management of the study area.
- Agricultural development and it’s challenges due to industrialization.

INDUSTRIAL SCENERIO OF DISTRICT NAINITAL

Table 3.5

Sr No	Head	Unit	Particulars
1.	REGISTERED INDUSTRIAL UNIT	NO.	2634
2.	TOTAL INDUSTRIAL UNIT	NO.	2634
3.	REGISTERED MEDIUM & LARGE UNIT	NO.	16
4.	ESTIMATED AVG. NO. OF DAILY WORKER EMPLOYED IN SMALL SCALE INDUSTRIES	NO.	9678
5.	EMPLOYMENT IN LARGE AND MEDIUM INDUSTRIES	NO.	4074
6.	NO. OF INDUSTRIAL AREA	NO.	06
7.	TURNOVER OF SMALL SCALE IND.	IN LACS	49268
8.	TURNOVER OF MEDIUM & LARGE SCALE INDUSTRIES	IN LACS	1211.96

Source:- DIC-Haldwani,

Industrial Landscape of District Nainital

The industrial environment in Nainital district shows a moderately developed sector encompassing 2,634 registered industrial units, all classified as total industrial units, signifying a comprehensively documented industrial foundation. Of these, 16 units are classified as medium and large-scale industries, with the rest consisting of small-scale businesses. Small-scale industries significantly contribute to job creation, employing approximately 9,678 workers each day. In contrast, medium and large enterprises employ approximately 4,074 people, indicating an equivalent input to the local economy from both sectors. Nainital district contains six industrial zones, providing facilities and infrastructure for industrial growth. Regarding financial results, the revenue from small-scale industries is remarkably significant, amounting to around ₹49,268 lakhs, while medium and large-scale industries contribute approximately ₹1,211.96 lakhs in turnover. This difference highlights the greater economic presence and growth of small businesses in the area

In Kaladhungi Bealparao region many new industries are coming up, the reason for such change is rapid selling up of properties by locals to set up new industries. These industries are seen as a source of income generation, employment and social wellbeing of local resident. But these industries possess a potential threat to the agricultural tracts as setting up of these industries require a large piece of land, for which a large check of agricultural land is being converted into a factory or an industry.

With growing up of this industrialization culture, very soon majority of agricultural land could come under the industrial complexes and therefore it possess a serious threat to the agricultural ecosystem of the region.

Fig.1.3

Source: Image by Aprajit Puri

The establishment of industries, factories, resorts, and hotels on agricultural fields is reducing available land for farming. The fertile agricultural land in Kaladhungi and Bealparao being repurposed for non-agricultural uses, such as orchards, hotels, factories, and resorts. Key factors contributing to this trend include:

- **Conversion of Fertile Agricultural Land**: Prime farmland with rich soil and access to water from rivers and canals is being leased or sold for industrial and commercial purposes. Post-conversion, the land becomes unsuitable for agriculture due to soil pollution from chemicals or construction, topsoil removal during grading, and changes in land use designation.
- **Urbanization and Infrastructure Expansion**: The growth of tourism, particularly near Jim Corbett National Park, has increased demand for hotels, resorts, and service facilities. Infrastructure developments, including roads and parking lots, encroach on farmland, reducing crop production areas and disrupting the rural agricultural landscape.
- **Disruption of Irrigation Systems**: Commercial and industrial projects divert or overexploit water sources such as canals, wells, and rivers, reducing water availability for irrigation. This directly impacts crop yields, forcing farmers to abandon traditional farming practices.
- **Rising Land Prices and Speculative Selling**: High profits from land sales for commercial ventures incentivize small and marginal farmers to sell their plots, weakening the local agricultural economy and diminishing interest in farming as a sustainable livelihood.

Conclusion

The Kaladhungi–Bealparao region is undergoing a significant land use transformation driven by tourism, industrial growth, and urban expansion. While these developments may yield short-term economic benefits, they threaten long-term agricultural sustainability, food security, and rural livelihoods.

Addressing these land use challenges requires collaborative efforts among government agencies, local communities, researchers, and civil society to foster a sustainable and resilient future for Nainital district.

To mitigate these impacts, the following measures are recommended:

- **Zoning Regulations**: Implement strict zoning policies to protect agricultural land from conversion to non-agricultural uses.
- **Sustainable Tourism**: Promote eco-friendly tourism practices that minimize environmental degradation and support local communities.
- **Community Awareness**: Increase public awareness of the importance of preserving agricultural land and traditional practices.
- **Land Rejuvenation**: Map abandoned terraces to identify opportunities for revitalization, focusing on high-value crops suited to the region’s microclimate.
- **Labor Assessment**: Evaluate labor needs and availability to support sustainable agricultural practices

References:

- Rawat, J. S., Biswas, V., & Kumar, M. (2013). Changes in land use/cover using geospatial techniques: A case study of Ramnagar town area, Nainital, Uttarakhand, India. *The Egyptian Journal of Remote Sensing and Space Science, 16*(1), 111–117.

- Rautela, P., et al. (2014). Implications of rapid land use/land cover changes upon the environment of the area around Nainital, Uttarakhand, India. *Asian Journal of Environment and Disaster Management, 6*(1), 83–93.
- Rawat, J. S., Kumar, M., & Biswas, V. (2014). Land use/cover dynamics using multi-temporal satellite imagery: A case study of Haldwani town area, Nainital, Uttarakhand, India. *International Journal of Geomatics and Geosciences, 4*(3), ISSN 0976–4380.
- Bora, K., et al. (2018). An investigation into land use and land cover change through object-based classification: A case study of South Haldwani, Uttarakhand, India. *International Journal of Humanities and Social Science Invention, 7*(03), 50–58.
- Wakeel, A., et al. (2005). Forest management and land use/cover changes in a typical micro-watershed in the mid-elevation zone of Central Himalaya, India. *Forest Ecology and Management, 213*(1–3), 229–242.
- Sharma, E., & Xu, J. (2007). Land use, landscape management, and environmental services in Mountain Mainland Asia: Introduction. *Tropical Ecology, 48*(2), 129–136

Address- Mukul Vihar, Talli Bamori, Lal Danth Road, Near Nainital Bank, Haldwani,
PIN-263139
Mobile no. 7900630000
Email: aprajit.puri@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 61-64
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण की भूमिका

भूपेन्द्र कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
राँची विश्वविद्यालय राँची, झारखंड, भारत।
डॉ० सरिता कुमारी
सहायक प्राध्यापिका,
राजनीति विज्ञान विभाग, मारवाडी महाविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत ।

सारांश–
महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास न केवल महिलाओं के लिए बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए उपयोगी व महत्वपूर्ण है। महिलाओं को उस स्थिति में सशक्त करना है जब वे भौतिक, मानवीय, बौद्धिक व साथ ही वित्तीय संसाधनों पर अधिकतम भागीदारी प्राप्त कर सके तथा घरेलू, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय जीवन के संदर्भ में भी सहभागिता रख सकें। महिलाओं को जागरूक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य संबंधी साधनों को उपलब्ध कराया जाये ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और पुरुष–महिला समानता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। दूसरे शब्दों में महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को पुरुषों के बराबर सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, शारीरिक और राजनैतिक क्षेत्रों में समान अधिकार से जुड़ा हुआ है तथा महिलाओं के लिए समान अवसरों के लिए समान परिस्थितियां पैदा करना विषमता को पलटकर समता पैदा करना ही महिला सशक्तिकरण कहलाता है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है उनके द्वारा समाज की वर्तमान व्यवस्था और तौर–तरीकों को चुनौती में समान अवसर, राजनैतिक एवं आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा, प्रजनन का अधिकार आदि।
मूल शब्द –सशक्त, सामुदायिक, वित्तिय, समानता, निर्धारण

विश्लेषण–

1959 में बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखकर आंध्र प्रदेश में पंचायत समितियों और जिला परिषद् कानून तथा आंध्र प्रदेश ग्राम पंचायत कानून के जरिए नई पंचायती राज प्रणाली की नींव रखी गई है। इसमें पंचायतों के तीनों स्तरों पर दो–दो महिलाओं को सदस्य बनाए जाने का प्रावधान था। शिक्षा और समाज कल्याण से संबंधित कार्यों की स्थायी समितियों में अनुसूचित जाति से कम–से–कम एक महिला प्रतिनिधि को चुने जाने का भी प्रावधान था। इस व्यवस्था से महिलाओं को कोई वास्तविक राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था, न तो महिलाएँ ही पंचायतों में भाग लेने में रुचि रखती थीं और न पुरुष ही चाहते थे कि उनकी भागीदारी बढ़े।[1]

73वाँ संविधान संशोधन की धारा 243–घ के अनुसार प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के एक–तिहाई से अन्यून पद महिलाओं के लिए हैं। ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न–भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आवंटित किए जाएँगे। अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में कुल आरक्षित पदों में से एक–तिहाई से अन्यून पद इन जातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित होंगे। पिछड़ी जाति की महिलाओं के लिए भी आरक्षण का प्रावधान अधिनियम में है

लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। अगर राज्य विधान मंडल चाहे तो इस वर्ग की महिलाओं के लिए भी पद आरक्षित कर सकता है। इसके अतिरिक्त धारा 243–घ की उपधारा चार के अनुसार, पंचायतों के तीनों स्तरों अर्थात् ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला पंचायत के स्तर पर कुल अध्यक्षों में से एक–तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। सदस्यों की तरह अध्यक्ष पद के लिए भी महिलाओं के लिए आरक्षित कल पदों में से एक–तिहाई सीटे अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।[2]

73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों को स्वायत्त संस्थाओं का दर्जा दिया है। आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएँ बनाने का जिम्मा, जिसमें संविधान की 11वीं अनुसूची में सूचीचद्ध 29 विषय भी शामिल हैं, पंचायतों को सौंपा गया है। इस प्रकार महिलाएँ अपने क्षेत्रों के आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएँ बनाएँगी। यहाँ यह बताना उचित है कि वैसे तो महिलाएँ संपूर्ण ग्राम पंचायत व जिला पंचायत स्तर की योजनाएँ बनाएँगी, लेकिन अनुसूची–11 में जो 29 विषय हैं, उनमें स्त्री एवं बाल कल्याण, स्वास्थ्य व स्वच्छता अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा औषधालय परिवार कल्याण, समाज कल्याण, शिक्षा आदि ऐसे विषय हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से महिलाओं से संबंधित हैं। 73वें संविधान संशोधन की प्रति अनुबंध–1 में दी गई है।[3]

अधिकतर जनजातीय जनसंख्या अनुसूचित क्षेत्रों और आदिवासी क्षेत्रों में रहती है। इस विधेयक में कुछ अपवादों और संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज का विस्तार करने का प्रस्ताव है। इन अपवादों और संशोधनों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि जनजातीय समाज की प्रमुख विशेषताओं को अक्षुण्ण रखा जाए। विधेयक के अनुसार राज्यों के कानून, जो ऐसे विस्तार का अनुसरण करेंगे, वे अनुसूचित जाति के रीति–रिवाज संबंधी कानूनों, सामाजिक और धार्मिक पद्धतियों, रिवाजों और परंपराओं के अनुरूप होने चाहिए। प्रत्येक गाँव में एक ग्रामसभा होगी, जिसमें गाँव में रहने वाले निर्णायक सूची में दर्ज सभी लोग होंगे। जनजातीय क्षेत्रों में जनसंख्या संबंधी ढाँचे को ध्यान में रखते हुए गाँव 5–30 परिवारों की बसावटों का समूह, एक बस्ती या बस्तियों का समूह हो सकता है।

इस विधेयक का मुख्य उद्देश्य ग्राम सभा को सशक्त बनाना है। यह ग्राम सभा जनता के रीति–रिवाजों और परंपराओं की सुरक्षा और संरक्षण में सक्षम होगी। वास्तव में महिला सशक्तिकरण मात्र एक विकासात्मक कार्यक्रम न रहकर एक प्रगतिशील आंदोलन बन गया है और किसी भी आंदोलन की प्रगतिशीलता का अनुमान उसमें शामिल महिला शक्ति से लगाया जाता है। उन्हें पुरुषों के समान मान्यता दी जाती है।[4]

भारत के स्वर्णिम इतिहास में ऐसे तीन दौर आए थे जब महिला शक्ति को बड़े स्तर पर पहचाना और माना गया था तथा उसे एक निर्णायक शक्ति के रूप में मान्यता दी गई थी। पहली बार बौद्ध धर्म के अविर्भाव काल में जाति प्रथा का विरोध कर स्त्री स्वतंत्रता का सम्मान किया गया था।[5] परंपराओं, रूढ़ियों और अंधविश्वासों से दमित स्त्रियों के लिए बौद्ध धर्म एक शांति व जागरूकता का मार्ग था, जिसके परिणामस्वरूप असंख्य महिलाएं बौद्ध भिक्षुणी बनीं। दूसरी बार भक्ति काल के आविर्भाव से पूर्व भी महिला समाज बंधनों में जकड़ा था, किंतु भक्तिकाल ने स्त्री शक्ति को इन बंधनों से मुक्त करवाने में सहायता की। तीसरी बार स्वतंत्रता संघर्ष के कारण महिलाएं अपने घर की चारदीवारी से बाहर निकली और उन्होंने अंग्रेजों से कड़ी टक्कर ली।[6] पंचायती राज अर्थात् स्थानीय स्वशासन का मूल केंद्रबिंदु महिला सशक्तिकरण के माध्यम से गरीबी को दूर करना है और यह कार्य पंचायती राज को सशक्त करके ही किया जा सकता है। इस पंचायती राज की प्रभावशीलता में महिला को केंद्र में रखा गया है ग्रामीण महिलाओं का सर्वांगीण सशक्तिकरण ही गांवों से गरीबी हटाने में सहायक हो सकता है।

इसके लिए महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाना अनिवार्य है, जिसे पहले ग्रामीण परिवेश में एक गंभीर समस्या के रूप में देखा जाता था। किंतु आज समाज में आई जागरूकता के कारण महिलाओं के प्रति सर्वांगीण उदार दृष्टिकोण का विकास हुआ है।[7] समाज, परिवार, देश व स्वयं महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक प्रगति में महिला सशक्तिकरण एक सशक्त माध्यम है। सर्वविदित है कि महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में लाए बिना महिलाओं व देश की प्रगति संभव नहीं है इस बात को भारत सरकार द्वारा भी अनुभव किया जा चुका है। महिला सशक्तिकरण का महत्त्व समझते हुए ही वर्ष 2001 को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' या 'महिला अधिकार संपन्नता वर्ष' घोषित किया गया था।[8]

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण का अर्थ शहरी महिला सशक्तिकरण से पूर्णतया भिन्न है, शहरी महिलाओं को वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्वतंत्रता की छूट होती है, जबकि ग्रामीण स्त्रियां जागरूकता

के अभाव में इन तक नहीं पहुंच पाती हैं।[9] भारतीय संविधान के अंतर्गत सभी नारियों को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं, किंतु अशिक्षा व जागरूकता की कमी, पुरुष मानसिकता तथा तथाकथित परंपराएं बाधाओं के रूप में उनके सामने खड़ी रहती हैं और ग्रामीण स्त्रियां इन प्रावधानों का भरपूर लाभ नहीं उठा पातीं। उनकी इच्छाएं और प्रतिभाएं दबकर रह जाती हैं। यहां तक कि परिवार नियोजन के मामले में भी उनकी इच्छाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता और वे सदा पति की इच्छा के आगे झुकती और दबती रहती हैं। फलतः समाज के हर वर्ग में वे उत्पीड़न का दंश झेलती हैं।[10]

ग्रामीण महिलाएं प्रायः अकुशल व अप्रशिक्षित होती हैं, इसलिए पंचायतों में निर्वाचित महिलाओं सहित समस्त सदस्यों के लिए अभिमुखीकरण प्रशिक्षण मुख्य रूप से राज्य सरकारोंध्संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों का दायित्व है। सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को बनाने व निष्पादित करने की जिम्मेदारी भी पंचायतों को ही दी गई है और पंचायतें ही कई केंद्रीय प्रायोजित योजनाओं को कार्यान्वित करती हैं। इसी उद्देश्य से पंचायतों की महिला सदस्यों व अध्यक्ष को समुचित दक्षता प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है।[11]

इन दक्षता प्रशिक्षण कार्यक्रमों में राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों को वित्तीय सहायता भी दी जाती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कई गैर सरकारी संगठनों के अलावा यूनेस्को जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा भी सहायता व वित्तीय पोषण प्रदान किया जाता है। लेकिन में सभी प्रयास मात्र माहौल में परिवर्तन तथा व्यक्तिगत निर्णयों तक सीमित थे, इसीलिए सामाजिक ढांचे में कोई बदलाव नहीं आ सका और इसीलिए स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष संरचनात्मक सुधार भी नहीं आया। यद्यपि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हेतु समानांतर आंदोलन चलता रहा था और उसी के परिणामस्वरूप बाल–विवाह व सती प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन हो सका था। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में महिला सशक्तिकरण हेतु किया गया प्रयोग राजनीतिक तंत्र में परिवर्तन पर आधारित था।[12] इसीलिए राजनीतिक तंत्र में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दी गई, उसको परिभाषित कर उसके कार्य क्षेत्र को स्पष्ट किया गया। संसाधन स्रोतों व स्वायत्तता को महिलाओं के यथोचित विकास में प्रयोग करने के प्रति भी गंभीरता दिखाई गई। संभव था कि मात्र महिलाओं को दिया गया पंचायती आरक्षण संपन्न परिवारों व सवर्ण जाति के हाथों में चला जाता, इसलिए सामान्य वर्गों से अलग, अनुसूचित जतियों व अनुसूचित जनजातियों हेतु आरक्षित पदों पर भी इन वर्गों की एक तिहाई महिलाओं को आरक्षण देने का प्रावधान रखा गया, ताकि पंचायत व महिला सशक्तिकरण का लाभ समाज की प्रत्येक महिला तक पहुंच सके।[13]

पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ग्रामीण महिलाएं स्वशासन की प्रक्रिया में सीधे तौर पर भाग लेने लगी हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में महिला व बाल विकास संबंधी कार्यक्रमों की नीति निर्धारण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका अदा कर रही हैं। पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों के बारे में सार्वजनिक जागरूकता लाने के प्रयास आज भी जारी हैं, समुदाय के सामाजिक– आर्थिक विकास के लिए महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाना महत्त्वपूर्ण है, इसलिए राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा में महिलाओं को लाना सरकार का मुख्य उद्देश्य है।[14]

निष्कर्षतः सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिला के अन्दर विद्यमान उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को जागृत करना, जिनको व्यवहार में लाकर वह अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके। जिससे उनमें जागरूकता, आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता का विकास, अन्याय से लड़ने की शक्ति विकसित होती है। यह महिलाओं को शक्ति प्राप्त करने के प्रति जागरूक बनाती है तथा उनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता का विकास करती है।

अंततः भारतीय समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था ने महिलाओं के एक बहुसंख्यक वर्ग को शिक्षा से वंचित रखकर मात्र पारिवारिक दायित्वों तक सीमित रखा और कालान्तर में उनकी शैक्षिक व सामाजिक सहभागिता में कमी ने उनके जीवन स्तर को कमजोर बनाया और पुरूष प्रधान समाज उनका शोषण, बलात्कार, अत्याचार कर निरीह जीव बना दिया। लेकिन आज महिलाएँ पूर्व की अपेक्षा जागरूक, शिक्षित व स्वावलंबी व अपने अधिकारों के लिए सजग है। अतः समाज में महिलाओं की स्थिति मजबूत व सशक्त करने की दिशा में आजादी के पूर्व और पश्चात निरन्तर प्रयास हुए है।

<u>संदर्भ सूची</u>

1. सी० रणवीर एवं संगीता वर्मा पंचायती राज रियलिटी एण्ड चैलेंजेज रिभ्यू ऑफ पॉलिटिक्स वैल्यू, 12 अंक जनवरी माह, प्रकाशन गंथ सिल्पी 2005 पृ०–221

2. प्रतीभा जैन एवं संगीता शर्मा, भारतीय स्त्री, रात्त पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1998, पृ0– 108
3. पी०डी० पाठक, भारतीय शीक्षा और उसकी समस्याएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 2012 पृ०–119
4. डॉ० रामदयाल मुण्डा, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता का सवाल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2002, पृ0– 209
5. डॉ० रेणु दियान, झारखण्ड की महिला बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2004, पृ0– 104
6. डॉ० अर्चना शर्मा, महिला सशक्तिकरण का आर्थिक और सामाजिक पहलू कुरूक्षेत्र (प्रकाशन विभाग सूचना भवन, सी०जी०ओ० कम्पलेक्स लोधी रोड़, नई दिल्ली, 2018 पृ०–60
7. गंगा प्रसाद मुश्त बर्नियर की भारत यात्रा, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 1997, पृ0–239
8. रेशमा खलखो, जनजातीय महिलाएँ, मासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2006, पृ0– 145
9. डॉ० रामदयाल मुण्डा, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता का सवाल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2002, पृ0–222
10. टी० एन० सिक्विरा, द एजुकेशन ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1952, पृ०–10
11. डॉ० चन्द्रदेव सिंह, प्राचीन भारतीय समाज और चिंतन विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997 पृ0–101
12. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, पंचम संस्करण, 2001 पृ0– 185
13. डॉ० शिवस्वरूप सहाय, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, तृतीय संस्करण, 2000 पृ0–226
14. विजेन्द्र कुमार वशिष्ठ, भारतीय शिक्षा का इतिहास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008, पृ०–155

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 65-69
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

‘वत्सला’ में मानवीय संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

संदीप कुमार
पीएच० डी० शोधार्थी,
हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

सारांश :-

‘वत्सला’ वर्तमान समय के मानवीय संबंधों में दिन प्रतिदिन हो रहे विघटनों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। कविता का प्रसंग उस घटना का है, जब मानव अहं निर्मित कारागार में देवी चेतना देवकी के गर्भ से जन्म लेने के पश्चात श्री कृष्ण गोकुल में यशोदा के वात्सल्य भाव से सीचीत कर निसंग भाव से संबंधों को त्याग कर गोकुल के मधुपुरी लौट गए। इस दौरान नन्द और यशोदा का मानसिक मोह ग्रस्त पीड़ा के जाल को भावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है। वात्सल्य कविता के रूप में सनातन नारी यशोदा माता और सनातन पुरुष श्री नंद बाबा के मध्य से हुए भगवान श्री कृष्ण के प्रति वात्सल्य एवं मातृत्व भाव का संवाद है। लक्ष्मी नारायण शर्मा का मूल उद्देश्य श्री कृष्ण की संबंध हीनता को आधार बनाकर वात्सल्य भाव की भक्ति भावना को श्री यशोदा द्वारा स्थापित करना है। श्री यशोदा की वात्सल्य भक्ति का परिचय देकर उन्होंने मां, बेटे एवं पिता के मानवीय मूल्यों में विघटनकारी आधुनिकता के परिदृश्य को उजागर करने की कोशिश की है।

मुख्य शब्द:- यशोदा, नन्द, मानवीय मूल्य, मोह, ममता, संबंध, अवतार

मानवीय संबंधों में मोह मनुष्य को मानसिक रुप से चंचल प्रवृति का बनाती है, जो मानव सत्य को नहीं पहचान पाता। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य मोह का त्याग करके मानवीय संबंधों को निस्संग भाव से भोगें। ताकि उसके जीवन में हमेशा सदाचारी व संयम की भावना बनी रहे:-

“श्री नन्द: तुम नहीं जानती यशोमती
कि मानवीय संबंधों की यह हरियाली भयवाहता
बड़ी सुनसान और अंधेरी सुरंग है।”[1]

यहां यशोदा और नंद दोनों आपस में बात करते हैं तो उनके आपसी संबंधों में भी टकराहट पैदा हुई। जब श्रीकृष्ण गोकुल को छोड़कर मथुरा जाते हैं और कभी उन्हें पलटकर नहीं देखता। हो सकता है एक साधारण मनुष्य का जीवन अलग हो और किसी प्रजा के राजा बनने पर वह घरबार को छोड़कर, केवल राज्य की जनता के लिए समर्पित हो जाने का भाव भी दर्शाता है। जरूरी भी नहीं है कि ये ही भाव उत्पन्न हुए हो, ये भी हो सकता है कि यशोदा और नंद उनको जन्म देने वाले माता पिता नहीं है, लेकिन वे उनका जन्म से पालन पोषण करते है तो उनमें श्री कृष्ण के प्रति प्रेम भावना (मोह) उत्पन्न हो गई, जिसे वे भूलने में असमर्थ है।इन बातों से दुखी होकर नंद यशोदा को समझाता है कि वह हमारा बेटा होता और हमारे बारे में तनिक भी सोचता, अगर उसके मन में थोड़ी सी भी दीन भावना होती तो वह हमें छोड़कर नहीं जाता। ‘वत्सला’ में दोनों पात्रों में आपसी संवाद केवल निजी समस्याओं को हल करने वाला

संवाद नहीं है। यह संवाद मानवीय सम्बन्धों की सारगर्भिता एवं वात्सल्य भावना के उमड़ते सैलाब का परिचायक है जिस संसार के प्रत्येक नर-नारी अपने अन्तर्मन में संघर्ष करते हैं। श्रीकृष्ण में भगवान विष्णु के अवतार आरोपण हो जाने के पश्चात उनका व्यक्तिगत जीवन व्यक्तिगत न रहकर सार्वजनिक हो गया। मानवीय संबंधों में मोह हर समय चिंताग्रस्त ही रहता है। उसे अपना भला बुरा दिखाई नहीं देता निसन्देह यह संबंधों का जाल उसके संपूर्ण जीवन को कसमकस में व्यतीत कर देता है। लेकिन यहाँ श्री नन्द मानवीय संबंधों पर चढ़े माया रूपी जाल को हटाने का भरपूर प्रयास करते है और कहते है:-

"श्री नन्द: मैं संबंधों के सारे आवरणों को
एक बारगी भस्म कर तुम्हारे सम्मुख
भस्म रुप में विद्यमान ँ
इस भस्म को अभी शिरोधार्य कर लो यशोदा
समय बित जाने पर
यह भस्म तुम्हारे मोहभंग की दरारों वाली धरती का
आलेपन नहीं बन सकेगा।"[2]

साधारण मानव के द्वारा जो कष्ट उठाये जाते है, उन्हीं को उठाते हुए वे जीवन पथ पर बढ़ते रहे, लेकिन लोगों ने उनकी महत्ता को न जानकर कहीं मन्दिर बना दिये, कहीं वृन्दावन धामों का निर्माण कर स्मारक स्थापित करवा दिए। परन्तु उनके द्वारा सनातन मानवीय मूल्यों को कायम रखने हेतु उठाई गई कठिनाईयों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया अपितु माता और बेटे के प्रेम प्रसंगों को पर्याय के रूप में लेकर जनमानस ने इच्छा पूर्ति का साधन मानकर उनसे कई तरह के वरदानों की याचनाएँ की है। डॉ० लक्ष्मीनारायण जी मानवीय संबंधों से माया को भस्म करवाना चाहते है, ताकि समय बीतने पर इनके बारे में चिंतन करके किसी प्रकार के दुख और पीड़ा से बचा जा सके। कवि यहाँ माँ की ममता, वात्सल्य भाव को सभी व्यवस्थाओं से ऊपर मानते हैं। माँ और बेटे के संबंध किसी भी व्यवसाय का हिस्सा नहीं बन सकता। मां की ममता बेटे के लिए हमेशा निस्वार्थ होती है। वह उसके बदले में पुत्र से किसी भी प्रकार की वस्तु की इच्छा नहीं रखती। यहां यशोदा पुत्र महोत्सव के उन चरणों को श्री नंद को याद दिलाती है जब उसके स्तनों से ममता रूप में दूध की बूंद का रसवाद किया था:-

"जो संवाद पुत्र महोत्सव क्षण में
तुमने इस माँ से स्थापित किया था
उसके बाद इस वत्सला धेनु के स्तनों में
जो दूध उतर आया था
और उस दूध की पहली बूँद का,
जो स्वाद उस शिशु ने किया था
क्या वह संवाद झूठा था।"[3]

श्री नन्द यशोदा को यह भी समझाने का प्रयास करते है कि यदि श्रीकृष्ण में मानवीय सम्बन्धों का थोड़ा सा भी मोह होता तो वह गोकुल छोड़कर नहीं जाते, अपनी ममतामयी माँ के आँसूओं को देखकर उसका मन क्यूँ बदला नहीं? वह अक्रूर के रथ पर बैठकर चला क्यूँ गया? सम्भवतः पुराण पुरुषों एवं अवतरित महान आत्माओं के जीवन ग्रहण करने के पीछे संसार का कल्याण करने का पावन उदेश्य रहता है जिसे पूर्ण करने के लिए वे निजी जीवन का हमेशा ही बलिदान करते चले जाते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन मानव मात्र की सेवा में ही व्यतीत होता है। लेकिन वात्सल्य भाव का संबंध हृदय की गहराइयों में छिपा रहता है, इसको बौद्धिक आयाम और तर्क वितर्क के सहारे मापा नहीं जा सकता। जो ममता भाव श्री कृष्ण के प्रति उमड़ती है, उसका न्याय एक बौद्धिक प्रवृत्ति वाला मानव नहीं कर

सकता। भक्ति भाव में प्रेम और श्रद्धा का ही समावेश रहता है, जिसे अनुभव करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इस कविता में श्री नंद के न्याय को नकारने की क्षमता केवल एक वात्सल्य भाव रखने वाली मां में ही विद्यमान होता है, तो यशोदा माता श्री नंद के असंगत न्याय को चुनौती देते हुए कहती है:-

"तुम्हारी न्याय असंगत को फिर दुहरा दूँ नंद!
पहले तुम पुरुष हो, फिर गौरवशाली पिता हो,
उस पर एक व्यवस्थापक और एक पति।
एक माँ केवल और केवल एक माँ।"[4]

इसमें श्री नंद को उलाहना देती हुई कहती है कि तुम एक माँ और उसके पुत्र के मध्य घटित- अघटित संबंध व्यथा को कैसे समझोगे, एक ममतामयी मां और पुत्र के बीच के पवित्र संबंधों को एक पुरुष, पिता व्यवस्थापक एवं पति कभी नहीं समझ सकता। इस कविता में यशोदा के प्रत्येक संवाद में वात्सल्य भाव का रस झरता नजर आता है, यहां यशोदा ही नहीं संसार में हर कोई माँ अपने बच्चों के लिए सब कुछ त्याग सकती है। यह न केवल मनुष्य, बल्कि पशु- पक्षियों में भी वही मातृत्व भाव देखने को मिलता है। किसी भी प्रजाति का कोई भी बच्चा चाहे कितना भी निकम्मा हो लेकिन माँ हमेशा निस्वार्थ भाव से प्रेम कर उस पर विश्वास करती है। जैसे वत्सला कविता में यशोदा अपने पुत्र को बिना देखे केवल मातृत्व भाव पर अपनी जवानी से बुढ़ापे तक का सफर तय करते हुए भी ये सोचती रहती है कि एक ने एक दिन वह जरूर मां की ममता के धागों से बंधा हुआ लौट आएगा इस आशा में नंद से कहती है:-

"कहना उसकी माँ बूढ़ी हो गई
उसकी प्रतीक्षा में
जर्जर देह से दही बिलौती है प्रतिदिन
माखन लेकर प्रतीक्षा करती है रोज
प्रात: से संध्या तक।"[5]

इस कविता के दोनों पात्रों के आपसी संवाद केवल निजी समस्याओं को हल करने वाला संवाद नहीं है। यह एक वात्सल्य भावना में उमड़ते सैलाब का परिचय है, जिसमें संसार के प्रत्येक नर- नारी अपने अंतर्मन में संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष के बीच में समाज में माता-पिता तथा बच्चों में टकराहट, पति-पत्नी के आपसी संबंधों के बीच टकराहट, एक स्त्री का एक पुरुष के प्रति निष्ठुरता का भाव, व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह, लेकिन किसी भी औरत का कुछ चीजों को देखकर उन्हें गलत ठहराना और उसी के आधार पर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, पुरुष के प्रति निष्ठुरता की व्याख्यान करना एक गलत निष्कर्ष की शुरुआत करता है। इस कविता में देखने को मिलता है:-

"मुझसे कैसे छिपा सकोगे अपने पुरुषत्व को
राजा बनकर बेटे ने याद नहीं किया।
हम दोनों को मथुरा के राज सेवक
आदर से लिवाने नहीं आए
यही मान है न तुम्हारा।"[6]

तू नहीं जानती यशोमती कि मानवीय संबंधों की हरियाली भयावहता बड़ी सुनसान होती है, जब संवेदनाओं का पतन होना शुरू होता है तो रिश्तों में भी कड़वाहट आनी शुरू हो जाती है, रिश्ते जो एक अंधेरे सुरंग की भांति होते हैं, अगर एक बार व्यक्ति उस सुरंग में प्रवेश कर जाता है तो अंधेरा सित्म पर भी खत्म नहीं होता। एक स्त्री के मन में कोई चीज जब घाव कर जाती है तो उनको संबंधों के बारे में समझाना दुष्कर हो जाता है। वह किसी की नहीं मानती उल्टा व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रश्नचिन्ह, पुरुष के प्रति निष्ठुरता का भाव उत्पन्न कर लेती है। जिस प्रकार से हमारा

समाज संस्कृति की देन होती है, इस समाज में संस्कृति को बनाए रखने के लिए हमें अपने पूर्वजों से मिले ज्ञान में संशोधन करके आगे बढ़ते हैं, वह ज्ञान जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे ही संस्कृति में नए निर्माण होते रहते हैं, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी से तीसरी पीढ़ी स्थानांतरण होता रहता है, तो श्री नंद यशोदा को समझते हैं:-

"मैं जनता हूँ, कि तुम नहीं जानती
मेरी इसी संबंधहीनता का,
कृष्ण के व्यक्तित्व में विकास हुआ है।
उसी प्रकार जैसे मेरे पितमहों की संबंधहीनता का
मुझमें क्रमागत विकास हुआ है।"[7]

इस समाज में रहकर स्त्री इस समाज के पुरुषत्व को देखते हैं और उस पर कटाक्ष करती नजर आती है, समाज के पुरुष को दोषी ठहराती है, कहती है कि कैसी है तुम्हारे इस संसार की रचना, जिसमें प्रत्येक भावना को किसी न किसी व्यवस्था से संबंधित मान लिया जाता है, कैसी है तुम्हारी यह व्यवस्था जो माँ की ममता को भी एक व्यवस्था मानती है और कहती है कि तुम तो खुद की बातों पर ही अड़िग नहीं हो, तुम्हारा क्या विश्वास किया जाए।

आज समाज की जो लड़ाई है, यह केवल यशोदा अपने बेटे श्री कृष्ण के लिए ही नहीं लड़ती है, यह संदेश प्रत्येक ममतामयी माँ का अपने प्राणप्रिया पुत्र के लिए दिया गया सनातन संदेश है, मानवीय संबंध हीनता के इस आधुनिक युग में भी माँ का वात्सल्य भाव उतना ही सार्थक है, जितना पुरातन काल से चला आ रहा है, यशोदा ने चाहे श्री कृष्ण को जन्म नहीं दिया, लेकिन उसका वात्सल्य भाव एवं ममता श्री कृष्ण के प्रति असीम रही है जिसकी सनातन छवि वर्तमान समय में उज्जवल और चरित्र है

जब जब समाज और संस्कृति में स्त्री पुरुष का संवाद होता है और स्त्री के संवाद जब फीके पड़ने लगते हैं तो बात बात पर भावुक होना शुरू हो जाती है। यह केवल यशोदा के लिए ही नहीं, यह समाज की हर एक स्त्री के लिए प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। जीवन के दैनिक क्रियाओं को एक व्यवस्था या एक वस्तु मानकर मानवीय भावनाओं तथा संवेदनाओं को उसी में ही समाहित कर देना, पुरुष के द्वारा स्त्री को भोग की वस्तु मानना लेकिन अपने आपको कठोर न बनाना। संभवतः इस तरह के असंभव व्यक्तित्व के कुछ फायदे भी होगें और कुछ नुक्सान भी। जो व्यक्ति सभी आयामों में पूर्ण होगा, वह किसी भी एक आयाम के पूर्ण व्यक्तित्व के सामने फीका पड़ जाएगा। अगर इन आयामों में हम श्रीकृष्ण को खड़ा करते हैं तो वह भी जीत नहीं पाएगा। हम समग्र व्यक्तित्व की सोच को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर बात करें तो हम किसी ऐसे फूल की कल्पना करें जो जूही भी हो, कमल भी हो, गुलाब भी हो और घास का फूल भी हो, सब हो जाता है। जब भी हम देखते है तो पाते हैं कि वह कुछ ओर भी हो गया। इस फूलों के मुकाबले हम किसी एक फूल (गुलाब) को रखेंगे तो वह जीत जाएगा, क्योंकि गुलाब गुलाब ही होता है। उसके गुलाब होने की सारी शक्ति, सारी ऊर्जा गुलाब होने में लग गई। जिसको कभी कमल होना पड़ा, कभी जूही भी। इसके प्राण इतने फैले हुए हैं इतने विस्तीर्ण है कि सघन नहीं हो सकते।

श्रीकृष्ण ने गीता में खुद लिखा है कि जब जब पृथ्वी पर धर्म की हानि होती है तो मुझे आना पड़ता है और आने के लिए निस्वार्थ भाव से सहारा भी लेना पड़ता है। जैसे पिता के रूप में वासुदेव और माता के रूप में देवकी के गर्भ से जन्म लेकर, और अधर्म का प्रयोग कर मृत्यु के घाट उतारने वालों से बचने के लिए बाबा नंद और यशोदा का सहारा लेकर अपने जीवन में पूर्ण रूप से स्थापित होना, किसी से कोई लाभ लालच न रखना। यह केवल वही व्यक्ति करता सकता है जो परम स्वतंत्र है, श्रीकृष्ण ही यह हिम्मत कर रहे हैं, इस हिम्मत का कारण भी वही है कि वे किसी कारण से नहीं जीते, किसी बंधन में नहीं जीते। जीवन, परिवार, समाज और संस्कृति एक मनुष्य को बंधन में रखने के लिए होते हैं। हम जैसे लोग, माता यशोदा जैसी स्त्री ये सब इन बंधनों में बंधे हुए हैं। जब तक ही उन्हें वो मोह अलग न करने के लिए विवश करता है, ओर वहीं यहीं से मैं और हम की भावना उत्पन होती है, यहां श्रीकृष्ण का जो व्यक्तित्व

है यहां वो सकारात्मक है, वह विधायक है, वह निषेधात्मक नहीं है, वे अहंकार का भी निषेध नहीं करते, वे कहते हैं कि अहंकार को इतना बड़ा कर लो कि सभी उसमें समा जाएं। मैं और हम की संभावना ही ना रहे।

लक्ष्मीनारायण शर्मा भगवान विष्णु के पौराणिक बहुचर्चित अवतार भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अप्रतिम श्रद्धा भाव रखते हैं। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने अपने काव्य में श्रीकृष्ण अवतार के मानवीय स्वरूप का चित्रण भी प्रस्तुत किया है। लक्ष्मीनारायण शर्मा की मान्यता है कि श्रीकृष्ण की परब्रह्म के रूप में कल्पना करने वालों ने उनकी मानवीय संवेदनाओं को सही ढंग से नहीं उकेरा है। मानवीय धरातल पर अवतरित होकर उन्हें मानव जीवन के सम्पूर्ण कष्टों का ही सामना करना पड़ता है। उन्हें परोपकार एवं समाज कल्याण के बदले में कटु सत्यों का ही साक्षात्कार करना पड़ा है।

संदर्भ सूची:-

1. शर्मा, डॉ० लक्ष्मीनारायण, वत्सला, 1986 पृ० 1383
2. वही.. पृ० 1395
3. वही.. पृ० 1391
4. वही.. पृ० 1397
5. वही.. पृ० 1400
6. वही.. पृ० 1384
7. वही.. पृ० 1384

गाँव व डाक- गुढ़ा कैमल, तहसील- कनीना,
जिला- महेंद्रगढ़ (हरियाणा) 123027
मो. 8053167200
sandeepyadav15121992@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 70-74
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

WOMEN SECURITY INITIATIVES IN KERALA: A CASE STUDY ON PINK POLICE

Keerthi P R
Research Scholar,
Department of Political Science
University College, Thiruvananthapuram University of Kerala

Abstract
This pilot study examines the effectiveness of women's security initiatives in Kerala, with particular emphasis on the Pink Police and related programs implemented by the state police. The research explores women's experiences in public spaces, their awareness of available safety measures, and perceptions of police responsiveness to gender based harassment. Using data gathered from diverse respondents across three cities, the study analyzes patterns of interaction with Pink Police, levels of satisfaction, and the broader impact on perceptions of safety. Findings indicate that while the Pink Police have enhanced visibility, accessibility, and problem resolution capacity, several operational and outreach challenges remain. Limited participation in complementary initiatives, constrained patrol hours, and barriers to reporting incidents highlight areas requiring attention.

The study concludes that strengthening awareness campaigns, expanding coverage hours, improving digital service accessibility, and increasing female representation within the force can significantly enhance women's sense of safety. Overall, the results underscore the importance of a multi layered, community centered approach to creating secure and inclusive public spaces for women in Kerala.

Key Words: Public Space Security, Gender Based Violence, Community Policing, Women's Safety, Violence Against Women.

The proposed study examines the insecurity faced by women in Kerala. Recent reports from India do not satisfy one to accept that women in the country are safe. An increasing number of sexual violence, harassment, trafficking, and rapes on women have created a general notion that public places. According to police data, crime against women and children in the state are on the rise. The number of cases registered in both categories in 2022 has reportedly been the highest recorded with in the last seven years. As per the State Crime Records Bureau data, a total of 18943 and 5315 cases were registered in connection with crime against women and children respectively in 2022 (Arun M, 2024). In 2019 it was 16199 and 3640 respectively. Sexual harassment and other forms of sexual violence in public spaces from unwelcome sexual remarks and gestures, to rape and femicide are happens on streets, in and around public transportation, schools, universities, workplaces, water and food distribution sites, and parks. This reduces women's and children freedom of movement and negatively impact on their health and well-being.

Well-planned crime prevention strategies prevent crime and victimization. Police are the most visible organization vested with enormous powers and responsibilities with regard to prevention and control of crime. In recent times, state efforts to curb and eradicate violence against women have increased. Legislative reforms and police actions are important in that they send a clear message to society by criminalizing violence against women.

Objectives of the Study.

- To analyze the women's insecurity in public spaces.
- To study the initiatives taken by the Kerala governmental machinery to curb the violence against women.
- To study the working of the Pink Patrolling.
- To analysis the role of pink force to deliver justice to women.

Research Questions

- What are the women security measures taken by the Governmental machinery to curb violence against women?
- Are the security measures taken by the Government and its machinery achieved their goal?
- What is the role of Pink Police in eliminating crimes against women?

Methodology

The methodology of the study is mainly descriptive and analytical. Detailed surveys and interviews will be conducted to get an understanding of the policies and activities of the pink protection force. Both primary and secondary sources of data will be used for the study. The scope of the study is limited to the major cities of the Kerala.

For the pilot study the researcher conducts a questionnaire survey with a sample of 75 people, 25 respondents each from the cities of Thiruvananthapuram, Thrissur and Kozhikode. (Selecting the cities are the basis of the rate of crime reported against women).

Women security initiatives of Kerala Police

POL APP; a mobile application designed to enable women to quickly seek help in emergencies, share their location with the police, and access safety-related services. While adoption is currently low, it remains an important digital intervention for rapid communication. Jwala and Self defense training programs are the Initiatives to equip women, especially students and working women, with basic self-defense skills, boosting their confidence and ability to respond to threats in public or transit spaces. In Kerala, a Women's Cell and Women's Help Desk are operational. The Women Help Desk assists women who visit a police station, and the Women Cell handles complaints filed by women.

Pink Police

The initiative, Pink police was launched in August 2016 by the Kerala Chief Minister Pinarayi Vijayan. Pink police does more than merely recommend cases to higher authorities; it also tries to provide to common women a sense of security when they see a female police officer in public. With that they initiates counselling for both victims and offenders of the cases related to violence against women. Woman’s confidence will increase and their impression of security would be strengthened by the presence of female police officers in public spaces. Instilling in them the notion that they are safe from atrocities is also crucial.

All the female civil police officers have received specialized training for the initiative and have been assigned to particular, high risk regions of the city. The pink patrol car is equipped with GPS tracking devices in addition to cameras on the front and rear sides of the vehicle. Images are continuously sent to the control room by the camera. A female police officer will operate these cars with the help of two additional female officers. Pink Police can assist women and children who are experiencing violence in their homes, on the streets, or in public spaces by calling 112 and 115 (*Official Website of Kerala Police*, n.d.). These

complaints sent to the Pink Police car via control room. After receiving the identity of the complainant's mobile number, and the GPS location, take appropriate action, and arrange for any required legal support. Pink Police are so equipped to provide security at key locations around Kerala between the hours of 8 am, and 8 pm.

Data Analysis

The survey's question 'Do you face any assault in public places?' aims to capture respondents personal experiences with safety and security in public places. A staggering 92 per cent of women respondents reported facing assault, highlighting a deeply concerning issue. This overwhelming majority underscores the urgent need for effective measures to ensure women's safety and security in public places.

Table: 1

Faced Assault	No.Of Respondents
Yes	92
No	13

Source: *Survey*

The data shows (Table:2) the reasons respondents approached Pink Police, with the distribution of calls across different categories as follows (out of 75 respondents)

Table: 2

Crimes reported	No.Of respondents
Domestic Violence	9
Sexual Assault	16
Stalking	21
Physical violence	8
Child related	17
Others	4

Source: *Survey*

Satisfaction of the respondents on women security initiatives of Kerala Police is

Table: 3

Satisfaction	No.Of Respondents
Yes	47
No	34
Partially	24

Source: *Survey*

The responses (Table: 3) show that 45 per cent respondents are satisfied with the Kerala Police's women security initiatives, 32 per cent are not satisfied, and 23 per cent are partially satisfied. This indicates a mixed response, with the largest proportion being satisfied, but a significant number expressing dissatisfaction or partial satisfaction, suggesting that while some initiatives may be effective, there is still room for improvement.

Key Observations and Insights

Public Sphere: Prevalence of insecurity

87 per cent of respondents experienced assault in public spaces such as streets, markets, or transit areas. And the timing of incidents shows that insecurity is not confined to nighttime: 51 per cent faced assaults during the day, 18 per cent at night, and 18 per cent during both. During the day, 37 per cent (Yes + partially) are afraid to walk in public. At night, this jumps to 66.7 per cent, showing intensified vulnerability after dark.

Despite high assault rates, only 27 per cent of victims registered formal complaints, signaling significant barriers - possibly including fear, lack of trust, or cumbersome procedures. This under-reporting represents a core aspect of "insecurity" as it shows not just exposure to risk, but hesitancy or inability to find resource through official channels.

Role of Pink Police in Delivering Justice

Mobile (61 per cent) was the primary method, indicating technological penetration and ease access to contact Pink Police. And direct contact is 27 per cent, shows the accessibility of the force in public areas. 88 per cent of complaints had their issue resolved, and in majority (42 cases) Pink Police directly intervened. Yet, satisfaction levels are mixed. Only 26.7 per cent are "fully satisfied", 40 per cent "partially", and 33.3 per cent "not satisfied".

48 per cent believe Pink Police reduces violence and 24 per cent disagree and 28 per cent are unsure, reflecting the need for broader effectiveness and trust building. Furthermore 82.7 per cent respondents want extended patrol hours; 57 per cent call for a 24/7 presence, underlining community desire for sustained intervention.

While the Pink Police resolves most registered complaints (88 per cent), the majority of victims do not report their cases, and significant insecurity persists, especially at night. Engagement with digital and educational initiatives is very low, and satisfaction with services is not universal. This means the initiatives have impact, but have not yet fully achieved their goals. Rapid response and approachable presence in public spaces - especially via mobile- are a direct positive impact of Pink Police. High problem resolution rate (for those who approach) is commendable.

Related initiatives (POL App, Jwala, and Women Cell) have very low participation, indicating lack of promotion and awareness.

Recommendations

- Enhance Reporting: addressing the bottleneck of under reporting through proactive outreach and community education.
- Expand Coverage: consider 24/7 Pink Police patrols, especially in high risk areas.
- Regularly success stories, positive outcomes, and testimonials from women who have benefited from Pink Police intervention. Positive visibility can motivate more women to seek help and diminish stigma around reporting.
- Promote Digital Awareness: invest in making the POL App and similar services more user friendly and better publicized
- Ongoing monitoring: regularly evaluate satisfaction and fear levels to inform tactical changes.

Conclusion

The pilot study offers a nuanced perspective on the impact of women's security initiatives in Kerala, notably the Pink Police, by analyzing the lived experiences of women across Thiruvananthapuram, Thrissur, and Kozhikode. The findings reveal significant advances made in increasing awareness and visibility of specialized policing for women's safety. The data underscores the importance of trust building, gender sensitization, and sustained community engagement as pivotal factors in enhancing the effectiveness of these interventions. Ultimately, the study highlights that while progress has been made, a multifaceted, adaptive, and community- centered approach remains essential to fulfill the goals of women's security and empowerment in Kerala.

ACKNOWLEDGEMENT

I would like to acknowledge the financial support provided by the Kerala Police Research Academy for this pilot research project. I am grateful for their sponsorship and resources, which enabled me to conduct this pilot study.

References

1. Arun M. (2024, September 25). Surge in crimes against women: 1.18 lakh cases reported since 2017 in Kerala. *The New Indian Express*. https://www.newindianewpress.com/states/kerala/2024/Sep/25/surge-in-crimes-against-women-118-lakh-cases-reported-since-2017-in-kerala?utm
2. *Official website of Kerala Police.* (n.d.). Home Page. https://keralapolice.gov.in/crime-statistics/crime-against-woman?utm

Email Id: keerthiputhiyedath@gmail.com

Ph: 8078713029

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 75-79
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਮੇਲਾ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ: ਬੁਲੰਦ ਦਾ ਧਾਰਮਿਕ ਪਿਛੋਕੜ

ਡਾ. ਮਾਈਕਲ ਖਿੰਦੋ
ਅਸਿਸਟੈਂਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ,
ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਕੈਂਪਸ, ਮੌੜ (ਬਠਿੰਡਾ)।

ਮੇਲਾ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦੇ ਸਥਾਨ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਪਿਛੋਕੜ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਸਥਾਨ 'ਤੇ ਕੋਈ ਮੇਲਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ, ਉਹ ਜਗ੍ਹਾ ਪਵਿੱਤਰ ਅਤੇ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਮੰਨੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸਥਾਨ ਦੀ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਸ਼ਰਧਾਲੂਆਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਵਿੱਚ ਆਕਰਸ਼ਣ ਪੈਦਾ ਕਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਪਵਿੱਤਰ ਸਥਾਨ ਨਾਲ ਸ਼ਰਧਾਲੂਆਂ ਦੇ ਜਜ਼ਬਾਤ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਜੁੜੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਜਜ਼ਬਾਤ ਅਤੇ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਧਰਮ ਦਾ ਆਧਾਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।

ਧਰਮ ਸਾਸ਼ਤਰੀ ਮਾਰਸੀ ਇਲਾਡੇ ਅਨੁਸਾਰ:

> "ਧਾਰਮਿਕ ਸਥਾਨਾਂ ਅਤੇ ਯਾਦਗਾਰਾਂ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਇਸ ਕਰਕੇ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਵਜੋਂ ਇਹ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਸ਼ਵਾਸਾਂ ਨੂੰ ਦ੍ਰਿੜ ਕਰਵਾਉਂਦੇ ਅਤੇ ਪਵਿੱਤਰ ਯਾਦਾਂ ਨੂੰ ਤਾਜ਼ਾ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰਾਹੀਂ ਲੋਕ ਸੁਰੱਖਿਅਤ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਵਿੱਚ ਸਥਿਤ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਵਿੱਚ ਇਲਾਡੇ ਦੀ ਧਾਰਨਾ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਇਸ ਨਤੀਜੇ ਤੇ ਪਹੁੰਚਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਧਾਰਮਿਕ ਮਨੁੱਖ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਸੰਭਵ ਹੋ ਸਕੇ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਦੇ ਨੇੜੇ ਰਹਿਣਾ ਪਸੰਦ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਜਾਣਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਸਦਾ ਦੇਸ਼, ਧਰਤੀ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰਲੇ ਬਿੰਦੂ ਤੇ ਸਥਿਤ ਹੈ, ਉਹ ਇਹ ਵੀ ਜਾਣਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਸਦਾ ਸ਼ਹਿਰ ਵਿਸ਼ਵ ਦਾ ਕੇਂਦਰੀ ਧੁਰਾ ਹੈ।"[1]

ਅੱਜ ਕੱਲ੍ਹ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਜੀ ਦੇ ਸ਼ਰਧਾਲੂਆਂ ਦੇ ਮੁੱਖ ਪੂਜਾ-ਸਥਾਨ ਮਾੜੀ ਜਾਂ ਮੰਦਰ ਨੂੰ ਬੁਲੰਦ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਜਾਂ ਕੇਵਲ ਬੁਲੰਦ ਦਾ ਨਾਮ ਦਿੱਤਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਬੁਲੰਦ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਬਾਬੇ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਨੂੰ

---

1 ਉਧਰਤ, ਗੁਰਮੀਤ ਸਿੰਘ ਸਿੱਧੂ, *ਧਰਮ : ਆਧੁਨਿਕ ਅਤੇ ਉਤਰਆਧੁਨਿਕ ਸਿਧਾਂਤ*, ਗੁਰਗਿਆਨ ਬੁਕਸ, ਪਟਿਆਲਾ, 2004, ਪੰਨਾ 150

ਮੜ੍ਹੀ (ਮੰਦਰ) ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ, ਪਰ ਬੁਲੰਦ ਦੀ ਵਿਲੱਖਣ ਜਾਂ ਬੇਮਿਸਾਲ ਉਸਾਰੀ ਪਿੱਛੋਂ ਇਹ ਨਵਾਂ ਨਾਮ 'ਬੁਲੰਦ' ਪ੍ਰਚੱਲਿਤ ਹੋ ਗਿਆ ਸੀ।

ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ ਅਨੁਸਾਰ:

> "ਬੁਲੰਦ ਦਾ ਕੋਸ਼ਾਗਤ ਅਰਥ 'ਉਚਾਈ' ਜਾਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰ ਉੱਚੀ ਉਸਾਰੀ ਗਈ ਇਮਾਰਤ ਤੋਂ ਹੈ।"[2]

ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪੁਰਾਤਨ ਜਾਂ ਮੁੱਢਲਾ ਅਤੇ ਪੂਜਣਯੋਗ ਯਾਦਗਾਰੀ ਸਥਾਨ, ਵਰਤਮਾਨ ਮਾਨਸਾ (ਪੰਜਾਬ) ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਪਿੰਡ ਰੱਲਾ ਵਿਖੇ ਸਥਿਤ ਹੈ। ਇਹ ਯਾਦਗਾਰ ਰੱਲਾ ਪਿੰਡ ਤੋਂ ਪੂਰਬ-ਦੱਖਣ ਵੱਲ, ਨਹਿਰ ਲੰਘ ਕੇ ਦੋ ਕੁ ਮੀਲ ਦੂਰ ਅਤੇ ਭੂਪਾਲ ਦੀ ਜੂਹ (ਹੱਦ) ਨਾਲ ਸਥਿਤ ਹੈ। ਭੂਪਾਲ ਦੀ ਸਰਹੱਦ ਨਾਲ ਲੱਗਣ ਕਰਕੇ ਕਈ ਲੋਕ ਅਣਜਾਣਪੁਣੇ ਵਿੱਚ ਭੂਪਾਲ ਵਿੱਚ ਹੋਣ ਦੀ ਗੱਲ ਵੀ ਕਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਸਥਾਨ ਰੱਲੇ ਪਿੰਡ ਦੀ ਸਾਂਝੀ ਝਿੜੀ (ਜੰਗਲ) ਦੀ 212 ਏਕੜ (ਭੋਇ) ਵਿੱਚ ਕਾਇਮ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਸ਼ਾਲ ਝਿੜੀ (ਜੰਗਲ) ਨੂੰ ਸੰਘਣੇ ਦਰੱਖਤਾਂ ਸਮੇਤ ਪਟਿਆਲਾ ਰਿਆਸਤ ਦੇ ਜ਼ਮੀਨੀ ਬੰਦੋਬਸਤ ਸਮੇਂ ਬਾਬੇ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਵਜੋਂ ਸੁਰੱਖਿਅਤ ਰੱਖ ਲਿਆ ਗਿਆ ਸੀ। ਸ਼ਰਧਾਲੂਆਂ ਵੱਲੋਂ ਝਿੜੀ (ਜੰਗਲ) ਦੇ ਦਰੱਖ਼ਤ ਜਾਂ ਲੱਕੜ ਤਾਂ ਕੀ ਡੱਕਾ ਵੀ ਵੱਢਣ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਕੀਤੀ ਗਈ ਸੀ, ਭਾਵੇਂ ਪਿੱਛੋ ਇਸ ਦਾ ਆਕਾਰ ਕੁਝ ਸੁੰਗੜ ਗਿਆ ਸੀ ਅਤੇ ਧੱਕੜ ਅਤੇ ਰਸੂਖ ਵਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਲੱਖਾਂ ਰੁਪਏ ਦੀ ਲੱਕੜ ਵੇਚ ਵੱਟ ਕੇ ਇਸ ਨੂੰ ਅੱਧ-ਨੰਗੀ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਸੀ, ਪਰ ਹੁਣ ਇਸ ਵਿੱਚ ਵਿਦਿਅਕ ਅਦਾਰੇ ਅਤੇ ਖੇਡ ਗਰਾਊਂਡਾਂ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਲੱਕੜ ਦੀ ਰਖਵਾਲੀ ਤੇ ਸਖ਼ਤ ਨਿਗਰਾਨੀ ਰੱਖੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ।

ਬਾਬੇ ਦੀ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਇਹ ਪਹਿਲੀ ਯਾਦਗਾਰ ਕਦੋਂ ਸਿਰਜੀ ਗਈ ਅਤੇ ਇਸ ਦਾ ਸਰੂਪ ਕੀ ਸੀ, ਇਸ ਬਾਰੇ ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਵੀ ਕੋਈ ਜਾਣਕਾਰੀ ਨਹੀਂ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਕੋਈ ਲਿਖਤੀ ਜਾਂ ਉਕਰਾਈ ਮੌਜੂਦ ਹੈ। ਦੰਤ-ਕਥਾਂਵਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਇਸ ਦਾ ਵਜੂਦ ਬਾਬੇ ਦੀ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਕਥਿਤ ਸ਼ਹੀਦੀ ਸਮੇਂ ਹੀ ਹੋਂਦ ਵਿੱਚ ਆ ਗਿਆ ਸੀ, ਪਰ ਖੋਜ ਕੀਤਿਆਂ ਇਹ ਗੱਲ ਸਹੀ ਨਹੀਂ ਲੱਗਦੀ।

ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਅਨੁਸਾਰ:

> "ਮਾਲਵਾ ਦੀ ਯਾਤਰਾ ਦੌਰਾਨ ਜਦ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦੁਰ ਜੀ ਪਿੰਡ ਜੋਗਾ (ਮਾਨਸਾ) ਪਹੁੰਚੇ ਤਾਂ ਉਥੋਂ ਦੇ ਲੋਕ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਨ ਨਾ ਆਏ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਜੋਗਾ ਪਿੰਡ ਤੋਂ ਹੁੰਦੇ ਹੋਏ ਰੱਲੇ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਦੀ ਭੂਪਾਲ ਪਿੰਡ ਪਹੁੰਚੇ ਅਤੇ ਰਾਤ ਬਤੀਤ ਕੀਤੀ।"[3]

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪੰਜਾਬ ਅਤੇ ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਅਧਿਐਨ ਤੋਂ ਇਹ ਜਾਣਕਾਰੀ ਤਾਂ ਮਿਲਦੀ ਹੈ ਕਿ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦੁਰ ਜੀ ਜਦੋਂ ਇਸ ਵਿਸ਼ਾਲ ਝਿੜੀ (ਜੰਗਲ) ਵਿੱਚੋਂ ਲੰਘੇ ਸਨ, ਉਸ ਸਮੇਂ ਇੱਥੇ ਕਿਸੇ ਕੱਚੀ ਜਾਂ ਪੱਕੀ ਸਮਾਧ ਜਾਂ ਪੂਜਣ ਯੋਗ ਜਗ੍ਹਾ ਤੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦੁਰ ਜੀ ਦੇ ਠਹਿਰਨ ਬਾਰੇ ਕੋਈ ਸੰਕੇਤ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ। ਜੇਕਰ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਮਟੀਲੀ ਜਾਂ ਸਮਾਧ ਹੁੰਦੀ ਤਾਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਗੁਰੂ ਜੀ ਇੱਥੇ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਜ਼ਰੂਰ ਠਹਿਰਦੇ।

ਐਚ. ਏ. ਰੋਜ਼ ਅਨੁਸਾਰ:

---

2 ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ, *ਮਹਾਨ ਕੋਸ਼*, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2010, ਪੰਨਾ 7

3 ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ, *ਸੂਰਜ ਪ੍ਰਕਾਸ਼*, ਭਾ. ਚਤਰ ਸਿੰਘ ਜੀਵਨ ਸਿੰਘ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2003, ਪੰਨਾ 341

"1883 ਈ. ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਮਰਦਮ ਸ਼ੁਮਾਰੀ ਦੇ ਅੰਕੜਿਆਂ ਤੇ ਅਧਾਰਿਤ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਵੱਡ ਅਕਾਰੀ (ਤਿੰਨ ਜਿਲਦਾਂ) ਪੁਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਕਰਵਾਈ ਗਈ ਸੀ। ਉਸ ਵਿੱਚ ਚਹਿਲਾਂ ਦੇ ਪਿਛੋਕੜ, ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦੇ ਪਿਤਾ ਰਾਜਪਾਲ ਅਤੇ ਬੁਲੰਦ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਬਾਬੇ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਬਾਰੇ ਸੁਣੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਜਾਂ ਦੰਤ-ਕਥਾਂਵਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਕੁਝ ਜਾਣਕਾਰੀ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਉਸ ਨੇ ਬਾਬੇ ਦੇ ਜਨਮ ਤੇ ਸ਼ਹੀਦੀ ਪਟਿਆਲਾ ਰਿਆਸਤ ਵਿੱਚ ਕਿਸੇ ਥਾਂ ਹੋਣ ਅਤੇ ਰੱਲੇ ਵਿਖੇ ਬਾਬੇ ਦੀ ਸਮਾਧ ਬਾਰੇ ਸੰਕੇਤ ਮਾਤਰ ਵੇਰਵੇ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਤੇ ਕੇਵਲ ਕੱਚੇ ਦੋ ਟਿੱਲੇ ਰੂਪ ਦੀਆਂ ਸਮਾਧਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਹੈ, ਪਰ ਇਹ ਕਦੋਂ ਹੋਂਦ ਵਿੱਚ ਆਈਆਂ ਤੇ ਹੋਰ ਵੇਰਵੇ ਨਹੀਂ ਦਿੱਤੇ।"[4]

ਸਰ ਡੈਂਜ਼ਲਸ ਇਬੈਟਸਨ ਅਨੁਸਾਰ:

"ਦਦਰੇੜਾਂ ਸ਼ਾਖ ਦੇ ਚੌਹਾਨਾਂ ਅਤੇ ਚਹਿਲ ਸ਼ਾਖ ਦੇ ਚਹਿਲਾਂ ਦੀ ਮੁੱਢ ਤੋਂ ਹੀ ਗੋਗਾ ਪੀਰ ਅਤੇ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਬਾਰੇ ਸ਼ਰਧਾ ਦੀ ਸਾਂਝ ਚੱਲ ਰਹੀ ਸੀ। ਜਿਸ ਬਾਰੇ ਸਰ ਡੈਂਜ਼ਲਸ ਇਬੈਟਸਨ ਦੀ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਜੱਟ ਅਤੇ ਰਾਜਪੂਤ ਕਬੀਲੇ ਪੁਸਤਕ ਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਅਨੁਵਾਦਕ ਸੁਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਰਾਜਪੂਤ ਧੂਰੀ ਨੇ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਆਖਿਆ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਚਹਿਲ ਚੌਹਾਨਾਂ ਦੀ ਸ਼ਾਖ ਹਨ, ਚਹਿਲਾਂ ਦਾ ਵਡੇਰਾ, ਖੇਤ ਰਾਮ ਗੋਗਾ ਚੌਹਾਨ ਦੀ 24ਵੀਂ ਥਾਂ ਤੇ ਸੀ। ਖੇਤ ਰਾਮ ਦੇ ਦੋ ਪੁੱਤਰ ਕੇਸਰੀ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਉਮੈਦ ਸਿੰਘ ਸਨ। ਉਮੈਦ ਸਿੰਘ ਗੋਗਾ ਮਾੜੀ ਦਾ ਮਾਲਕ ਬਣਿਆ ਸੀ ਜੋ ਚਹਿਲਾਂ ਦਾ ਹੀ ਵੰਸ਼ਜ ਸੀ। ਚਹਿਲਾਂ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾਂ ਟਿਕਾਣਾ ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੀ ਤਹਿਸੀਲ ਨੋਹਰ ਅਤੇ ਭਾਦਰਾ ਹੈ ਜੋ ਗੰਗਾਨਗਰ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਵਿੱਚ ਪੈਂਦਾ ਹੈ (ਰਾਜਪੂਤ ਵੰਸ਼ਾਵਲੀ) ਅਨੁਸਾਰ ਚਹਿਲ ਜਿੱਥੇ ਵੀ ਜਾਣਗੇ ਉੱਥੇ ਹੀ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਬਣਾਉਣਗੇ।"[5]

ਮਹਾਰਾਜਾ ਪਟਿਆਲਾ ਬਾਬਾ ਆਲਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਕਾਲ ਅਨੁਸਾਰ ਉਹਨਾਂ ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਜਾਂ ਪਹਿਲਾਂ ਕਿਸੇ ਨੇ ਵੀ ਝਿੜੀ (ਜੰਗਲ) ਵਿੱਚ ਮਾੜੀ ਮੋਟੀ ਸਮਾਧ ਜਾਂ ਯਾਦਗਾਰ ਦੀ ਦੱਸ ਨਹੀਂ ਪਾਈ। ਮਾਲੂਮ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਬਾਬਾ ਆਲਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਸਮੇਂ ਤੱਕ ਇਸਦੀ ਕੋਈ ਹੋਂਦ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਮਹਾਰਾਜਾ ਆਲਾ ਸਿੰਘ ਦੇ ਦਿਹਾਂਤ ਹੋਣ ਜਾਣ ਪਿੱਛੋਂ ਪਟਿਆਲਾ ਦੇ ਸ਼ਾਹੀ ਘਰਾਣਿਆਂ ਦੇ ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਿਆਂ ਦੇ ਰੱਲੇ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਦੀਆਂ ਦਾ ਰੁਝਾਨ ਚੱਲਦਾ ਰਿਹਾ। ਚਹਿਲ ਪੁੱਤਰੀਆਂ ਬਾਰੇ ਇਹ ਮਿੱਥ ਪ੍ਰਚੱਲਿਤ ਹੋ ਚੁੱਕੀ ਸੀ ਕਿ ਸੁੰਦਰਤਾ ਵਿੱਚ ਇਹ ਪਰੀਆਂ ਨੂੰ ਮਾਤ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ (ਜਾਂ ਪਰੀਆਂ ਦੀ ਸੰਤਾਨ ਹੋਣ ਦਾ ਭਰਮ) ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਕੁੱਖ ਸਦਾ ਸਵੱਲੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਤਿਹਾਸਕਾਰਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਚਹਿਲਾਂ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾ ਸਥਾਨ ਕੈਸਪੀਅਨ ਸਾਗਰ ਦਾ ਪੂਰਬੀ ਖੇਤਰ ਸੀ। ਇਸ ਵਿਚਾਰ ਨੂੰ ਇਸ ਗੱਲ ਤੋਂ ਬਲ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਚਹਿਲ ਲੋਕ ਪਰੀਆਂ ਦੀ ਸੰਤਾਨ ਹਨ। ਕਿਉਂਕਿ ਇਸ ਇਲਾਕੇ ਵਿੱਚ ਕੋਹ ਕਾਫ਼ ਦੇ

---

4 H.A. Rose, *A Glossary of the tribes and castes of the Punjab and North-West Frontier Province,* Punjab National Press, Delhi, 1883, Vol.II, Pages 146 (Translator by Retd. School Principal Jagjit Singh Aulakh, Budhlada)

5 ਸਰ ਡੈਂਜ਼ਲਸ ਇਬੈਟਸਨ, *ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਜੱਟ ਅਤੇ ਰਾਜਪੂਤ ਕਬੀਲੇ*, ਸੰਗਮ ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨਜ਼, ਸਮਾਣਾ, 2013, ਪੰਨਾ 71 ਫੁੱਟ (ਨੋਟ, 2)

ਪਹਾੜੀ ਤੇ ਬਰਫ਼ੀਲੇ ਇਲਾਕੇ ਨੂੰ ਪਰਿਸਥਾਨ ਦਾ ਨਾਮ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ, ਜਿੱਥੇ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਾ ਹੜ੍ਹ ਆਇਆ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਸੁੰਦਰ ਇਸਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਹੀ ਪਰੀਆਂ ਦੀ ਸੰਗਿਆ ਦਿੱਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ।

ਸਰ ਅਤਰ ਸਿੰਘ ਭਦੌੜ ਅਨੁਸਾਰ:

> "ਮਹਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬ ਸਿੰਘ ਦੀ ਸ਼ਾਦੀ ਵੀ ਰੱਲੇ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਹੋਈ ਸੀ। ਮਹਾਰਾਜਾ ਪਟਿਆਲਾ ਸਰਦਾਰ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਦਾ ਜਨਮ ਮਹਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬ ਸਿੰਘ ਦੇ ਘਰ ਅੱਸੂ ਸੁਦੀ 6, ਸੰਮਤ 1855 (ਬਿ. 1798) ਵਿੱਚ ਸੋਮਵਾਰ ਦੇ ਦਿਨ ਮਹਾਰਾਣੀ ਆਸ ਕੌਰ ਦੀ ਕੁੱਖੋਂ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ। ਆਪ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਸ਼ਾਦੀ 12 ਸਾਲ ਦੀ ਛੋਟੀ ਉਮਰੇ ਮਾਘ ਸੁਦੀ 5, ਸੰਮਤ 1867 (ਬਿ. 1810) ਵਿੱਚ ਥਾਨੇਸਰ ਦੇ ਸਰਦਾਰ ਭੰਗਾ ਸਿੰਘ ਦੀ ਪੁੱਤਰੀ ਬੀਬੀ ਰੂਪ ਕੌਰ ਨਾਲ ਹੋਈ ਸੀ। ਜਿਸ ਦੇ ਪਿਛੋਂ 11 ਸ਼ਾਦੀਆਂ ਹੋਰ ਹੋਈਆਂ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਕਈ ਪੁੱਤਰ ਪੈਦਾ ਤਾਂ ਹੋਏ, ਪਰ ਉਹ ਸਭ ਬਚਪਨ ਵਿੱਚ ਹੀ ਚੱਲ ਵਸੇ ਸਨ। ਇਹਨਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇੱਕ ਸ਼ਾਦੀ ਰੱਲੇ ਪਿੰਡ ਦੇ ਸਰਦਾਰ ਸੁੱਧਾ ਸਿੰਘ ਚਹਿਲ ਦੀ ਪਰੀਆਂ ਜਿਹੀ ਖ਼ੂਬਸੂਰਤ ਧੀ ਬੀਬੀ ਚੰਦ ਕੌਰ ਨਾਲ ਹੋਈ ਸੀ। ਬੀਬੀ ਚੰਦ ਕੌਰ ਦੀ ਕੁੱਖ ਭਾਗਾਂ ਵਾਲੀ ਰਹੀ ਜਿਸਦੀ ਕੁੱਖੋ ਟਿੱਕਾ ਨਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਮੱਘਰ ਵਦੀ 10, ਸੰਮਤ 1880 (ਬਿ. 1823) ਦਿਨ ਸ਼ੁੱਕਰਵਾਰ ਨੂੰ ਪੈਦਾ ਹੋਏ। ਇਸ ਸੁਭਾਗੇ ਰਾਜਕੁਮਾਰ ਦੇ ਜਨਮ ਨਾਲ ਜਿੱਥੇ ਪਟਿਆਲਾ ਰਾਜ ਘਰਾਣੇ ਦੀ ਲੜੀ (ਅੰਸ਼) ਅੱਗੇ ਵਧੀ, ਉਸ ਦੇ ਰਾਜ ਕਾਲ ਦੇ ਸਮੇਂ ਰਿਆਸਤ ਦਾ ਮਾਣ ਸਤਿਕਾਰ ਵਿੱਚ ਬੇਅੰਤ ਵਾਧਾ ਹੋਇਆ।"[6]

1857 ਦੇ ਵਿਦਰੋਹ ਸਮੇਂ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਰਾਜਿਆਂ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਦੱਖਣ ਅਤੇ ਹੋਰ ਰਾਜਿਆਂ ਨੇ ਵੀ ਅੰਗਰੇਜ਼ਾਂ ਦਾ ਬਹੁਤ ਸਾਥ ਦਿੱਤਾ ਸੀ।

ਰੱਲਾ ਪਿੰਡ ਦੀ ਉਰਦੂ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਾਪਤ ਬੰਦੋਬਸਤ ਰਿਪੋਰਟ ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਨੁਵਾਦ ਜਗਜੀਤ ਸਿਘ ਔਲਖ ਅਨੁਸਾਰ:

> "ਬੰਦੋਬਸਤ ਰਿਪੋਰਟ ਅਨੁਸਾਰ ਬਖ਼ਸ਼ੀ ਪਰਤਾਪ ਸਿੰਘ ਚਹਿਲ ਸਰਦਾਰ ਸੁੱਧਾ ਸਿੰਘ ਚਹਿਲ ਦਾ ਬਹੁਤ ਹੋਣਹਾਰ, ਉੱਦਮੀ ਅਤੇ ਕਾਰਜਸ਼ਾਲੀ ਪੋਤਰਾ, ਰਾਣੀ ਚੰਦ ਕੌਰ ਦਾ ਭਤੀਜਾ ਸੀ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪਰਤਾਪ ਸਿੰਘ ਦੀ ਰਾਣੀ ਚੰਦ ਕੌਰ ਭੂਆ ਲੱਗਦੀ ਸੀ ਅਤੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਫੁੱਫੜ ਅਤੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਨਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਮਾਮੇ ਦਾ ਪੁੱਤਰ ਸੀ। ਛੇਤੀ ਹੀ ਉਸ ਨੇ ਜੰਗੀ ਵਜ਼ੀਰ ਜਾਂ ਬਖਸ਼ੀ ਦਾ ਰੁਤਬਾ ਹਾਸਲ ਕਰ ਲਿਆ ਸੀ। ਆਪਣੇ ਪੂਜਨੀਕ ਬਜ਼ੁਰਗ, ਵੀਰ-ਨਾਇਕ ਅਤੇ ਸਿੱਧ-ਪੁਰਸ਼ ਦੀ ਸ਼ਾਨਦਾਰ ਯਾਦਗਾਰ ਉਸਾਰੇ ਜਾਣ ਦਾ ਸੁਪਨਾ ਮਹਾਰਾਜੇ ਨਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਨਾ ਸਰਦਾਰ ਸੁਧਾ ਸਿੰਘ ਚਹਿਲ ਅਤੇ ਮਾਤਾ ਰਾਣੀ ਚੰਦ ਕੌਰ ਦੇ ਮਨ ਅੰਦਰ ਪਸਲੇਟੇ ਮਾਰਨ ਲੱਗ ਪਿਆ ਸੀ। ਮਹਾਰਾਜਾ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਬੜੇ ਪਰਤਾਪੀ, ਇਕਬਾਲ ਵਾਲੇ ਅਤੇ ਸੁੰਦਰ ਇਮਾਰਤਾਂ, ਤੇ ਧਾਰਮਿਕ

---

[6] ਸਰ ਅਤਰ ਸਿੰਘ (ਕੇ. ਸੀ. ਆਈ. ਈ. ਚੀਫ ਆਫ) ਭਦੌੜ, *ਤਵਾਰੀਖ ਸਿੱਧੂ ਬੈਰਾੜਾਂ ਅਤੇ ਖਾਨਦਾਨ ਫੂਲ*, ਖਾਲਸਾ ਟ੍ਰੇਡਿੰਗ ਏਜੰਸੀ ਸ਼ਾਖ ਮੋਗਾ (ਪੰਜਾਬ), 1933, ਪੰਨੇ 132-133

ਸਥਾਨਾਂ ਅਤੇ ਮਹਾਂਪੁਰਖਾਂ ਦੀਆਂ ਯਾਦਗਾਰਾਂ ਉਸਾਰਨ ਵਾਲੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਸਨ। ਮਹਾਰਾਜਾ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਇਸ ਸੁਪਨੇ ਨੂੰ ਸਾਕਾਰ ਕਰਨ ਦੀ ਯੋਜਨਾ ਬਣਾ ਚੁੱਕਾ ਸੀ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਸਭ ਉਸਾਰੀਆਂ ਵਿੱਚ ਮਿਸਤਰੀ ਊਧੇ ਰਾਮ ਜੈਪੁਰੀਏ ਦੀ ਯੋਗ ਅਗਵਾਈ ਵਿੱਚ ਕਰਵਾਈਆਂ ਸਨ। ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਦਾ ਕਮਾਲ ਵੀ ਸ਼ਾਇਦ ਊਧੇ ਰਾਮ ਮਿਸਤਰੀ ਦੀ ਯੋਗ ਅਗਵਾਈ ਵਿੱਚ ਹੀ ਸਿਰੇ ਚੜ੍ਹਿਆ ਹੋਵੇ। ਪਰ ਮਹਾਰਾਜੇ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਦੀ ਮੌਤ ਦੇ ਕਾਰਨ ਬਾਬਾ ਜੋਗੀਪੀਰ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਸਿਰਜਣ ਦਾ ਗੁਣਾਂ ਉਸ ਦੇ ਸਪੁੱਤਰ ਮਹਾਰਾਜਾ ਨਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਤੇ ਪੈ ਗਿਆ ਅੱਗੋਂ ਮਹਾਰਾਜਾ ਦੇ ਮਮੇਰੇ ਭਰਾ ਬਖਸ਼ੀ ਪਰਤਾਪ ਸਿੰਘ ਚਹਿਲ ਦੀ ਦੇਖਰੇਖ ਵਿੱਚ ਮੁਕੰਮਲ ਕਰਨ ਦਾ ਫੈਸਲਾ ਕਰ ਲਿਆ ਗਿਆ।"[7]

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ 1850 ਦੇ ਲਗਭਗ ਇੱਕ ਉੱਚੇ ਬੁਰਜ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਪੂਰੀ ਹੋ ਗਈ। ਇਸ ਦੀ ਉਚਾਈ ਨੂੰ ਦੇਖਦਿਆਂ ਇਸ ਗੜ੍ਹੀ ਜਾਂ ਬੁਰਜ ਦਾ ਨਾਮ ਬੁਲੰਦ ਰੱਖਿਆ ਗਿਆ। ਬੁਲੰਦ ਦੀ ਉੱਪਰਲੀ ਛੱਤ ਤੇ ਚੜ੍ਹ ਕੇ ਝਲੇਰੇ ਦੇ ਪਿੰਡਾਂ ਨੂੰ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਸੀ। ਬੁਲੰਦ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਹੋਣ ਪਿੱਛੋਂ ਚੇਤ ਦੀ ਚਾਨਣੀ ਚੌਥ ਅਤੇ ਭਾਦਰੋਂ ਦੀ ਚਾਨਣੀ ਚੌਥ ਤੇ ਵੱਡੇ ਜੋੜ-ਮੇਲੇ ਲੱਗਣ ਲੱਗ ਪਏ ਸਨ। ਇਹਨਾਂ ਜੋੜ-ਮੇਲਿਆਂ ਤੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਧਰਮਾਂ ਦੇ ਲੋਕ ਪਹੁੰਚਦੇ ਸਨ। ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਚਹਿਲ ਭਾਈਚਾਰੇ ਨੇ ਹੁਣ ਤਾਂ ਦੂਰੀ ਅਤੇ ਅਸਵਦਾਂ ਨੂੰ ਮੁੱਖ ਰੱਖਦਿਆਂ ਰੱਲੇ ਦੀ ਇਸ ਯਾਦਗਾਰ ਤੋਂ ਮਿੱਟੀ ਜਾਂ ਇੱਟਾਂ ਲੈ ਕੇ ਚਹਿਲ ਭਾਈਚਾਰੇ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ ਯਾਦਗਾਰੀ ਬੁਲੰਦਾਂ ਉਸਾਰ ਲਈਆਂ ਹਨ। ਫੇਰ ਵੀ ਹਰ ਸ਼ਰਧਾਵਾਨ ਚਹਿਲ ਜਾਂ ਹੋਰ ਇੱਕ ਵਾਰ ਇੱਥੇ ਪਹੁੰਚ ਕੇ ਨਤਮਸਤਕ ਹੋਣ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਪਾਲਦਾ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਆਪੋ ਆਪਣੇ ਪਿੰਡਾਂ ਦੀਆਂ ਬੁਲੰਦਾਂ ਤੇ ਮੂਲ ਸਥਾਨ ਵਾਂਗ ਮੇਲੇ ਲੱਗਣ ਲੱਗ ਪਏ ਹਨ। ਮਨੋਕਾਮਨਾ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਸ਼ਰਧਾਲੂਆਂ ਦੁਆਰਾ ਅਰਦਾਸਾਂ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਆਸਾਵਾਂ ਨੂੰ ਬੂਰ ਪੈ ਗਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਉਹ ਸ਼ੁਕਰਾਨੇ ਲਈ ਆਪਣੀ ਸਮਰੱਥਾ ਅਤੇ ਸ਼ਰਧਾ ਅਨੁਸਾਰ ਨਗਦਨਾਮਾ ਅਤੇ ਖਾਦ ਸਮੱਗਰੀ ਜਿਵੇਂ: ਗੁੜ ਦੀਆਂ ਭੇਲੀਆਂ, ਸ਼ੱਕਰ, ਪਤਾਸੇ, ਸੀਰਨੀ, ਲੂਣ, ਘਿਉ ਦੇ ਨਾਲ ਹੁਣ ਨਵੀਨ ਰੂਪ ਦੇ ਚੜ੍ਹਤ-ਚੜ੍ਹਾਵੇ ਵੀ ਚਾਲੂ ਹੋ ਗਏ ਹਨ। ਕਈ ਇਸਤਰੀਆਂ ਤਾਂ ਪੁੱਤਰ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਦੀ ਆਸ ਜਾਂ ਆਸਾਂ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਆਪਣੇ ਗਹਿਣੇ ਤੱਕ ਗੁਪਤ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਗੋਲਕ ਵਿੱਚ ਭੇਟ ਕਰ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਹੁਣ ਤਾਂ ਹਰ ਮਹੀਨੇ ਦੀ ਚਾਨਣੀ ਚੌਥ ਨੂੰ ਵੀ ਛੋਟੇ ਮੇਲੇ ਲੱਗਣ ਲੱਗ ਪਏ ਹਨ।

---

7 ਮੌਜਾ ਰੱਲਾ (ਰਿਆਸਤ ਪਟਿਆਲਾ), *ਬੰਦੋਬਸਤ ਰਿਪੋਰਟ*, 1907, ਪੰਨਾ 3 (ਉਰਦੂ ਅਨੁਵਾਦ ਪੰਜਾਬੀ ਰਿਟਾਇਰਡ ਸਕੂਲ ਪ੍ਰਿੰਸੀਪਲ ਜਗਜੀਤ ਸਿੰਘ ਔਲਖ, ਬੁਢਲਾਡਾ)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 80-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

తిక్కన మహా భారతం - కవితా శిల్పం

డా.పసుపులేటి నాగమల్లిక ,

తెలుగు అధ్యాపకులు,ఎ.ఎస్.డి

ప్రభుత్వ మహిళా డిగ్రీ కళాశాల,కాకినాడ, ఆంధ్ర ప్రదేశ్.

తిక్కన కవి పరిచయం: సంస్కృతంలో వ్యాస విరచితమైన మహా భారతాన్ని తెలుగు భాషలోకి కవిత్రయం వారు ఆంధ్రీకరించారు. వారు ఆదికవి నన్నయ్య, మహా కవి తిక్కన, ప్రబంధ పరమేశ్వరుడు ఎర్రన. పేరుకు ద్వితీయుడైనా మహా భారత రచనలో అద్వితీయుడై మన్ననలొందినవాడు తిక్కన్న. తిక్కన క్రీ.శ. 13వ శతాబ్దిలో నెల్లూరును పాలించిన మనుమసిద్ధి ఆస్థానకవి. అంతేకాక మంత్రిగా పదవిని అలంకరించిన గొప్ప రాజనీతజ్ఞుడు. తిక్కన తల్లిదండ్రులు అన్నమ, కొమ్మనామాత్యులు, అతని తాత మంత్రి భాస్కరుడు. తిక్కన తన నిర్వచనోత్తర రామాయణంలో తన తాతగారైనా మంత్రి భాస్కరుని “గుంటూరి విభునిగ, ‘సార కవితాభిరామునిగ” పేర్కొన్నాడు. తిక్కన తండ్రి కొమ్మన మనుమసిద్ధి వద్ద దండనాథుడుగా వర్ధిల్లాడు. తిక్కన శిష్యుడు కేతన తిక్కన వంశ చరిత్రను తన దశకుమార చరిత్ర గ్రంథంలో వివరించాడు. ఈ గ్రంథాన్ని తిక్కనకి అంకితమిచ్చాడు. తిక్కనను ‘మామ” అని ముద్దుగా పిలిచి కావ్యకన్య నిమ్మని అడగగా నిర్వచనోత్తర రామాయణాన్ని రచించి అంకితమిచ్చి కృతి భర్తని చేశాడు.

తిక్కన మహా భారత రచన: తిక్కన భారత అనువాదంలో నన్నయ అనుసరించిన పద్ధతులన్నే అనుసరించాడు. మూల భారతంలోని కొన్ని అంశాల్ని తగ్గించడం, కొన్నింటిని పూర్తిగా వదిలేయడం, కొన్ని చోట్ల పెంచడం, కొత్త ప్రకృతి వర్ణనలు చేయడం, పాత్ర చిత్రణా వైవిధ్యాల్ని, మనస్తత్వ చిత్రీకరణలో పొందు పర్చుటం, ఆయా సన్నివేశాలకు సంబంధించిన సంభాషణల్ని, రస పోషణల్ని నిర్వహించడం లాంటి అనేక అంశాల్లో తెలుగుదనం ఉట్టిపడేలా తిక్కన భారత రచన చేశాడు. తిక్కన రాసిన మహా భారత పర్వాలు సంఖ్య 15. అవి 1. విరాట 2. ఉద్యోగ 3. భీష్మ 4. ద్రోణ 5. కర్ణ 6. శల్య 7. సౌప్తిక 8. స్త్రీ 9. శాంతి

10.అనుశాసనిక 11. అశ్వమేధ 12. ఆశ్రమ వాస 13. మౌసల 14, మహాప్రస్థాన 15.స్వర్గారోహణ. తిక్కన ఈ 15 పర్వాల భారతాన్ని "మహా కవిత్వ దీక్షా నిధి నొంది", "ఆంధ్రావళి మోదముంబొరయనట్లుగ" బుధు సంతోషంబు నిండారగ రచించినాడు.

తిక్కన కవితా శిల్పం: మహా భారత రచనలో "నన్నయదొక ఋషి మార్గమైన తిక్కనదొక రస మార్గమని సాహితీవిమర్శకుల అభిప్రాయం. కావ్య పరమావధి రసము. శిల్పము రసావిష్కరణాత్మకమైన కళ. కథాగత పాత్రలను, వాటి స్వరూప స్వభావాలను సొంపైన పదాల పొందిక ద్వారా, సన్నివేశ కల్పనల ద్వారా, సంభాషణల మూలమున సహృదయ హృదయమునందు స్ఫురింప జేయుటయే కావ్యశిల్పము. అటువంటి తిక్కన కవితాశిల్పము బుద్ధిగమ్యమైనది, అనుకరణ సాధ్యముకానిది. తిక్కన కావ్యంలో శబ్దం అర్థానుసారియై వుంటుంది కాని, శబ్దాన్ని అనుసరించి వుండదు. అల్పాక్షరాల్లో అనల్పార్థాన్ని కూర్పడం తిక్కనలో కన్పిస్తుంది. అందుకే 'తిక్కన శిల్పంపు తెనుగుతోట' అని విశ్వనాథ సత్యనారాయణ గారన్న మాట అక్షర సత్యం. తిక్కన భారత కవితా శిల్ప సౌందర్యాన్ని ఈ క్రింది అంశాలలో చూడవచ్చు. **అవి**:

1) పాత్ర చిత్రణ
2) వర్ణనా శిల్పం
3) నాటకీయత
4) రసాభ్యుచిత బంధం
5) అలంకార రచన
6) తిక్కన భాషాశైలి

1.పాత్ర చిత్రణ:- పాత్రపోషణలో తిక్కన తన అసాధారణ నైపుణ్యాన్ని ప్రదర్శించాడు. తిక్కన భారతంలో వందలాది పాత్రలు, విభిన్న మనస్తత్వాలు పరస్పరం సంఘర్షించుకొంటూ, ఆమోదించుకుంటూ, విభేదించుకొంటూ ప్రవర్తిస్తాయి. ఆయా సందర్భాల్లో ఆయా పాత్రల మనోభావాలు, వాని ఆంగికాది విన్యాసాలు నాటకీయంగా పోషించి పాత్రల చేష్టాదులను వర్ణిస్తూ కన్నులకు కట్టినట్లుగా సజీవ పాత్రచిత్రణ చేశాడు. ఇందుకు విరాట, ఉద్యోగాది పర్వాల్లోని అనేక సన్నివేశాల్లోని పాత్రలన్నీ ఉదహరింపదగినవే. ఉదా: శ్రీకృష్ణుడు, భీష్ముడు, ధర్మరాజు, ద్రౌపది, శ్రీకృష్ణున్ని సర్వేశ్వరునిగా,శాంతిదూతగా,భగవద్గీతాచార్యునిగా, దుష్టశిక్షణ శిష్ట రక్షణ చేయు విశ్వలీలామూర్తిగా ధర్మ సంస్థాపకునిగా తిక్కన కీర్తించాడు. ధర్మరాజుని' ధర్మసూతి మెత్తనిపులి' అని పలకటం తిక్కనా మాత్యుని పాత్రచిత్రణా నైపుణికి జయకేతనం!. 'సుదేష్ణ' నిస్సహాయగా చిత్రించబడింది. ద్రౌపది భారత నారీమణిగా, ధీర వనితగా అభివర్ణించినాడు. ఈ విధంగా సహజ సుందర పాత్రచిత్రణలో తిక్కన అందెవేసిన చేయి.

2. వర్ణనా శిల్పం: తిక్కన వర్ణనలు కథావశమున సహజంగా ఆవిర్భవిస్తూ ఉత్తర కథకు పోషకంగా పాత్ర చిత్రీకరణ కనువుగా, రసమునకుద్దీపకాలుగా ఉండెను. కథను శరవేగముగా నడిపించుటకే గాని కథకద్భుతగులు వర్ణనలను తిక్కన సాధారణముగా చేయడు. తిక్కన

వర్ణనలు రసానుగుణములై దృశ్యములను పఠితలకు సాక్షాత్కరింపజేస్తాయి. తిక్కన నిశ్చల స్త్రీలనుగాక వారు నడచునపుడు, నవ్వినపుడు, పలుకు నప్పుడు కలుగు సౌందర్యమునే ఎక్కువగా వర్ణించును. బృహన్నలను సారధిగా ఒప్పించటానికి ఉత్తర అతని దగ్గరకు పోయేటప్పుడు తిక్కన ఆమె విలాసమును

"అడుగులను కాంతి నయ్యెడబద్మ రాగమ్ముల నెలకట్టు కరణినొప్పగా నున్నదని"

ఆమె రూపము కళ్లకు కట్టినట్లు మనోహరముగా వర్ణించాడు. ఔచిత్యానికి భంగము కలుగకుండా వర్ణనల కోసమే వర్ణనలు చేయకుండా కథా పురోగతికి వర్ణనలు తోడ్పడుతూ సహజ సుందరాలై సరళాలంకారశోభితాలై ఉండేట్లుగా రచించడం తిక్కన వర్ణనా శిల్ప విశిష్టత.

3.నాటకీయత: తిక్కన భారతం చదివేటప్పుడు మనకది శ్రవ్య కావ్యంగా గాక ఒక దృశ్యరూపాన్ని దర్శించిన అనుభూతి కలుగుతుంది. ఆయా పాత్రల అభినయ విన్యాసాలు మనకు ఆ పాత్రల్ని నాటకరంగస్థలం మీద నటిస్తుండగా చూస్తున్న భావన కలిగిస్తాయి. కథనాత్మక, వర్ణనాత్మక నాటకీయములను త్రివిధ శైలులలో తిక్కనది నాటకీయ శైలి. సంభాషణ గావించిన మూలమున ఆంగిక చేష్టాభినయ వర్ణనలచేతనే నాటకములందు తిక్కన పాత్రల స్వరూపములను, మనః ప్రవృత్తులను గోచరింపజేశాడు. పాత్ర సంభాషణలను వ్యక్తీకరించునపుడు అతడు మాటలు చెప్పి ఊరుకొనక వాటి ఆంగిక చేష్టాభినయమును కూడా వర్ణిస్తాడు.

ఉదా: ఉద్యోగపర్వంలో "ద్రౌపది ఆవేదన వర్ణన. ద్రౌపది తన భంగపాటును శ్రీకృష్ణునికి వివరించినపుడు

"ద్రోవది బంధురంబయిన కొమ్ముడి గ్రమ్మన విడ్చి, వెంట్రుకల్ తావలచేతబూని, యసితచ్ఛని బొల్చు మహాభుజంగమో

నా విలసిల్లి ట్రీలగ మనంబున పొంగు విషాద రోషముల్

కావగలేక బాష్పములు గ్రమ్మర దిగ్గన లేచియార్తయై"

అని తిక్కన వర్ణించాడు. ఈ విధంగా తిక్కన విరాట, ఉద్యోగ పర్వంలోని ఉత్తరగోహణం, కీచక వధ, సంజయ, శ్రీకృష్ణ రాయబార ఘట్టాలు రమణీయ నాటకీయ శైలికి, నాటకోచిత సంభాషణా చాతుర్యానికి చక్కని తార్కాణాలు.

4.ఆలంకారిక రచన: కావ్య శోభను ఇనుమడింపజేసే అలంకారాలు సరళ సుందరంగా, రస, కథా గమనేచితంగా కూర్చి తిక్కన మహాభారత సౌందర్యాన్ని మరింతగా పెంచాడు. ఉపమ, ఉత్ప్రేక్ష, రూపక, అతిశయోక్తి, స్వభావోక్తి అలంకారాలను సహజ సుందరంగా ప్రయోగించి 'భారత కావ్యలక్ష్మికి మరింత శోభను తిక్కన చేకూర్చాడు. ఉపమ తిక్కనకు నచ్చిన అలంకారం. ఆ తర్వాత ఉత్ప్రేక్ష, ఉత్తర గోగ్రహణంలో కురు సైన్యంపై కలయవచ్చిన అర్జునుని గూర్చి ద్రోణుడు పల్కిన మాటలు ఎంత రమణీయంగా వున్నాయో చూడండి. "సింగంబాకటితో గుహాంతరమునన్ జేడ్పాటు మైనుండి మా తంగ స్ఫూర్జితయూధ దర్శన...... కుంతీ మధ్యముండు సమరసీమాభిరామాకృతిన్".

ఆకలితో నకనకలాడుతూ గుహలో చిక్కివున్న సింహానికి అకస్మాత్తుగా ఏనుగులగుంపు కనబడితే ఎంత ఉత్తేజంతో వస్తుందో, ఆ విధంగా అడవుల్లో బాధలు అనుభవించిన అర్జునుడు యుద్ధంకోసమై మన మీదికి చెంగున వస్తున్నాడు. ఈ ఉపమ అప్పటి అర్జునుని రూపం మన కళ్లముందు వుంచుతుంది.

5.రసాభ్యుచిత బంధం: కావ్యం రస ప్రధానమైంది. కాబట్టి కావ్యశిల్పం రసోపకారకమై వుండాలి. అది శబ్దశిల్పమైనప్పటికీ, వస్తు శిల్పమైనప్పటికీ, ఛందో శిల్పమైనప్పటికీ రసస్ఫోరకంగా ఉండాలి. ఒక కావ్యం ఎప్పుడు రసస్ఫూ రకంగా వుంటుందో అప్పుడే ఆ కావ్యం రమణీయంగా వుంటుంది. అలా అయ్యిందంటేనే రసోచితం సాధ్యమైనట్లు. రసోచితమైన శబ్దసంయోజనమే శబ్దశిల్పం. ఆ శబ్ద శిల్పమే రసాభ్యుచిత బంధం. దీనిని అంది పుచ్చుకున్న తిక్కన రసశిల్పం అనన్యసామాన్యం. తిక్కన రసాభ్యుచిత బంధం తారాస్థాయికి చేరినట్టిది కాబట్టి కవి సార్వభౌముడైన శ్రీనాథుడు తిక్కన గూర్చి చెపుతూ 'వాక్రుత్తు తిక్కయజ్వ ప్రకారము రసాభ్యుచిత బంధముగ నొక్కొక్క మాటు' అని అన్నాడు. తిక్కన విరాటపర్వాన్ని 'హృదయాహ్లాది చతుర్థమూర్జిత కథోపేతంటు వారసాభ్యుదయోల్లాసి' అని అన్నాడు. ఈ విశేషణాన్ని మనం ఒక విరాట పర్వానికే కాక తిక్కన రాసిన తక్కిన పదిహేను పర్వాలకు కూడా అన్వయించుకోవచ్చు. భారతమున అంగీరసముగా శాంతమునూ మిగిలినవి అంగరసములుగా చక్కగా పోషించబడ్డాయి. ఉదా: విరాటుని కొలువులో ద్రౌపదికి జరిగిన పరాభవమును చూసిన భీముని రౌద్ర రసమూర్తిగా తిక్కన చిత్రించిన తీరు అత్యద్భుతము.

"కనుగొని కోపవేగమున కన్నులు నిప్పులు రాలనంగముల్ కనలగ భయదస్ఫురణా పరిణిద్ధ మూర్తియై!!"

ఇట్లే యుద్ధములందు వీరము. శాంత్యనుశాసనిక పర్వములందు శాంతము, స్త్రీ పర్వమునందు కరుణ పోషింపబడినాయి. తిక్కన భారతంలోని ప్రతీ పర్వమూ, రసపత్ర బంధమువలె భాసించింది. తిక్కనార్యుని రమ్య రసాభ్యుచిత బంధ వైభవాన్ని దాటి పద్యములు అతని భారత రచనలో మరెన్నో ఉన్నాయి.

6.తిక్కన భాషా శైలి: తిక్కన భాషా ప్రయోగ వైభవము, పదబంధ విన్యాస ప్రాభవము అపూర్వము, అనితర సాధ్యములును. అతనికి దేశీయ పద ప్రయోగమునందే మక్కువ ఎక్కువ, జాతి జీవనములో నున్న జీవభాషను తిక్కన గ్రంథస్థము చేసినాడు. అలతియలతి తేట తెనుగు మాటలతో చక్కని కందపద్యాలలో నీతులను వివరించాడు. ఉదాహరణకు

"పరుల ధనమునకు విద్యా
పరిణతికిం, తేజమునకు, బలమునకు మనం
బెరియగ నసహ్యపడున
న్నరుడు తెవులులేని వేదనంబడు నదిపా!!" ఆణిముత్యాల్లాంటి విదుర నీతులెన్నో తిక్కన తీయని కంద పద్యాలలో కూర్చి, చక్కని జాతీయాలు, లోకోక్తులు, సామెతలతో తిక్కన భాషాశైలి తీయని తేనెల సోనలా అలరారుతుంది.ఉదా:నెలనెలబారు, పెదవులు తడియారు,

వెచ్చనూర్చు, ౹మానుపడు, చిడిముడిపాటు: అగ్గలించు, కొట్టిన తిండికాడు. వెచ్చనూర్చు, కడు ముద్దరాలు మొ॥.

నానుడులు – లోకోక్తులు: ప్రాణముల్ తీపనముసు వినవే. వలవదదిక దీర్ఘ వైరవృత్తి, ఈ త్రిప్పులేమిటికి కమలవదన, కొంగున నగ్గి దాచినట్లే, తిండిపోత! నీకు భండనం బేటికి? ఇట్లే సువర్ణ సూక్తుల్లాంటి విదురు నీతులు, మరెన్నో లోకోక్తులను తిక్కన ఆణిముత్యాల్లా కూర్చి భారతరచన చేశాడు.

ముగింపు: ఈ విధంగా విశ్వజనీన వేద ధర్మ ప్రబోధకంగా ఎంతో ఉత్తమంగా పాత్ర చిత్రణ చేసి, సహజ సుందర వర్ణన, అలంకార, శోభ, కథా సంవిధానం, నాటకీయత, అల్పాక్షర అనల్పార్థ రచన, రసపోషణ కావించి, దేశీయ తెలుగు ఆచారాలను సమ్మేళనం చేస్తూ, తేటతెనుగు కవితా శైలిలో విరాటపర్వం నుండి స్వర్గారోహరణ పర్వం వరకు గల 15 పర్వాల ఆంధ్ర మహాభారతాన్ని ఒక్క చేతిమీదుగా అద్వితీయ కావ్య రచనా శిల్పంతో రచించి అఖండ కీర్తిగాంచాడు మహాకవి తిక్కనార్యుడు.

ఆధార గ్రంథాలు:

1. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర - డా.జి. నాగయ్య. నవ్య పరిశోధక ప్రచురణలు, తిరుపతి, ముద్రణ 2004,
2. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర - వెలమల సిమ్మన్న దళిత సాహిత్య పీఠం, విశాఖపట్నం. ముద్రణ 2014.
3. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర - డా. ద్వానా శాస్త్రి విశాలాంధ్ర పబ్లిషింగ్ హౌస్ హైదరాబాదు. ముద్రణ 2001.
4. తిక్కన మహా భారతము - తిరుమల తిరపతి దేవస్థాన ప్రచురణ.ముద్రణ 2013.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 85-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परम्परा और हिन्दी साहित्य : भक्तिकाल के आलोक में

डॉ० डी० सी० पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय हल्द्वानी शहर, किशनपुर गौलापार कु० वि० वि० नैनीताल, उत्तराखण्ड–263139
डॉ० महेश चन्द्र शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत विभाग,
फूल सिंह बिष्ट राजकीय महाविद्यालय नौघर, लम्बगाँव (टि.ग.)
श्री देव सुमन उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल उत्तराखण्ड- 249165

प्रस्तावना : भारतीय संविधान में कुल 22 भाषाओं को विधिवत मान्यता मिली हुई है। भाषायी विविधता के इस देश में हिन्दी साहित्य की एक सुदीर्घ समृद्ध परम्परा रही है। किसी भी देश की सर्वाधिक प्रचलित एवं स्वेच्छा से आत्मसात की गई भाषा राष्ट्रभाषा कहलाती है। इसमें राष्ट्रीय गौरव व स्वाभिमान जैसी भावनाएं गूँथी- जुडी हुई रहती हैं। साहित्य नाम से ही स्पष्ट है कि यह हितपूर्ण चित्रण का दूसरा नाम है। साहित्य भावों और विचारों की पूँजीभूत अभिव्यक्ति है। किसी भी समाज की संस्कृति व साहित्य के मध्य गहन अन्तर्सम्बन्ध होता है , क्योंकि संस्कृति के निर्माण में साहित्य, संगीत, कला, नैतिकता, विधि-विधान, रीति-रिवाज, परम्परा, धरोहर का विशेष योगदान रहता है। इस तरह साहित्य की संस्कृति निर्माण, परिष्करण, परिमार्जन में अद्वितीय भूमिका रहती है। उच्चकोटि का साहित्य न केवल अपने भाषाई पाठकों को वरन मानवमात्र को जड़ता से चेतनता की ओर ले चलता है। इसी साहित्य से प्रेरणा लेकर राष्ट्र की पीढ़ियाँ संस्कारित होकर मानवता का संदेश देती है। साहित्य से प्राप्त - संचित ज्ञान हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

विश्व में भारतीय दर्शन, ज्ञान, अध्यात्म व नैतिकता का अमृतमय संदेश देने में हिन्दी साहित्य की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। जिस तरह भारतीय विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य चिंतकों का साहित्यकारों का अध्ययन किया जाता है उसी तरह भारतीय हिन्दी साहित्यकारों विशेषतः भक्तिकाल के स्वर्णिम स्तम्भों का भी अध्ययन अन्य देशों भी किया जाता है। क्योंकि इन रचनाकारों द्वारा अपने देश, समाज की स्वस्थ परम्परा एवं मौलिक ज्ञान को अपनी रचनाओं में पात्रों, घटनाओं द्वारा पाठकों के ज्ञान- मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किया गया है। जिससे हमारी ज्ञान परम्परा का विस्तार सात महाद्वीपों तक प्रचारित – प्रसारित होता है। हिन्दी साहित्य की विविध-विधाओं यथा गद्य, पद्य तथा चम्पू द्वारा विभिन्न कालों में भारतीय ज्ञान परम्परा का अनुप्रसार होता आया है। हिन्दी साहित्य ने अपने राष्ट्रीय ज्ञान परम्परा के उच्च सांस्कृतिक मूल्य अपने लगभग डेढ़ हजार वर्षो के कालखंड में प्रदान किये हैं। जिसमें भारतीय संस्कृति – दर्शन में लोकमंगलकारी एवं लोककल्याणकारी स्वरुप को ऐतिहासिक स्वर्णाक्षरों में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। भक्तिकाल के रचनाकार इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

बीज शब्द : मध्य काल, स्वर्णकाल, सगुण– निर्गुण, सन्त साहित्य, सांस्कृतिक धरोहर।

मूल शीर्षक : इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी साहित्य में संस्कृत साहित्य का व्यापक व गहन प्रभाव दिखता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि हिन्दी की जननी संस्कृत की वास्तविक वाहक वह स्वयं है और संस्कृत साहित्य के महान रचनाकारों की विश्वव्यापी दृष्टि व सामाजिक, दार्शनिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, वैयाकरणिक, गणितीय व व्यापारिक दृष्टि को देववाणी में विशाल सम्पदा में देखा जा सकता है। फाह्यान, ह्वेनसांग व मैक्समूलर आदि विद्वान इस पर अपना मत प्रकट कर चुके हैं कि भारतीय ज्ञान-दर्शन की समृद्धता कितनी सम्मुन्नत रही है। इसी परम्परा में हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल अथवा स्वर्णकाल या इसे मध्यकाल के नाम से जाना गया है। कबीर,जायसी, सूर व तुलसी जैसे रत्नों से सुशोभित यह काल वास्तव में हिन्दी साहित्य का ही नहीं भारतीय साहित्य का स्वर्णयुग है। अनुपम, अद्भुत, अद्वितीय, अलौकिक, अतुलनीय व अविस्मरणीय व्यक्तित्व के धनी इस युग के रचनाकार विश्व मंच पर किसी परिचय के मोहताज नहीं है। भारतीय दृष्टि व संस्कृति जीवन को आदर्श रुप में विश्व पटल के सम्मुख रखने के लिए प्रसिद्ध हैं। भक्तिकालीन सन्तों की वाणी में अनश्वर, अजर, अमर, शाश्वत भक्ति साहित्य बनकर जनमानस के सामने सुनहरी छटा बिखेर रहा है। भारतीय पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों को वर्णित करने में सिद्धहस्त ये रचनाकार हमारी धरोहर हैं जिन्होंने आर्यावर्त की शुचिता का गुणगान किया है। श्रद्धा, विश्वास, भक्ति, आस्था, यम, नियम, प्रणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, वर्णाश्रम की विशद विवेचना में पारंगत स्वर्णकाल के कवियों ने मानव मन की परतों का उदात्त चित्रण किया है। विश्व परिवार के कल्याण की कामना करता महामानवता के महासागर से दया, करुणा, प्रेम, त्याग, समर्पण, सत्य, अहिंसा, कर्तव्य व नैतिकता के मोती विखेरने वाले भक्तिकाल के स्वर्णिम स्तम्भ कबीर, सूर, तुलसी व जायसी की एक- एक रचना भारतीय जनमानस की ज्ञान गंगा का उत्तम उदाहरण है। इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्नता एवं बहुरुपता के महामिलन से आप्लावित भक्तिकाल का हिन्दी साहित्य हमारी समृद्ध ज्ञानानुराग की छवि दर्शाता है। धार्मिक, सामाजिक, वैचारिक सहिष्णुता की अक्षुण्ण परम्परा का निर्वहन करती ये रचनाएं उदात्त भावना की परिचायक हैं। न जाने कितने आक्रान्ता, लुटेरे, व्यापारी, घुमक्कड़ अपने– अपने उद्देश्य व ढंग से इस जम्बूद्वीप की ओर बढ़े, कोई रक्त की धारा बहाता, नदी, पर्वत, रेगिस्तान समुद्र को पारकर आया हो या शिक्षा के आवरण में धर्मान्तरण के मिशन से जो भी आये वे सब यहाँ आकर एकाकार हो गये या फिर लौट गये।

साखी, सबद, रमैनी (बीजक) पद्मावत, सूरसागर, साहित्य लहरी,रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली, गीतावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू , हनुमानाष्टक आदि भक्तिकालीन साहित्य कृतियों में भारतीय ज्ञान परम्परा का पग-पग प्रतिपादन हुआ।

तुलसी के शव्दों में :

सगुनहि, अगुनहि नहिं कछु भेदा,
उभय हरहि भव सम्मभव भेदा।

x x x

भगतिहि ज्ञानहि नहि कुछ भेदा,
उभय हरहि भव सम्मभव खेदा।

भारतीय ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ की महत्ता के साथ दर्शन अध्यात्म व कर्म-धर्म की प्रधानता को इस युग के कवियों ने चित्रित किया है। हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग में अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शाक्तवाद, शून्यवाद, स्यादवाद आदि वादों की सहज ध्वनि को अनुभव किया जा सकता है। चारों वेदों, 108 उपनिषदों, 18 पुराणों, ब्राह्मण एवं अरण्यक ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राचीन वैदिक व लौकिक साहित्य में ध्वनित

भारतीय ज्ञान को भक्तिकाल के कवियों ने सरल से सरल भाषा में पाठकों के सम्मुख रखा। भक्ति साहित्य किसी क्षणिक भावावेग एवं इन्द्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, अपितु यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है। इसके साधन लौकिक अवश्य है किन्तु इसका साध्य एक ऐसी लोकोत्तर अनुभूति है जिससे भक्त के चित्त को अनुपम शान्ति और आनन्द की उपलब्धि होती है।

विद्वान समीक्षकों ने भक्ति साहित्य को प्रवृत्यानुसार दो वर्गों में विभक्त किया गया है- ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी। उपासना भेद का आश्रय लेकर प्रायः भक्ति विषयक सगुण और निर्गुण जैसे दो वर्गों की कल्पना की जाती है। सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया है वहाँ निर्गुण भक्ति में ब्रह्मानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति के लिए जहाँ भगवान का उपयुक्त धाम भक्त का हृदय है वहाँ निर्गुण भक्ति के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्व है। निर्गुण भक्त सत्य का शोधक है सचित्र या ऐश्वर्य का आराधक नहीं। मोक्षकामी निर्गुण भक्त संसार को ही सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते हैं वे किसी काल्पनिक परलोक के अभिलाषी नहीं। सगुण-निर्गुण भक्त दोनों ही उपासना भेद से वैष्णव हैं निर्गुण भक्त जहाँ नारायण की उपासना करता है वहाँ सगुण भक्त विष्णु के लीलावतारों की भक्ति। सगुण भक्ति में लीला का महात्म्य है और निर्गुण भक्ति में लय का महत्व है। [1]

सन्त काव्यधारा भारतीय काव्यधारा में ज्ञान परम्परा की अनूठी धरोहर है। इसके दार्शनिक, सांस्कृतिक आधार एकाधिक है। प्रमुखतया उपनिषद, शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी दर्शन से प्रभावित इनका चिन्तन, मनन, वाचन व जीवन दर्शन परिलक्षित होता है। चूँकि उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत, माया, आत्मा, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि को सन्तजनों ने उपमानों, अप्रस्तुत योजना एवं प्रतीकात्मक रुप में ग्रहण कर जन-जन को जागृत करने का कार्य किया। सन्त काव्य में दाम्पत्य प्रतीकों का चित्रण सूफी दर्शन से ही प्रभावित है। कबीर, दादू, नानक, धन्ना,पीपा,मलूक, रैदास, सहजोबाई आदि ने आगम-निगम, पुराण आदि को कोई महत्व नहीं दिया। जाति-पाति, धर्म, पंथ, क्षेत्र, रंग, मजहब, ऊँच- नीच, छुआछूत, आडम्बर, ढोंग, पाखण्ड, जप, छाप, टीका, तिलक से ऊपर मानवता का समर्थन करना इनकी वाणी से सुनाई देता है। कविता करना इनका लक्ष्योद्देश्य नहीं था। ये मूलतः समाज सुधारक पहले थे कवि बाद में। नाम की महत्ता, हठयोग के दर्शन तथा उलटवासी के दर्शन इनके काव्य में होते हैं, जो गूढ भारतीय ज्ञानदर्शन का अनुपम उदाहरण हैं। [2]

समंदर लागी आगि, नदिया जल कोईला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रुषा चढि गई।।

उस परम तत्व को विश्व में सभी धर्मानुयायियों द्वारा विभिन्न भावों में व्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन कवियों ने उसे अपने ही ढंग से चित्रित किया, कबीर का अंदाजा ही निराला है। संसार की उस रहस्यमयी सत्ता के प्रति कितने सुन्दर शब्दों में किया है–

जाके मुख माथा नहीं, नाही रुप कुरुप।
पुहुप वास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप।।
x x x
पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वे गया बिलाई।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई।।
x x x
तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई।। [3]

मानवीय दृष्टिकोण की वैश्विक स्तर पर आज जिस समतामूलक समाज की कल्पना की जाती है उस भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्घाटन ये सन्तजन पहले से ही उद्घोष करते आये हैं जो हिन्दी साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य की अनुपम धरोहर है। सन्तों का व्यक्तित्व वास्तव में संवेदनशीलता से परिपूर्ण या वे समाज के सच्चे प्रहरी थे उनकी अमृतवाणी आज भी प्रासंगिक है और रहेगी। वे युग सृष्टा ही नहीं वरन् युग दृष्टा भी थे।

आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न प्रेमाख्यानकारों में सूफी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले सन्तों की अधिकता है। सूफी सम्प्रदाय में आत्मा सदैव परमात्मा की प्राप्ति के लिए व्याकुल रहती है। सूफी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से हिन्दू मुस्लिम एकता तथा संस्कृति के समन्वय का प्रयास किया।

जायसी के अनुसार–

नवौ खंड नव पौरी, और तहँ बंजर किवार।
चारि बसेरे सौ चढे, संत सो उतरै पार।।

प्रेम के मार्ग से ईश्वर को प्राप्त करने का संदेश देती भक्तिकाल के प्रेमाश्रयी कवियों की वाणी सम्पूर्ण विश्व में प्रेम महत्ता को परिभाषित करती है। प्रेम से सब कुछ सम्भव-प्राप्त है। आज के तनावपूर्ण युद्ध के वातावरण में बारुद की ढेर पर बैठी इस दुनिया को बन्धुत्व का संदेश देती यह रचनाएँ भारतीय मूलदृष्टि प्रदर्शित करती हैं जहाँ सत्य, अहिंसा और प्रेम का राग पग-पग पर गाया जाता है। जायसी का विरह वर्णन बेजोड है।

इसी तरह पुष्टिमार्गीय भक्ति के सम्प्रदाय के संस्थापक श्री बल्लभाचार्य जी का पदानुसरण अष्टछाप के जहाज महात्मा सूरदास द्वारा कृष्णभक्ति के रुप में की गई। भागवत पुराण से प्रेरित राधा-कृष्ण का गुणगान लोकरंजन रुप में करने वाले इस धारा कवियों द्वारा जीवन का दैन्य प्रदर्शन कर उस परमात्मा के साथ एकाकार होने की कामना की गई है। 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीको'।[4]

भ्रमरगीत परम्परा में निर्गुण पर सगुण की विजय कितने सुन्दर शब्दों में की गई है–

सूर सिकत हठि नाव चलावत ये सरिता है सूखी।

वात्सल्य रस सम्राट बृज भाषा के अग्रदूत सूरदास द्वारा पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाने के उपरान्त प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते दिखते हैं। भक्त तो अनुग्रह पर भरोसा करके शान्त बैठ जाता है। इस मार्ग में भगवान के अनुग्रह पर ही सर्वाधिक बल दिया जाता है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करने उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है–

जा पर दीनानाथ ढरै।
सोई कुलीन बडौ सुन्दर, सोई जा पर कृपा करें।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरैं।[5]

सन्त शिरोमणि सूरदास ने प्रेम और विरह के वर्णन में विशुद्ध भारतीय जीवन दर्शन का कलेवर प्रस्तुत करते हुए सगुण मार्ग से कृष्ण को साध्य माना है। उनकी भक्ति पद्धति में जिस माधुर्य भाव को स्थान मिला है वह लीलाओं पर आधारित है, किन्तु वह ऐन्द्रिक नहीं है। भ्रमर गीत में गोपियों की उक्तियाँ ऐन्द्रिय सुख नहीं वरन, हृदय की पवित्रता, निश्छलता, अनन्यता और उदारता का परिचय देती हैं। मध्यकालीन हिन्दू जनता को निराश, उदास, हताश, अवसाद, तनाव और कुण्ठा के दलदल से बाहर निकालकर ईश्वर के सगुण अवतार में आस्थावान बनाना, इसकी बहुत बडी देन है।

'सूर सूर तुलसी शशि' समीक्षकों ने भक्तिकाल की महत्ता को प्रमाणित किया है। तुलसी ने श्रीरामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र में माता-पुत्र, पिता- पुत्र, स्वामी - सेवक, राजा -प्रजा, पति - पत्नी, शत्रु- मित्र, भाई - बहन आदि परिवारिक सामाजिक सम्बन्धों का आदर्श चित्रण कर आदर्श समाज की

प्रतिष्ठापना की है। काव्य, शिल्प, व्याकरण, भेषज, औषधि, वास्तु और योगमाया आदि की परम्परागत भारतीय ज्ञान दृष्टि से ये रचनाएँ विश्वपटल पर हमारा प्रतिनिधित्व करती हैं। ‘ न भूतो न भविष्यति’ को चरितार्थ करते भक्तिकाल के पुरोधा कवियों में अद्वितीय प्रतिभा के दर्शन होते हैं। तुलसी ने महापुरुषों, सज्जनों के लक्षणों को चित्रित करने साथ खलस्तुति भी की है तथा ‘निन्दक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय’ भी कहा है। लोकनायकत्व, समन्वयवाद की भावना, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक लोकाचार, रीति –रिवाज, समरसतापूर्ण दृष्टिकोण, सत्यं, शिवं, सुन्दरं के आदर्श दृष्टिकोण को अपनी रचनाओं में प्रतिपादित करने वाले महाकवि तुलसी ने कल्याणकारी राज्य की अवधारणा हो या प्रजावत्सलता, आदर्श राजनीति, कर-राजस्व संग्रह, शाश्वत व सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना, नारी सम्मान, शील, सदाचार, साधना, नैतिकता, वचनवद्धता, अनुशासन, आज्ञापालन आदि ऐसे मूल्य हैं जो भारतीय ज्ञान परम्परा का परिचय कराने के पर्याप्त उदारण हैं।

सत्य की विजय, अधर्म का नाश, छल-कपट से उलझता न्याय, अन्ततोगत्वा सत्य की स्थापना पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाले तुलसी साहित्य की महत्ता राष्ट्रीय गौरव का विषय हैं। हिन्दी साहित्य की चरम उन्नति का काल भक्ति काव्य है, इसलिए इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा गया। राम– राज्य की परिकल्पना द्वारा धर्म परायणता का संदेश तुलसी ने दिया। खण्डन-मण्डन पद्धति का संतुलन, प्रत्येक चिन्तन पद्धति के सार को समस्त विरोधाभासों के मध्य सुन्दर समन्वय स्थापित करना तुलसी की विराट कल्पना संसार में ही सम्भव था।

तुम तजि हौं कासों कहौं,और को हितु मेरे। [6]

तुलसी की अनेक पंक्तिया, सूक्तियाँ, मुहावरे, कहावतों को आदर्श वाक्यों को अखिल भारतीय स्तर पर आदर्श रुप में सुना जा सकता है- यथा “राम राज्य” “प्राण जाय पर बचन न जाई ” “राम जैसा पुत्र” “मन्थरा बुद्धि” “विदेहराज” “तुम मम प्रिय भरतही सम भाई” “बन्दउ गुरु पद परम परागा” आदि। यह उनकी लेखनी का उदाहरण है कि उन्होंने ज्योतिष, वैयाकरण, तर्क, मीमांसा, सांख्य आदि दर्शनों को अपने साहित्य में स्थान देकर तत्कालीन भारतीय ज्ञान दृष्टि का परिचय विश्व को कराया, जिस पर आज हम गर्व कर रहे हैं। उनका श्रीरामचरितमानस आज जन-जन का कण्ठहार बना हुआ है। जीवन यात्रा के समस्त पड़ावों, अनुभवों, कर्तव्यों-अधिकारों, सुख-दुख, जन्म-मरण, यश-अपयश,धैर्य-अहंकार, विनम्रता–उद्दण्डता, सज्जन-दुर्जन आदि का पग-पग पर गुणगान वर्णान किया है। संगत की महिमा का उदाहरण दृष्टव्य है:

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होई न दृढ अनुरागा ।। [7]

भारतीय मनीषा व साहित्य को जो संकीर्ण दृष्टि से देखते है या फिर किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित है उन्हें कम से कम एक बार तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस का समग्र अध्ययन करना चाहिए। रचनाकार की कल्पना को बारम्बार नमन है जिसके विशाल कथाफलक में भारतीय जीवन दृष्टि को पात्रों, कथाओं, घटनाओं द्वारा उपदेशक-मनोरञ्जक ढंग से इस तरह से प्रस्तुत किया है कि आज यह वैश्विक मंच पर भारतीय जीवन दृष्टि का पर्याय बन गया है। राम के आदर्श चरित्र को चित्रित करने के साथ ही आदि गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त की अनुभूति भी तुलसी कराते हैं।

उपसंहार: निष्कर्षतया कहा जा सकता कि भारतीय ज्ञान परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तों को हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में व्यापक, आकर्षक व सुन्दर ढंग से देखा-समझा जा सकता है। आज के भौतिकवादी घोर बाजारवादी, अति विज्ञापनवादी, आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी दौर में जहाँ विश्वास, प्रेम, मैत्री व सत्यनिष्ठा दिन-प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं वहाँ भक्तिकाल की रचनाओं व रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से इन मौलिक मूल्यों का

परिचय प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान, वैराग्य, कर्तव्य, प्रेम, नैतिकता सहित प्राणिमात्र से स्नेह का संदेश हमें इस काल से प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची:

1. नागेन्द्र डा०, सम्पादक, गुप्त सुरेश चन्द्र सह सम्पादक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स ए-95, सैक्टर 5 नोएडा-201301, भक्तिकाल: पूर्वपीठिका पृ.सं.109
2. दास श्यामसुन्दर डा० सम्पादक, कबीर ग्नन्थावली, साखी, ग्यान विरह को अंग 10/122, वाणी प्रकाशन पृ.सं. 57
3. दास श्यामसुन्दर डा० सम्पादक, कबीर ग्नन्थावली, साखी पद, (राग गौडी) सं.184, पृ.सं.160
4. दास सूर– सूर विनयपत्रिका,187, गीता प्रेस गोरखपुर: पच्चीवाँ पुनर्मुद्रण संवत 2073, पृ.सं.160
5. नागेन्द्र डा०, सम्पादक, गुप्त सुरेश चन्द्र सह सम्पादक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स ए-95, सैक्टर 5 नोएडा-201301, भक्तिकाल: पूर्वपीठिका पृ.सं. 203
6. दास तुलसी, विनयपत्रिका। 273, गीता प्रस गोरखपुर, सतहत्तरवा पुनर्मुद्रण, संवत 2073, पृ.सं.– 334
7. दास तुलसी- दोहावली-132, गीता प्रेस गोरखपुर. अटठावनवाँ पुनर्मुद्रण संवत 2073, पृ.सं.– 40

ई. मेल. drdcpandey3075@gmail.com दूरभाष संख्या : 9411319412
dr.maheshchandrasharmadu@gmail.com दूरभाष संख्या : 7579209984

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 91-92
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा विश्लेषण

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
जी.के. मेमोरियल कालेज ऑफ एजुकेशन चाकघाट रीवा (म.प्र.)

सारांश –
हिन्दी कविता में गज़ल एक लोकप्रिय विद्याा है। यह अरबी साहित्य की प्रसिद्ध काव्य विधा है जो बाद में फारसी, उर्दू, नेपाली और हिन्दी साहित्य में भी बेहद लोकप्रिय हुई। संगीत के क्षेत्र में इस विधा को गाने के लिए ईरानी और भारतीय संगीत के मिश्रण से अलग शैली निर्मित हुई। उर्दू का यह प्रेम काव्य हिन्दी में जनसमस्याओं से जुड़ गया। गज़ल की परंपरा भले खुसरो, कबीर या भारतेन्दु से होते हुए आगे बढ़ी हो, लेकिन गज़ल को विधा के तौर पर स्थापित करने का काम दुष्यंत कुमार ने किया। यह प्रेम, सामाजिक मुददों और व्यकित्गत भावनाओं का सशक्त करने का माध्यम है।
सामान्यत – यह समझा जाता रहा है कि गज़ल उर्दू से हिन्दी में आई किन्तु साहित्यिक अमीर खुसरो की अभिव्यक्तियों के साथ प्रारंभ होता है। लगभग सभी मान्य आलोचकों में अमीर खुसरो को हिन्दी का प्रथम गज़लगों घोषित किया है। अनेकानेक विद्वाव अमरी खुसरों की निम्नांकित गज़ल को ही हिन्दी की पहली गज़ल मानते है।

मुख्य शब्द – गज़ल, लयात्मकता, बगावत, सत्ता, मुक्त–छंद, कविता, मशाल, जिंदगी, नजरअंदाज, नीचलापन, सौंदर्य, आंदोलन।

प्रास्तावना –

हिन्दी साहित्य की विधाओं में कविता का प्रचलन सबसे प्राचीन है। मानव जबसे बोलना शुरू किया है तबसे बुदबुदाहट की आहट जागृत हुई और इसी गुनगुनाहट की आहट से कविता का जन्म हुआ। हिन्दी साहित्य भाषा से अधिक भावों का भावो का संदवेदनाओं का विषय है। भाषा चाहे जैसी भी हो साहित्य सीमाओं के बंधन तोड़कर धरोहर बन जाता है। हिन्दी गज़ल का उद्भव आधुनिक काल से ही समझते है। अमीर खुसरो का उद्भव तलाशते है। तो अमित खुसरो के 150 साल बाद कबीर का नाम आता है। हिन्दी के साथ–साथ गज़ल अन्य भाषाओं में आए। हिन्दी काव्य के रचनाकारों ने इस विदेशी काव्य पौधे को अपनी धरती पर रोपा है तथा भारत को पानी कसे सींचकर अधिक पानीदार और असरदार बनाने में साझेदारी की। वर्तमान गज़ल परिदृश्य में हिन्दी गजल के तीन गज़लकार था –
भारतेन्दु, शमशेर और दुष्यन्त।
भारतेन्दु ने होली पर गज़ल लिखी तो शमशेर ने जिंदगी का फलसफा शेर में बयान किया।
"मै कई बार मिट चुका हूँ वरना इस जिंदगी में इतनी धूप"

दुष्यंत की गज़लों में आम आदमी की संघर्ष गाथा, सपनो को टूटना–जुड़ना, निराशा, संशय, उम्मीदें और दुख की छायाएँ नए सपनों के बनने और टूटने की अनुगूंज शामिल है। दुष्यत के गज़लों की यह बड़ी विशेषता है कि अशआर एक पाठ में समाप्त नहीं होते। या यूं कहे कि दुष्यंत की गज़लों के शेर इतने शक्तिशाली और प्रभाव पैदा करने वाले होते है कि वो कभी समाप्त नही होते। वो चेतना में उतर जाते है। आम आदमी को ने सिर्फ सचेत करते हैं बल्कि उसकी साधारण अवस्था और कमजोर आवाज का अहसास भी कराते है –

1. "यहां दरख्तों के साए में धूप लगती है

चलो, यहां से चले और उम्रभर के लिए''

2. ''जिएं जो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरे तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए''

हिन्दी गज़ल स्वरूप, मिजाज और अभिव्यक्ति के अंदाज के अतिरिक्त, राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक चेता भी दुष्यंत से प्रभावित है।

''दोपहर की धूप मे मेरे बुलाने के लिए
वो तेरा कोठे पे नगें पाव आना याद है''

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी गज़ल किस प्रकार पुराने प्रेम रूपी चोले को छोड़कर रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ जाती है। गज़ल का हर शेर असर पैदा करता ही है इसे पढ़ते हुए दर्शकों को लगने लगता है यह तो उनके दि की ही बात है। मनुष्य की संवेदना को झकझोरने वाली यह विधा गज़ल हिन्दी कविता में बेहद लोकप्रिय है। हिन्दी साहित्य के अद्यतन इतिहास में इसने अपना स्थान बना लिया है। गज़ले अर्थपूर्ण छंदों में अर्थपूर्ण शब्दों के सूक्ष्म प्रयोग के माध्यम से हमारे भीतर गहरी भावनाओं को जगाते है। गज़लो की जिस तरह गाया जाता है उसमे एक मधुर और लयबद्ध पैटर्न होता है जो छंदो की संरचना और प्रवाह के साथ मेल खाता है। हिन्दी गज़ल अक्सर एक गीत से ज्यादा एक प्रेम विहवल हृदय की अभिव्यक्ति होती है। इसी विशेषताओं के कारण हिन्दी कविता में गज़ल अपना स्थान बनाए हुए है। इसका लबों लहजा, अंदाज, प्रस्तुतीकरण मुहावरा और बुनियादी ढ़ाचा इसे सबसे अलग और सबसे पर असरदार बनाती है।

संदर्भ –

1. नचिकेता वर्ष 2014, अष्टछाप पृष्ठ 8, फोनिम पब्लिकेशन दिल्ली 53
2. आरपी शर्मा महर्षि, वर्ष 2005, गज़ल लेखन कला, पृष्ठ 15, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली 92
3. इन्द्रनारायण सिंह, वर्ष 2007, हिन्दी गज़ल शिल्प एवं कला, पृष्ठ 112, रोहतास जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन बिहार
4. डॉ. नरेश, वर्ष 2004, हिन्दी गज़ल दशा और दिशा पृष्ठ 85, वाणी प्रकाशन दिल्ली 2
5. सरदार मुजावर, वर्ष 2007, हिन्दी की छायावादी गज़ल वाणी प्रकाान दिल्ली 2

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 93-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में गिरमिटिया स्त्रियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. सीमा दास
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय

सारांश

प्रवासी देशों में गिरमिटिया स्त्रियों की जो स्थिति थी, उसमें आज काफी हृदय परिवर्तन के साथ-ही-साथ सुधार आया है l यही कारण कि वह हर क्षेत्र में अपने रिश्ते-नातों के साथ आगे बढ़ती नज़र आ रही है l पुरुष के अधिपत्य में जिंदगी बिताने वाली दमित गिरमिट स्त्रियाँ हर क्षेत्र में पुरुष के आधिपत्य को नकारती हुई आगे बढ़ती दिखाई दे रही है l शिक्षा, नौकरी, ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीकीकरण अथवा अन्य क्षेत्रों में भी पुरुष द्वारा बनाये गये नियमों को तोड़ आगे बढ़ने में सार्थक सिद्ध हुई हैं l साथ ही साथ जकड़ी हुई मानसिकता को तोड़कर उनके जड़ बुद्धि के चंगुलों से निकल कर स्वयं को मुक्ति दिलाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए नवीन मार्ग-प्रशस्त किया है l

प्रस्तावना

गिरमिटिया देशों में 19वीं शताब्दी के उतरार्ध में स्त्रियों के स्वरूप को ‘गिरमिटिया स्त्री’ के नाम से जाना जाता l जबकि भोजपुरी बोलियों नवीनीकरण होकर गिरमिट देश आज प्रवासी देश कहलाए और गिरमिट स्त्री का स्वरूप उभरा l ‘गिरमिटिया स्त्री चेतना’ अर्थात् ‘प्रवासी देशों में स्त्री का अपने अस्तित्व व अपनी सत्ता के लिए सचेत होना l’ यही सचेतन की प्रक्रिया से जागरूकता पनपी और ‘प्रवासी गिरमिटिया स्त्री चेतना’ के स्वरूप को विकसित किया l सिमोन द बोउआर का कहना है- “पुरुष और स्त्री की भावनाओं में अंतर की वजह उनकी विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम है l बचपन से ही नारी, पुरुष के अधीन रहती है, पुरुषों को वह एक ऐसे अद्वितीय व्यक्ति के रूप में देखने को अभ्यस्त रहती है जिसकी बराबरी नहीं कर सकती l”1 समय के साथ-साथ प्रवासी स्त्रियों के भीतर आक्रोश का स्वर जाग उठा l द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्त्रियों को बाहर निकलने, काम करने का मौका मिला l वह भी मनुष्य है, अत: उन्हें भी समाज में पुरुषों की तरह समान अधिकार चाहिए l इन विचारधाराओं के कारण स्त्रियों में अपनी मुक्ति की आकांक्षा जागी और वह स्वयं से प्रश्न करने लगी कि आखिर कब तक गोरे सरकारों के अत्याचारों को सहना पड़ेगा? आखिर कब तक अपनी मेहनत की कमाई की प्राप्ति के लिए दूसरों के आगे झुकना पड़ेगा?

स्त्री और पुरुष समाज की दो आँखें हैं l फिर भी, भारतीय समाज हो या गिरमिटिया बनाम प्रवासी समाज ही क्यों न रहा हो परन्तु, स्त्रियों को उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता l मॉरिशस के सुप्रसिद्ध साहित्यकार ‘अभिमन्यु अनत’ ने अपने उपन्यासों में गिरमिटिया स्त्रियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है l इनके साहित्य में गिरमिटिया स्त्रियाँ, गोरे

सरदारों के अधीन समर्पित करती हुई नहीं नजर तो आती हैं I साथ ही अपने आपको बचाने के लिए ब्रिटिश सरकार से लोहा लेने को भी तैयार रहती हैं I जिसका शोधपरक अध्ययन विश्लेषण इस प्रकार से हैं-

प्रवासिनी गिरमिटिया स्त्री अस्तित्व-बोध

स्त्री के 'स्वत्व' विषय का समाज में अस्तित्व बहुत धीरे आया I प्रवासिनी-स्त्रीवादी चेतना ने समानता की लड़ाई के लिए अपने अस्तित्व की मांग करने लगी I इस संदर्भ में सिमोन द बोउआर ने स्पष्ट रूप से लिखा है- "प्रवासी स्त्री को मुक्ति देने का मतलब उसका पुरुष से होने वाले संबंध का छोड़ना नहीं, बल्कि उसे स्वतंत्र अस्तित्व देना है I इसके द्वारा एक-दूसरे को समझकर एक दूसरे के लिए रहने लगेंगे औए एक दूसरे को अपना मान सकेंगेI"2 अत: स्वयं के अस्तित्व को प्रकाश में लाने के लिए चेतना को जागृत करने की आवश्यकता है I इस प्रकार, गिरमिटिया प्रवासिनी स्त्री चेतना का स्वर पुरुष सत्तात्मक समाज को हिलाकर रख दिया I

विद्रोही गिरमिटिया स्त्री

'अभिमन्यु अनत' ने अपने उपन्यासों में अतीत से वर्तमानकालीन 'स्त्री चेतना' को उभारा है I गिरमिटिया मजदूरों का नरकीय जीवन, गोरे सरकार का अत्याचारों को सहने वाली तथा शोषण के विरुद्ध करारा जवाब देने वाली स्त्रियाँ उस समाज में मौजूद थीं I 'लाल पसीना' उपन्यास में पुष्पा की माँ के द्वारा दिया गया करारा जवाब देने के कारण सभी लोग चुप हो जाते हैं I दरअसल, प्रवासियों को गिरमिटिया मजदूर होने के कारण उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता I उन्हें खाने के लिए कीड़े लगे चावल दिया जाता I पुष्पा की माँ का चरित्र स्त्री चेतना को जागृत करने वाला चरित्र है I उसके आक्रोश स्त्री समाज के साथ-साथ पुरुषसत्तात्मक समाज पर भी गहरा असर छोड़ जाता है I कहने का तात्पर्य है कि जब गोरे सरकारों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए पुष्पा की माँ कहती है, "चावल-डाल दूनों में खद-खद पिलवा भरल बा I जोन चीज कुत्ता भी न खाई खोजी ओके कैसे पकावल जाय? के बा तू लोग में जो सकी मालिक के सामने चावल-डाल रखकर पूछे कि यह अनाज आदमी कैसे खाई I"3 पुष्पा की माँ के माध्यम से समाज में गिरमिटिया स्त्री का विद्रोही स्वर देखकर लोग दंग रह जाते हैं I इसका मुख्य कारण यह था कि इससे पहले किसी ने भी खान-पान को लेकर आवाज़ नहीं उठाई थी I

क्रांतिकारी गिरमिटिया स्त्री

'लाल पसीना' उपन्यास में जब खाने को सड़े हुए दाल-चावल दिए जाता, दिन दहाड़े उनके घर की बहु-बेटियों को यानी स्त्रियों को उठा कर ले चले जाते अपना विस्तार गर्म करने के लिए, उसकी इज्ज़त से खिलवाड़ करते, जिसके चलते भारतीय पुरुष अपनी आत्म-रक्षा एवं अपने घर की इज्ज़त बचाने के लिए सब कुछ चुपचाप सह जाते I पुष्पा की माँ का गोरे सरदारों से लोहा लेते हुए कहती है, "तुम लोगन से अगर ना होई त कह द I हम जब मालिक के सामने... तुम लोगन के इह गान सूझत बा I घर में भूंजी नाहीं, देहरी पर नाँच I"4 आशय है कि खाने भर मुट्ठी के दाने नहीं और चले हैं द्वार पर नाँच लगाने I जबकि यह देखा गया कि "पहले कई स्त्रियाँ सामूहिक स्वर में मर्दों की बेवसी स्वीकार चुकी I सभी मर्दों को ऐसा आभास हुआ था कि पहले बार औरतों ने विद्रोह किया है I"5 पुष्पा की माँ का यह विद्रोही स्वर सुनकर सभी दंग रह जाते हैं I

गिरमिट स्त्री चेतना स्वर

'लाल पसीना' उपन्यास में 'लक्ष्मी' का चरित्र गिरमिट स्त्री चेतना स्वर का स्पष्ट उदाहरण है I लक्ष्मी मालिकों के शोषण से तंग आकार अपने पति से बोलती है- "इस तरह से घुट-घुटने अत्याचार सहल से त बेहतर है कि एक बार डट के ओकर मुकाबला कर लिहल जाए I इस मुरदै जैसन जीवन को कब तक जियल जाए ?"6 सच्चाई तो यह है कि

रोज-रोज का यह किस्सा साथ मिलकर करने से हल हो सकता है I लक्ष्मी तीखी स्वर में लाखन (पति) से बोल उठती है- "हम औरत के पास इतना साहस है कि हम सब कोठी को घेर के चिल्ला-चिल्ला के पूछे कि आखिर कब तक? कब तक खेतवन में गाड़ी के गाड़ी बाँस गिरती रही और मजदूरन की पीठ पर टुटत रही? कब तक गन्ने से भरल गाड़ी बैल के बदले आदमी से खिंचवाई जाए?"7 लक्ष्मी के लाख समझाने पर भी उसके पति का बस यही कहना है कि बोले और करे में फर्क बा I दरअसल, पानी में रहकर मगर से बैर करे कौन? सभी को अपनी जान प्यारी थी I

गिरमिटकालीन स्त्री शिक्षा-जागरूकता

'चुन-चुन-चुनाव' की 'स्वस्ति' में स्त्री जागरण के स्वर मिलते हैं I उसकी सखी फांस्वाज ने उसे कर्म क्षेत्र में कूदने को प्रेरित किया I फांस्वाज ने एक पत्र के माध्यम से स्वसित को बताया कि "मेरे अपने देश के राष्ट्रपति ने यह कहकर महिलाओं को छुट्टी दे दी कि औरत को थोडा प्यार, थोडा सा पैसा और थोड़ी सी हमदर्दी चाहिए I जबकि मैं यह कहने लगी हूँ कि मर्द चाहे तो प्यार, पैसे और हमदर्दी को अपने पास रख ले पर हमें हमारी हैसियत दे दें I हमें अपना अख्तियार खुद वसूल करना होगा I "8 स्वतंत्र मॉरिशस में गिरिमितीय स्त्री शिक्षा, अधिकार चेतना, स्त्री स्वातंत्र्य ने प्रवासी-स्त्री जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया है I

शोषण बनाम आत्म-बोध प्रवासिनी

'मुड़िया पहाड़ बोल उठा' में मॉरिशस की मजदूर औरतों के अस्तित्वबोध एवं नारी चेतना का स्वर का चित्रण किया गया है I जिसके चलते वे सभी औरतें मालिकों के विरुद्ध जाकर अपने घर में पुरुषों से संघर्ष कर फैक्टरी में नौकरी करती है I चूँकि, फैक्टरी में नौकरी करने को सामान्यत: औरतों पर खुले आम शोषण होता I नेहा कह उठती है- "जिम्मेदार लोग तो पत्थर ही बने हुए थे, पर साथ ही साथ सरकार से संबंद्ध लोग भी मुड़िया पहाड़ की तरह अंधे और गूंगे बने हुए थे I"9 इस उपन्यास की नायिका **'नेहा'** के माध्यम से 'स्व-चेतना बोध' की ओर प्रेरित करने वाली नारी के स्वरूप को दर्शाया गया है I

धाकड़ व दबंग गिरमिटिया स्त्री

'अपनी अपनी सीमा' उपन्यास में नायिका 'सीमा' के माध्यम से एक ऐसी स्त्री का वर्णन किया गया जिसमें पुरुषसत्तात्मक मानसिकता से विवश होकर घर के बहार काम करने निकल जाती है I दिनोंदिन के अत्याचार, शोषण एवं आतंकी जीवन ने उसे स्वावलंबी डाला I अंत वे मालिकों के आगे अपनी शर्त रखते हुए कहती है, "हमने प्रण कर लिया है कि भूखे मर जाएंगे, पर बांसों की मार खाने को तैयार नहीं होंगे I"9 पात्रों के माध्यम से साहित्यकार ने वहां उनके उपर हो रहे जुल्मों, शोषण, अत्याचारों को दिखाया है I अनत जी के उपन्यासों में दबंग गिरमिटिया स्त्रियाँ स्थिति से समझौता नहीं करते बल्कि इन कठिन स्थितियों से जूझते हैं I साथ ही अपने अधिकारों के लिए, न्याय के लिए लड़ना भी जानती है I

गिरमिटिया स्त्री जीवन की त्रासदी

गिरमिटिया स्त्री जीवन को अनत जी ने बड़े ही मार्मिक ढंग से अपनी रचनाओं में व्यक्त कर पाठकों के समक्ष पेश किया है I इनके उपन्यासों के माध्यम से पाठक इन मजदूरों के दुःख, दर्द, पीड़ा, नरकीय जीवन, अभाव पूर्ण जीवन से परिचित होता है I गिरमिटिया स्त्रियों की पीड़ा को व्यक्त करते हुए 'रामदेव धुरंधर' ने अपने उपन्यास 'पूछो इस माटी से' में स्पष्ट रूप से लिखा है- "अपनी हरेक आवाज़ के बदले हमने अपना एक आदमी गंवाया है, लडकियाँ लुटी गयी I औरतें अपने सतीत्व से हाथ धो बैठी है I"10 इस प्रकार देखा जाए तो, प्रवासी साहित्य का जन्म ही ह्रदय की छटपटाहट, यातनाओं के जंजीर में बंधी मानवीयता को मुक्ति दिलाने हेतु संवेदनात्मक पुकार थी I

निष्कर्ष

इस प्रकार देखा जा सकता है अभिमन्यु अनत की रचनाओं में गिरमिटयाँ प्रवासी स्त्री की व्यथा, उनकी त्रासदी तथा उनके रोम-रोम के कलपने,बिलखने की गूंज है l इसके साथ ही गोरे सरदारों के घिनौने खेल का पर्दाफाश किया है l अपनी रचनाओं के माध्यम से हाड़-माँस के बने व्यक्तियों से परिचित करवाते हैं, जिन्हें ब्रिटिशों ने अपाहिज बना कर रख दिया है l भारतवंशी ज़िंदा होते हुए भी मजबूर है, ज़िंदा लाश बने हुए हैं l उनके पास भावनाएँ हैं पर भय से बोलने का साहस नहीं जुटा पाते l वे कभी हताश होते हैं तो कभी अपने ही जनों के प्रति निर्दयी भी हो जाते हैं l अत: पूंजीपति, जमींदारों के प्रति उनका संघर्ष महज एक विशेष वर्ग का संघर्ष नहीं है और न ही सामाजिक शक्ति का विघटन l यह विद्रोह है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है और जिसमें समाहित है पुरुषों का क्रोध और नारियों की शक्ति l

सन्दर्भ सूची

1. प्रभा. खेतान. 'स्त्री-उपेक्षिता'. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. 1992. पृष्ठ. 102
2. बोउआर. सिमोन द. 'द सेकेण्ड सेक्स'. मूल-द विहेवियर. एच.एम.पादर्शहली. पृष्ठ. 686
3. अनत. अभिमन्यु. 'लाल पसीना'. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2010. पृष्ठ. 62
4. वहीं. पृष्ठ. 239
5. वहीं. पृष्ठ.47.
6. वहीं. पृष्ठ.149
7. वहीं. पृष्ठ.239
8. अभिमन्यु अनत, 'चुन-चुन-चुनाव'. नई दिल्ली : पूर्वोदय प्रकाशन. 1981. पृष्ठ .47-48
9. अभिमन्यु अनत, 'मुड़िया पहाड़ बोल उठा'. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. 1987. पृष्ठ. 120
10. रामदेव धुरंधर, पूछो इस माटी से, नैनीताल : आधारशिला प्रकाशन. 2019. पृष्ठ. 135

संपर्क : 8921233522/7510211834.

ईमेल- seemadas.hindi@gmail.com/seemadascukerala@gmail.com

स्थानीय पता-22. बी.एल.सी मिल्स बाई लेन, महेश, श्रीरामपुर, हुगली, 712202. पश्चिम बंगाल.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 97-100
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त वृद्धों का प्रवासी जीवन

सपना दास
शोधार्थी,
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश : प्रवासी साहित्य जगत में बुजुर्ग की समस्याओं को 'प्रवासी वृद्ध विमर्श' के रूप में चित्रांकित किया गया है I समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है- वृद्ध I परन्तु, व्यक्ति भूमंडलीकरण के इस दौर तथा आधुनिकता की चकाचौंध में नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी को नकार रहे हैं, उनसे बातें करने में कतरा रहे हैं तथा अपने कॉलिग से परिचय कराने से भी हिचकिचा रहे हैं I चूँकि, इसका मुख्य कारण है, उनका आधुनिक रहन-सहन, पहनावा, खान-पान आदि में आए परिवर्तन के चलते पीढ़ीगत द्वंद्वात्मक टकराहट उत्पन्न करती है I परिणामस्वरूप, पुरानी पीढ़ी अपनी नई पीढ़ी से दूर होता जा रहा है I विशेषकर, वृद्ध जब प्रवास में होता है तब उनके समक्ष तमाम सामाजिक,पारिवारिक मतभेद, मनभेद की स्थिति पनपती है I अत: पराया देश, पराया भाषा-बोली के बीच कुछ भी अपना नहीं, वहाँ दुःख तब होता है जब अपने ही घर में वृद्धों के साथ परायों की तरह व्यवहार किया जाता है I इस प्रकार, पीढ़ीगत मानसिक उत्पीड़न की स्थिति को बेबाकी से तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में देख सकते हैं I वस्तुत: प्रवासी हिंदी साहित्य जगत में तेजेन्द्र शर्मा जी अतुल्यनीय प्रवासी साहित्यकार के रूप में उभर कर आए हैं I बहुमुखी प्रतिभा के धनी तेजेन्द्र जी ने प्रवासी साहित्य के अंतर्गत वृद्धों के प्रवासी जीवन से संबंधित समस्त समस्याओं को बखूबी से अपने साहित्य में उकेरा है I

बीज शब्द : प्रवासी, प्रवासी जीवन, प्रवासी वृद्ध जीवन, पीढ़ीगत मानसिक टकराहट, वृद्ध विमर्श, विकेंद्रीकरण, नेस्तालोजिया, उदंड संस्कृति, संस्कृति दोहन, आधुनिक चकाचौंध, भूमंडलीकरण, प्रवासीय वृद्धावस्था तथा ओल्ड एज होम आदि I

मूल आलेख :

'प्रवासी वृद्ध विमर्श' मूलत: अंग्रेजी के 'डायस्पोरा ओल्ड एज डिस्कोर्स' का हिंदी रूपांतरण है I जबकि 'प्रवासी' का अर्थ है- अलग वास करना तथा विमर्श का अर्थ है- तर्क, बहसबाजी, सलाह, परामर्श, कूट, आलोचना, चिंतन-मनन करना, सोच-विचार करना I जबकि प्रवासी साहित्य के अंतर्गत इन समसामयिक समस्याओं के जड़ की जाँच-पड़ताल कर मूल तथ्यों का गहराई से पता लगाना ही प्रवासी साहित्यिक शोध का कार्य है I अर्थात् 'प्रवासी वृद्ध विमर्श' का अर्थ है, वृद्धों की दशा-दिशा, स्थितियों का चिंतन-मनन कर उसका उचित समाधान प्रस्तुत करना I जीवन का परम-अटल सत्य है, वृद्धावस्था I वृद्ध अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपने बच्चों के बीच शांतिपूर्वक काटना

चाहते हैं, लेकिन भागमभाग भरे जिंदगी में लोगों के पास इतना समय ही नहीं कि अपने बुजुर्ग माता-पिता के लिए समय निकाले, उनके पास बैठकर दो-चार बातें कर उनके मन को टटोलें l ऐसी स्थिति में प्रवासी वृद्ध जीवन अति प्रासंगिक जान पड़ता है l सिमोन द बोउआर ने लिखा है, "वृद्धाश्रम के जीवन को महिलाएँ अधिक सफलता से अपना लेती हैं l महिलाएँ आपस में हँस-बोल लेती है और साफ़-सफाई से लेकर खाना-पकाने तक के कामों में अपनी दिनचर्या बिता देती हैं, जबकि पुरुषों के लिए ऐसे कोई कार्य नहीं होते हैं l"1 प्राचीनकाल में संतान प्राप्ति, जनेऊ धारण, मुंडन आदि लोक संस्कार-रीती-रिवाज पे आशीर्वाद प्राप्ति के लिए ऋषि-मुनियों के सानिध्य में रहकर आदर, समान, शास्त्र की विधा की प्राप्ति करते l उदाहरणार्थ यजुर्वेद में लिखा है,

यदापि पोश मातरम् पुत्र: प्रभुदित ध्यान् l

इतदगे अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ ममां ll"2

आशय यह है कि एक समय था जहाँ परिवार का मुखिया पिता व घर के बुजुर्ग हुआ करते थे, लेकिन आज लोग अपनी मनमानी पे उतर आए हैं जिसके चलते परिवार में विखंडन, विघटन की स्थिति पनप रही है l उषा राजे सक्सेना का कहना है, "यहाँ संसार एक घट है l यहाँ प्रतिफल कुछ ना कुछ घटता ही रहता है l यह घटनाएँ हमारे जीवन को प्रभावित करती है l एक कथाकार की संवेदनाएं समय की धड़कन को अपने में समा लेती हैं l"3 तात्पर्य यह है कि वृद्ध की मनोदशाओं, संताप, संघर्ष, स्वप्नों, समृतियों, टूटन, सिकुड़न, जुझारूपन तथा हर्षोत्साह को लेकर आता है l यहाँ तक कि तीन-तीन पीढ़ीयों का संवाद, वार्तालाप एक अनूठी शैली के माध्यम से प्रवासी हिंदी साहित्य में उभरकर आता है, जिसे निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर देख सकते हैं:-

इच्छा मृत्यु की गुहार

'मुझे मार डाल बेटा' नामक कहानी में बुजुर्ग बाउजी को पक्षाघात से घिर जाता है l हमेशा बनठनकर रहने वाला बाउजी अपने आपको अहसाय, असहज महूसस करने लगता है l बेटे के शब्दों में, "जिस-दिन से पक्षाघात हुआ, उस रात मरे नहीं, किन्तु उन्होंने जीना बंद कर दिया था l अब वे केवल सांस लेता हुआ, व्हील चेयर से चिपका आधा-अधूरा सा शरीर मात्र रह गए थे l उनके भीतर कुछ मर गया था l जैसे उनके भीतर की अग्नि बुझ चुकी थी l"4 दिनोंदिन तील-तील कर मरता जा रहा था l इसलिए बृद्ध अपने बेटे से कहता है, "अब मैं बचने वाला नहीं हूँ, प्लीज कील मी माई सं l"5. बेटा अपने पिता से मुक्ति हेतु मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करता है "किसी भी तरह से बाउजी का अंत हो जाए l"6 वास्तव में, मृत्यु जीवन का वास्तविक सत्य है, जिसे नकारा नहीं जा सकता l पाश्चात्य दार्शनिक विशेषज्ञ के मतानुसार, "हम बुढापे को केवल दूसरों से जुड़ी एक चीज मानते हैं, क्योंकि बुजुर्ग इसी विशिष्टता से जुड़े होते हैं l इसलिए, बुजुर्गों को समाज से सामान्य नागरिकों, जैसे युवा, विषमलैंगिक और स्वस्थ शरीर वाले पुरुषों से बिल्कुल अलग माना जाता है l"7 कहने का तात्पर्य है कि यह एक आत्म-प्रवंचना है, लेकिन वृद्धों के साथ अपनी पहचान बनाने की इच्छा की कमी के कारण वृद्धों में उत्पीड़न की स्थिति पनपी है l

यमराज से बातचीत

'रेत का घरौंदा' में तेजेन्द्र जी ने प्रवासी वृद्ध जीवन की भयावह आकुलता को फैंटेसी, प्रतिबिंब, परिकल्पित करते हुए यम के संवाद के साथ जोड़कर दर्शाया है l इनकी रचनाएँ सारांश-सार तक सीमित नहीं है बल्कि उसमें सम्पूर्ण साहित्य का समावेश है l "अपराध बोध का प्रेत, रेत का घरौंदा, ऐसी कहानियाँ हैं, जो कि सीधे मृत्यु से जुड़ी हुई है l"8 जीवन को 'फ़ास्ट फॉरवर्ड' करके आगे नहीं बढ़ सकते l अगर, मनुष्य अपने जीवन का सही अर्थ समझ ले तो उसे जीवन-जीने में अधिक परेशानी नहीं होगी और वह जिंदगी जीना सीख लेगा l

प्रवासी वृद्ध मन:स्थिति

'खिड़की' कहानी में नौकरी कर रहे वृद्ध के एकाकी जीवन की व्यथा है l ब्रिटेन में रेलवे की नौकरी करते हुए दिनचर्या से उब जाता है, घुटन महसूस करने लगता है... "कैसी, है वह भी जिंदगी में अकेली है l अपने बेटे को खोजती वहाँ पहुँचती है l इस तरह वह सभी अकेले एक सी मानसिकता के साथ..मित्र हैं l तप अपनी जिंदगी जीने की एक नया मुकाम तैयार करते हैं और एक दिन 'कैसी' से भी वहीं नायक कहता है कि तुम अपने लिए एक बॉय फ्रेंड ढूंढ लो, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है?"9 यह कहानी नई सोच तथा वृद्धों को नए तरीके से जीने के लिए प्रेरित करता है l यहाँ प्रवासी वृद्धों की मन:स्थितियों को मार्मिकता और संवेदनात्मकता के साथ जोड़कर चित्रित किया है l

कुढ़न जीवन से त्रस्त

'हाथ से फिसलती जमीन' में नरेन और जैकी के रिश्ते में रंगभेद के कारण परिवार-विच्छेदन की स्थिति उत्पन्न होती है l नरेन अकेलेपन का शिकार हो जाता है l जिंदगी से उसे कुढ़न मचने लगता है l हमेशा वह स्वयं कमाता l मगर, उसका हिसाब जैकी ही रखती l बच्चे भी माँ से ही पैसे मांगते l बच्चे कब-कहाँ जाएंगे सब जैकी ही तय करती l उसके हिस्से में बस कुढ़न ही था l "वह अकेले बैठकर कुढ़ता रहता l वैसे जब-जब बच्चे तरक्की करते दिखाई देते तो मन खुश भी हो लेता l मगर वह जानता था कि इन बच्चों की परवरिश में उनका अपना कोई हाथ नहीं है l बस एक बैंक है जिसमें इकतरफा कार्यवाही होती है यानी कि वहाँ से केवल पैसा निकाला जाता है कभी जमा नहीं करवाया जाता l ना तो धन ही जमा होता है और ना भावनाएँ l"10 अत: यहाँ परिवार का मुखिया का अस्तित्व को मिटा दिया गया है l

होम-लेस जिंदगी

'होम-लेस' नामक कहानी तेजेन्द्र जी की प्रवासी वृद्ध जीवन पर आधारित मार्मिक कहानी है l इसमें लंदन में निवास करने वाले बेघर लोगों की अकुलाहट, छटपटाहट एवं उनके जीवन के संघर्षों का वर्णन है l 'बेघर' लोग भिखारी नहीं होते बल्कि परिवार में रहना नहीं चाहते l वे परिवार से दूर हटकर अपना अलग निर्वाह करना चाहते हैं ताकि मान-सम्मान बना रहे और क्लेश न हो l ऐसे लोगों को 'होम लेस' की श्रेणी में रखा जाता है, जो अपने परिवार से हटकर एक अलग आशियाना बनाते हैं l जहाँ वे दोपहर का भोजन कर सकते हैं, अपने हम उम्र के साथ समय बिता सकते हैं तथा चैरिटी में दान भी दे सकते हैं l बाजी और सिकंदर के जीवन पर आधारित है l बाजी ब्रिटेन में रह रहे होमलेस लोगों के लिए दोपहर का भोजन कराना चाहते हैं, पर सिकंदर चैरिटी से चंदा इक्कठा कर अपने देशवाशियों के लिए मदद करने के लिए कहता है l तब बाजी उसे समझाती हुई कहती है, "सुनो सिकंदर! पहली बात तो यह समझ लो कि अब हम ब्रिटेन में रहते है l यही हमारा मुल्क है l जिस मुल्क में रहकर हम कमा-खा रहे हैं, हमें अपने-आप को उस मुल्क के साथ जोड़ना होगा l गरीब यहाँ भी है, बेघर यहाँ भी हैं l बेघर को अंग्रेजी में होम-लेस कह देने से वे लोग अमीर नहीं हो जाते..यहाँ फिंचलें सेंटर से खाना आता है, उनकों खाना सरकार मुहैया कराती है...हम इन्हीं बेघर लोगों को खाना खिलाकर सवाब कमा सकते हैं l"11 अर्थात् यहाँ तेजेन्द्र जी ने लंदन में भी धर्म के भरम में जी रहे लोगों को बाजी नामक पात्र के माध्यम से रु-ब-रु कराया है l

बेहतरीन जीवन बनाम बोझ

'कब्र का मुनाफा' में लेखक ने वृद्ध जीवन-यापन की महत्वाकांक्षी भावनाओं को उकेरा है l वह मरने के बाद भी कब्र के लिए अपनी जगह पहले से ही तय कर लेना चाहता है l वृद्ध अपनी पत्नी से कहता है, "तू इसमें दखल मत दो, मैं इंतज़ाम कर रहा हूँ कि हम दोनों मरने के बाद हमारे बच्चों पर दफनाने का कोई बोझ ना पड़े l सब काम बहर-बाहर से ही हो जाए l"12 यानी प्रवासी वृद्ध दाम्पत्य अपने बेस्ट जीवन मुहैय्या करने हेतु दो ग़ज ज़मीन भी मृत्यु से पूर्व तय कर लेता है ताकि किसी पर बोझ न रहे और चैन से मर सके l

निष्कर्ष

परिवार की संकल्पना हेतु भारतीय संस्कृति को सर्वोपरी माना गया है I लेकिन समय बदला और परिस्थितियाँ बदली जिसके चलते नई पीढ़ी बाह्य जगत की ओर लालायित होने लगे, परिणाम यह हुआ कि मानवीय मूल्य की क्षति हुई और नैतिक मूल्य जर्जर होकर गिरने लगी I साथ ही व्यक्ति अपनी परम्परागत सांस्कृतिक नीतियों को पश्चमीकारण की भेंट चढ़ा दिए I

संदर्भ सूची

1. बउआर. सिमोन द. 'द कमिंग ऑफ़ ऐज'. ब्रिटेन : ला विएइल्लेस्से. 1970. पृष्ठ. 89.
2. ानगेकर(सं). '21वीं शती का हिंदी साहित्य:नव विमर्श'. वाराणसी : एबीएस पब्लिकेशन. 2018. पृष्ठ. 250.
3. सक्सेना. उषा राजे. डॉ.खान.एम फिरोज(सं). 'वृद्ध जीवन की कहानियाँ. भारतीय और प्रवासी लेखक'. खंड. 2. कानपुर: अनुसंधान प्रकाशन. 2021. पृष्ठ. 36.
4. शर्मा. तेजेन्द्र. 'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'मुझे मार डाल बेटा'. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2010. पृष्ठ. 71.
5. वहीं. पृष्ठ संख्या. 72.
6. वहीं. पृष्ठ संख्या. 76.
7. पेटर्सन. टोवे. 'लिंग और वृद्धावस्था'. यूनाईटेड स्टेट : रोव्मन एंड लिटिलफिल्ड. 2002. पृष्ठ. 132.
8. शर्मा. तेजेन्द्र. डॉ. सुमन सिंह से बातचीत. 2017. पृष्ठ.9.
9. शर्मा. तेजेन्द्र. खिड़की. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2010. पृष्ठ. 32.
10. शर्मा. तेजेन्द्र. 'हाथ से फिसलती जमीन'. वर्मा जय(सं).'ब्रिटेन की प्रतिनिधि हिंदी कहानियाँ में संकलित. मुंबई : प्रलेक प्रकाशन. 2021. पृष्ठ.26.
11. शर्मा. तेजेन्द्र. 'होम-लेस' नई दिल्ली : शिवना प्रकाशन. 2024. पृष्ठ. 21.
12. शर्मा. तेजेन्द्र. 'कब्र का मुनाफा'. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. 2010. पृष्ठ संख्या. 32.

संपर्क सूत्र : 7044355873

ईमेल : sapna070295@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 101-106
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिमाचल प्रदेश की हिन्दी कविता में अभिव्यक्त लोक संस्कृति

अक्षय कुमार
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश धर्मशाला 176215

साहित्य एवं लोक संस्कृति किसी भी देश, जाति तथा सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्व का मूल है, जिसका मुख्य ध्येय लोक कल्याण है। लोक संस्कृति एवं साहित्य में मानव-जीवन एवं समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य के ह्रास एवं विकास की समस्त अवस्थाओं एवं सम्भावनाओं का ज्ञान होता है। लोक संस्कृति परिवर्तनशील जीवन, समाज एवं प्रकृति और तदनुरूप सृजित साहित्य की ऊर्जाशक्ति का जीवन्त स्रोत है। रचनाकार लोक-जीवन से जुड़कर ही समाज-सापेक्ष साहित्य का प्रणयन कर सकता है।

कविता में लोक संस्कृति आम जनता की पक्षधर होकर विकसित होती है। यह विकास लोक-जीवन से लोक संस्कृति, लोक संस्कृति से लोक-कल्याण एवं लोक-जागरण की निश्चित दिशा की ओर अग्रसर होता है। लोक शब्द जनता, परिवेश और जनसाधारण की मानसिकता का परिचायक है। किसी भी समाज या देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ लोक के अन्तर्गत, लोक से प्रभावित एवं लोक को प्रभावित करती हैं।

हिमाचल प्रदेश में लिखित हिन्दी कविता के अध्ययन से ज्ञात होना अपेक्षित है कि यहाँ कविता का प्रस्थान-बिन्दु भक्ति, नीति एवं राजप्रशस्तिपरक काव्य है। इस काव्यधारा में नाथ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध कवि चरपटनाथ के अतिरिक्त अनेक ब्र जभाषी कवियों ने यहाँ काव्य-प्रणयन किया है। यद्यपि व्रजभाषा में काव्य-रचना उस समय हुई, जब हिमाचल का प्रदेश के रूप में कोई अस्तित्व नहीं था, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से अस्तित्व में आने के उपरान्त यह व्रजभाषी प्रदेश से सम्बन्धित रहे हैं। हिमाचल राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र प्रदेश सन् 1971 ई. में अस्तित्व में आया। इसी समय यहाँ आधुनिक कविता का प्रारम्भ होता है, जिसमें हरिराम जस्टा की कविता-पुस्तक 'गीत माधुरी' और ललित भारद्वाज की कविता-पुस्तक 'उन्मुक्त स्वर' से इस प्रदेश में कविता-लेखन की शुरुआत मानी जाती है। हिमाचल प्रदेश की ये रचनाएँ सन् 1970 के आस-पास प्रकाशित हुई। इनमें छायावादी सौंदर्य एवं शृंगार तथा राष्ट्रीय काव्यधारा से प्रभावित कवि इस के रूप में लेखन का देशभक्तिपरक कविताएँ मिलती हैं, लेकिन साठोत्तरी एवं समकालीन हिन्दी कविता की मूल संवेदना का आरम्भ इनसे नहीं माना जा सकता है। हिमाचल की हिन्दी-कविता का विकास सन् 1970 के पश्चात् होता है। इस समय यहाँ अधिकतर कवि अकविता की तर्ज पर या वैयक्तिक कल्पना लोक में खोकर रोमैंटिक कविताएँ लिखते रहे थे। इन कविताओं में समाज निरपेक्षता, वर्तमान विरोध, अतीत का आलाप, निराशावाद, अश्लीलता, कुण्ठा और जटिल भाषा का प्रयोग किया गया है।

इस बीच हिमाचल में ऐसे कवि भी हुए हैं, जिन्होंने समकालीन हिन्दी-कविता की मुख्य धारा के साथ जुड़कर लोक-जीवन की समग्र जटिलताओं, संघर्षों एवं समस्याओं को जीवन्त अभिव्यक्ति देते हुए लोकोन्मुखी

कविताएँ लिखीं। इस लोकवादी कविता धारा के कवियों ने जन-जीवन से जुड़कर कविता में लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति की है। इससे हिमाचल की हिन्दी-कविता में युगानुरूप लोक-कल्याणकारी, परिवर्तनशील प्रेरक ऊर्जाशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है। हिमाचल का कवि अपने लोक से इतना अधिक जुड़ा हुआ है उसकी कविता में लोक संस्कृति के छींटे स्वत: ही पड़ गए हैं। हिमाचल की समकालीन कविता में प्रो० वरयाम सिंह, ओम भारद्वाज, अजेय, सुरेश सेन निशांत, आत्मारंजन, जैसे कवियों के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं जिनकी कविताओं में लोक संस्कृति का पुट प्रचुर मात्रा में मिल जाता है।

चूंकि 80 के दशक से अब तक हिमाचल की हिन्दी कविता के क्षेत्र में अनेक उतार चढ़ाव देखने को मिलते हैं। कहीं कवि स्त्री चिंतन से प्रेरित होकर कविता लिखता है तो कहीं राजनीतिक हथकंडों से हताश होकर कविता लिखी जा रही हैं। हिमाचल की हिन्दी कविता का यह एक ऐसा दौर रहा जिसमें उत्तर आधुनिकता अथवा भूमंडलीयकरण के प्रभाव से जहाँ अत्यधिक तेज़ी से हुए विकास के तो बिंब नज़र आ ही रहे हैं परन्तु इसी के मध्य नज़र मनुष्य - मनुष्य के बीच पड़ रहे भेद से भी कवि त्रस्त हो रहा है और उसे भी अपनी लेखनी का हिस्सा बना रहा है। समाज का ऐसा कोई भी पहलू नहीं होगा हिमाचल के हिन्दी कवि का हृदय अपनी ओर आकृष्ट न करता हो। इन सब पहलुओं के मध्य एक ऐसा बिंदु है हिमाचल की हिन्दी कविता में जो उसे संपूर्ण भारत ही नहीं बल्कि विश्व की कविता के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करता है।

वरयाम सिंह के कविता संग्रह 'हिमाचल समाचार और अन्य कविताएं' के भाग दो में लगभग उदू गरडाये,बाहू की जोगणियां, पौष महीने के देवता, कुल्लू की नाटी, तून गांव की औरतें, लामण आदि लगभग बीस कविताएं ऐसी हैं जो यह आभास दिलाती हैं कि कवि अपने क्षेत्र के लोकसमाज, लोकजीवन एवं देव परम्परा का कितना सजग प्रहरी है।

वहीं आत्मारंजन की 'देव दोष', 'बोलो ज़ुल्फिया रे' जैसी कविताएं भी लोक समाज के तिक्त मधुर अनुभवों से पाठक को रूबरू कराती नजर आती हैं। 'इस वृक्ष के पास', 'बोझा उठाए पहाड़ से उतरती स्त्री', 'उपले' जैसी कविताएं लिखकर सुरेश सेन निशांत भी लोकजीवन को कविता के माध्यम से प्रतिबिंबित कर ही देते हैं। भेड़, बर्फ की बिजलियाँ में तुलसीरमण भी लोक संस्कृति को इंगित करते दिखाई देते हैं।

जहां आज के समय में खान पान खाने और बनाने के अति आधुनिक उपकरण प्रयोग में लाए जा रहे हैं वहीं विजय विशाल की स्मृतियों में घराट से पीसे हुए आटे और चूल्हे पर पकी हुई रोटी का स्वाद कांसे की थाली में आज भी परोसा जाता है। उनकी यह कविता 'असल स्वाद' यही कहती है।

....

"असल स्वाद तो
आज भी बसता है
खेत की सब्जी
घराट के आटे
और चूल्हे पर पकती
रोटी में ही।

हिमाचल जैसे पहाड़ी क्षेत्र में अतिथि सत्कार के लिए हुक्का पीने की परम्परा हाल ही तक चलती रही जो पिछली लगभग एक दो पीढ़ियों के बाद से लुप्तप्राय सी नज़र आ रही है। लोकजीवन में प्रचलित इस अनूठी मेहमान नवाजी के विषय में विजय विशाल की कविता 'हुक्के का पलायन' में लिखते हैं :

"पहाड़ों में अक्सर
मेहमान आगमन पर

बिछौने के साथ
आता रहा है
लोटा भर पानी
और सुलगता हुक्का
बरामदे की छोर पर।
हुक्के का वर्णन :
...
गांव में उपेक्षित हुक्का
किसी बेरोजगार युवक की तरह
महानगर को पलायन कर गया
जाकर आबाद हुआ हुक्काबार में।"

हस्तकला (ऊन से धागा बनाने की परम्परा)/ लोकगीतों का वर्णन :

ओम भारद्वाज की कविता फटा हुआ कोट याद दिलाता है कि बर्फ़ से ढके इस हिमाचल में ऊनी वस्त्र पहनना हमारी आवश्यकता भी रही है साथ ही हमारी समृद्ध लोक संस्कृति की पहचान भी रही है। लेकिन यह कोई बाज़ार से ख़रीद कर पहनी जाने वाली वस्तु नहीं है बल्कि हमारे बुजुर्गों द्वारा तकली से ऊन कातकर बनाया गया धागा है जिसे बुनकर ने खुद अपनी खड्डी पर पिरोया और उसी के बने वस्त्र पहनें। इस संदर्भ में यह कहना कतई गलत न होगा कि जिस आत्मनिर्भरता की बात आज सारा देश चीख चीख कर कह रहा है, हमारा यह पहाड़ी प्रदेश तो पहले से ही आत्मनिर्भर रहा है।

"कंपकंपाती घाटी में
मुझे याद आता है
फटा हुआ कोट
जिसकी पसलियों के धागे
झूरी –लामण
अपनी अपनी टेर में
झूल रहे होते।

पहाड़ी श्रमशील स्त्री का वर्णन/ पारंपरिक वेशभूषा एवं कृषि उपकरण :

हिमाचल की ग्रामीण महिला इतनी सशक्त और श्रमसील है कि वह अपनी कमर को गाची से कसकर बांधती है और पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बोझा भी ढोती है। ओम भारद्वाज इस संदर्भ में 'पहाड़ पर औरत' कविता रच देते हैं।

"वह जा रही है
पीठ पर भार लादे
पहाड़ी औरत
उसकी कमर से बंधा रहता है
हमेशा एक पहाड़
गाची* की सिलवटों से झांकता
दराती की धार से बचता
दबा रहता है

गोबर के किल्टे के नीचे
सोचता हुआ।"

लोकज्ञान/ भोजपत्रों के माध्यम से तिथियों, पहर, घड़ी आदि का ज्ञान :

लोकसमाज में पले कवि को सही से मालूम है कि चांद के घटने बढ़ने का हो या समय की गणना की बात हो, ये सभी प्रकार का ज्ञान भोजपत्रों में ही संग्रहित है जिसका ज़िक्र कवि अजेय 'मां, हर्पीज और आदिम चांदनी' में स्पष्ट रूप में करते हैं।

"चांद के घटने–बढ़ने का हिसाब
तमाम कलाओं का बारीकियां
भोज पत्रों में दर्ज़ करते हैं वे सनकी लोग
पल, घड़ी, पहर और तिथियां
उन्होंने इन ब्यौरों के मोटे भूरे ग्रंथ बना रक्खें हैं"...अजेय, इन सपनों को कौन गाएगा (मां, हर्पीज और आदिम चांदनी), पृष्ठ -30

पहाड़ी वेशभूषा/ पहनावे का वर्णन :

'मां, हर्पीज और आदिम चांदनी' में लाहौल घाटी से संबंध रखने वाले कवि अजेय भी अपनी मां को ऊनी शॉल और जुराबें देते हुए नज़र आते हैं।

"सिहरे– सहमे से शब्द –
बेटा जिस्म ठंडा रहा है
यह ऊनी शाल ओढ़ा देना
जुराबों का यह जोड़ा भी......
और तुम यह सोचने क्या रहते हो यहां लेटे –लेटे
कुछ करते क्यों नहीं बाहर जाकर..."...अजेय, इन सपनों को कौन गाएगा (मां, हर्पीज और आदिम चांदनी), पृष्ठ -32

आत्मारंजन, जीने के लिए ज़मीन, पृष्ठ -

कच्चे मिट्टी के घरों की विशेषता का चित्रण :

पहाड़ों का जीवन मिट्टी में ही अन्न उगाते है, मिट्टी में ही पलता है, मिट्टी से ही खेलता है और फिर मिट्टी हो जाता है तो यह स्वाभाविक है कि यहां की कविताओं में उस जीवन का ज़िक्र अवश्य ही होगा जो उस कवि ने स्वयं जिया होगा। कवि आत्मारंजन अपनी कविता 'तासीर' में एक ओर मिट्टी के बने घरों का वर्णन करते हुए लिखते हैं:

"मसलन पूछो कभी
कच्चे मिट्टी घरों से
कड़कती सर्दियों में जो होते गर्म
झुलसाती गर्मियां आते ही फिर वे
क्यों और कैसे हो जाते हैं
ठंडक भरी राहत में तब्दील"...आत्मारंजन, जीने के लिए ज़मीन(तासीर), पृष्ठ -11

हिमाचल के जंगलों में पाई जाने वाली औषधीय गुणों से युक्त गुच्छी* जो स्वास्थ्यवर्धक तो है ही साथ ही स्वाद से भी भरपूर है। इसी गुच्छी को 'पिता का लोईया' कविता का वर्ण्य विषय डॉक्टर सत्यनारायण स्नेही ने बनाया है –

"जिन्हें नहीं मिलता
भर पेट अन्न

वे पोटली में बांधकर सूखी रोटी
सुबह से शाम
ढूंढते हैं गुच्छी

संभवत: हिमाचल का कविता संसार भी इस बात से वाकिफ है कि अपनी संस्कृति को बचाए रखना कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी संदर्भ में ओम भारद्वाज अपनी कविता 'संस्कृति' में अपनी लोक संस्कृति को बचाने के लिए सचेत करते हुए लिखते हैं –

विलुप्त होती लोक संस्कृति के प्रति चिन्ता :

"देख रहे हो तुम
वह जो नंगी भाग रही है
कुछ तुमने फाड़े हैं कपड़े
कुछ तुमने उतारा है लिबास
उसे रहने के लिए चाहिए जगह
कौन देगा?
मैं और तुम!

डूबते सूरज के साथ
ओझल होने लगेगी अंधेरे में
उसका बचा रहना है ज़रूरी
ज़रूरी है हवा पानी
और इसका खो जाना
पहचान खोना है
खुली है अभी भी
शताब्दी की आंखें
भागने मत दो
अन्यथा राख कर देगी
पश्चाताप की आग।"

हिमाचल के समकालीन हिन्दी कवियों ने अपनी कविताओं में लोक संस्कृति के हर पहलू को अपनी कविताओं में उभारा ही है साथ ही बहुत स्थानों पर लोकभाषा के शब्द, लोकोक्तियों और लोक प्रतीकों का भी प्रयोग स्थान स्थान पर देखने को मिलता है। इन्होंने अपनी एक एक कविता में लोक की कई कई शाखाओं एक साथ समेट कर रख दिया है जिससे कभी कभी यह पहचान करने में कठिनाई का अनुभव होता है कि कौन से पहलू को अधिक उजागर किया है और कौन से को कम...

अत: यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण ना होगा कि किसी भी कवि हृदय के लिए साहित्य के शिखर को स्पर्श करने के लिए ज़मीन की गहराई का पहले मापा जाना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ :

- अजेय. (2005). *इन सपनों को कौन गाएगा*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- भारद्वाज, ओ. (1980). *पहाड़ पर औरत*. हिमाचल साहित्य परिषद।

- साहिल, मोहन. (2003). *शरद विजेता*. हिमाचल काव्य संग्रह।
- शर्मा, नवनीत. (1995). *वे जो बज रहे हैं*. धर्मशाला: लोक साहित्य प्रकाशन।
- स्नेही, सत्यनारायण. (2002). *बप्पा का लोईया*. शिमला: हिमाचल ग्रंथ अकादमी।
- विशाल, विजय. (2000). *असल स्वाद* एवं *चुटके का पलायन*. मंडी: हिमाचल साहित्य केंद्र।

7807248159

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 107-111
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

2024 के संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव व उसके चुनावी मुद्दें

प्रियंका चौहान
नलिया बास, गोपलपुरा रोड, सुजानगढ़, जिला-चूरू (राजस्थान) 331507

सारांश :–

विश्व परिदृश्य में सर्व प्रथम लिखित संविधान वाला देश अमेरिका हैं, जहाँ पर लोकतांत्रिक प्रकिया को अपनाया गया है और इसी लोकतंत्र में विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली कार्यपालिका की निर्वाचन प्रकिया सम्पन्न होती है।

प्रो ऑग के अनुसार " अमेरिका का राष्ट्रपति संसार का सबसे महान शासक हो गया "।

अभी हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति की चुनावी प्रकिया में डेमोक्रेटिक पार्टी व रिपब्लिक पार्टी के उम्मीदवारों ने अपना भाग्य आजमाया । डेमोक्रेटिक दल से कमला हैरिस व रिपब्लिक दल से डॉनाल्ड ट्रंप ने चुनाव लड़ा ।

डेमोक्रेटिक उम्मीदवार कमला हैरिस

उपराष्ट्रपति और डेमोक्रेटिक उम्मीदवार, जिन्होंने अपनी नीतियों और अनुभव के आधार पर चुनाव लड़ा ।

कमला हैरिस की ताकत

1 स्वास्थ्य सेवाओं, सामाजिक न्याय और वर्तमान सरकार की नीतियाँ ।
2 भारतवंशी होने के कारण सहानुभूति, परम्परागत वोट ।
3 अमेरिकी समाज में विविधता का प्रतीक ।

रिपब्लिक उम्मीदवार डॉनाल्ड ट्रंप

पूर्व राष्ट्रपति और रिपब्लिक उम्मीदवार जिन्होंने अपनी सम्पति और व्यवसायिक अनुभव के आधार पर चुनाव लड़ा ।

डॉनाल्ट ट्रम्प की ताकत

1 अमेरिका फर्स्ट की नीति से राष्ट्रपति छवि ।

2 नरेन्द्र मोदी और ट्रम्प की मित्रता का प्रभाव ।

3 आर्थिक नीतियों का आकर्षण ।

- अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में दोनों दलों के उम्मीदवारों ने विभिन्न सम–सामयिक मुद्दो पर चुनाव लड़ा । अमेरिकी चुनाव के बैटल ग्रउण्ड माने जाने वाले सात स्विंग स्टेट में अमेरिकी भारतीय मतदाता जीत–हार तय करने में अहम भूमिका निभाते है।
- एक ओर कमला के भारतवंशी होने का इमोशनल टच और आव्रजन नीति में उदारता तो दुसरी ओर ट्रम्प की आर्थिक नीतियों से फायदा और उनका भारत से मजबूत साझेदारी का पक्षधर होना ।
- एच 1 बी वीजा पर काम कर रहे और आगे ग्रीन कार्ड पाने के इच्छूक ज्यादात्तर प्रवासी भारतीय कमला के समर्थक दिखते है जबकि जिन्हें ग्रीन कार्ड और नागरिकता मिल चुकी है उनका झुकाव ट्रंप की ओर ज्यादा है।

2024 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के मुद्दे

अमेरिका के वे मुद्दे जिन्हें ट्रंप और हैरिस ने अपने चुनावी कैपेन का हिस्सा बनाया। इन अलग–अलग मुद्दों पर दोनों उम्मीदवारों की राय एक–दुसरे से कितनी अलग है:–

1 आप्रवासन पॉलिसी :–

इन चुनावों में आप्रवासन का मुद्दा छाया रहा । चुनावी सर्वेज में भी यह बात सामने आई कि वोटरों के लिए भी आप्रवासन एक अहम मुद्दा हैं जो दोनों पार्टियों के लिए निर्णायक साबित होगा।

कमला हैरिस :–

हैरिस ने अपने भाषणों में सीमा सुरक्षा को लागू करने पर ध्यान केन्द्रित किया। जब कमला उपराष्ट्रपति बनी थी, तब उन्हें देश की दक्षिण सीमा पर आप्रवासियों की भीड़ को नियंत्रित करने का जिम्मा दिया गया था। उन्होंने वहाँ उन इलाकों में अरबो डॉलर का निजी निवेश किया ताकि लोगों को उत्तर की ओर जाने से रोका जा सके । मगर कुछ खास सफलता नहीं मिल पाई । उनकी इस नाकामी को ट्रंप भुनाने में कामयाब रहे ।

डॉनाल्ड ट्रंप :–

ट्रंप का चुनावी कैंपन का केन्द्र ही आप्रवासन रहा । उन्होंने अक्सर भाषणों और रैलियों में आप्रवासन पर सख्त रवैया अपनाते हुए कहा कि अगर वो जीतते हैं तो अमेरिका के इतिहास में बगैर दस्तावेजों वाली अब तक की सबसे बड़ी आप्रवासी आबादी को वापस भेजा जाएगा । उन्होंने सदियों पुरानी एलियन एनिमीज एक्ट को भी लागू करने का वादा किया जिसके तहत सरकार को प्रवासियों को उन देशों में भेजने की इजाजत मिल जायेगी, जिनके खिलाफ अमेरिका जंग लड़ रहा होगा। ट्रंप वीजा को लेकर अतिरिक्त जाँच और बाधाएँ खड़ी कर सकते है।

2 अर्थव्यवस्था :–

अर्थव्यवस्था ऐसा दूसरा मुद्दा है जिस पर ट्रंप कमला हैरिस पर भारी पड़ते दिखे। पब्लिक ओपिनियन से भी पता चला कि अमेरिकी जनता खाने और ईंधन की बढ़ी कीमतों के साथ –साथ ब्याज दरों से नाखुश है, जिससे घर खरीदना कम किफायती हो गया है।

कमला हैरिस :–

हैरिस ने इस बात को बार–बार दोहराया कि राष्ट्रपति बनने के पहले दिन से उनकी प्राथमिकता, खाने–पीने की चीजों और मकान की कीमतों को कम करने की रहेगी। उन्होंने साथ ही ये भी कहा कि वो पहली बार घर खरीद रहे लोगों की मदद के लिए कदम उठायेगी।

डॉनाल्ड ट्रंप :–

ट्रंप ने तो यहाँ तक चेतावनी दे दी है कि अगर हैरिस चुनी गई तो अमेरिका में साल 1929 जैसी आर्थिक मंदी आ सकती हैं । ट्रंप ने अपनी हर रैली और भाषणों में अमेरिकी जनता से वादा किया कि वो

मंहगाई को खत्म करेगें । उन्होंने अमेरिका को एक बार फिर से वैसा देश बनाने का वादा किया जहाँ लोग सस्ती चीजें खरीद सकें ।

3 गर्भपात :–

अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में गर्भपात यानि अबॉर्शन का अधिकार अहम चुनावी मुद्दों में से एक है। ये डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन दोनों पार्टियों के लिए अहम मुद्दा बना।

कमला हैरिस :–

हैरिस गर्भपात अधिकारों का लगातार समर्थन करती आ रही है । वे अबार्शन अधिकारों पर भारी बैन को स्वास्थ्य संकट के रूप में देखती रही है। दूसरे प्रेसिडेंशियल डिबेट मे कमला ने इस आशंका पर जोर डाला था कि अगर ट्रंप दोबारा राष्ट्रपति बनते है तो गर्भपता अधिकारों पर देश भर में बैन लगा देगें।

डॉनाल्ड ट्रंप :–

वही ट्रंप की छवि गर्भपात अधिकारों का विरोधी मानी जाती है। ट्रंप ने अपने कार्यकाल में सुप्रीम कोर्ट में जिन तीन जजों को नियुक्त किया था उन्होंने 1973 के रो बनाम वेड केस में दिए गए उस फैसले को पलट दिया था जिसमें गर्भपात को संवैधानिक अधिकार बना दिया गया था । इस मुद्दे पर ट्रंप इस बार अपना पक्ष रख पाने में काफी संघर्ष करते दिखे । उन्होंने इस बार के कैपेंन में अपनी पुरानी राय से इतर कहा कि अबॉर्शन पर क्या फैसला लेना यह राज्यों पर छोड़ देना चाहिए ।

4 विदेश नीति :–

भले ही चार साल के लिए व्हाइट हाउस में कोई भी बैठे अगले राष्ट्रपति को कई अन्तर्राष्ट्रीय संकटों का समाधान करना होगा। इसमें मध्य पूर्व में इजराइल – हमास युद्ध, रूस–यूक्रेन युद्ध और अमेरिका–चीन व्यापार संबंध शामिल है।

कमला हैरिस :–

हैरिस कहती आई है कि रूस के साथ युद्ध में यूक्रेन को दी जाने वाली मदद जारी रहेगी । हैरिस इजराइल– फिलिस्तीन मुद्दे पर लम्बे समय से दो देशों के सिद्धान्त का समर्थक रही है। उन्होंने कहा कि गाजा में जल्द से जल्द युद्ध खत्म हो ।

डॉनाल्ड ट्रंप :–

जबकि ट्रंप ने कहा है कि वह रूस से सौदेबाजी कर यूक्रेन युद्ध को 24 घन्टे में खत्म कर देगें। वही डेमोक्रेटिक पार्टी का कहना है कि इससे रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और मजबूत होगें। ट्रंप ने युद्ध को इजराइल के कट्टर समर्थक के तौर पर पेश किया है लेकिन इस बारे में बहुत कम बताया है कि वो एक साल से जारी गाजा युद्ध को कैसे खत्म कराएगें ।

5 जलवायु परिवर्तन :–

'क्लाइमेट वोर्टर्स' यानि जलवायु मतदाता कहने के लिए एक नया शब्द है। मगर चुनाव में ये वोटर्स अहम भूमिका निभा सकते है।

प्यू रिसर्च सेंटर के अनुसार कुल मिलाकर 54 फीसदी अमेरिकीयों का कहना है कि जलवायु परिवर्तन देश के लिए बड़ा खतरा है।

कमला हैरिस :–

हैरिस जलवायु परिवर्तन को अस्तित्व के लिए खतरा बताती रही है। बतौर उपराष्ट्रपति कमला हैरिस ने सीनेट में एक कानून पारित कराने में मदद की थी । जिसका नाम है " इन्फ्लेशन रिडक्शन एक्ट " । इस एक कानून की वजह से सैकड़ों अरब डॉलर रिन्यूबल एनर्जी सेक्टर, इलेक्ट्रिक व्हीकल्स टैक्स क्रेडिट और रिबेट प्रोग्राम को दिए गए ।

डॉनाल्ड ट्रंप :–

जबकि ट्रंप जलवायु परिवर्तन को बस एक छलावा भर मानते है। अपने कार्यकाल में ट्रंप ने पर्यावरण संरक्षण के सैकड़ों नियमों को वापस ले लिया था। इनमें बिजली प्लांट और वाहनों से कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में कटौती का कानून भी शामिल था। अपने मौजूदा कैंपन में उन्होंने आर्कटिक में ड्रिलिंग बढ़ाने का वादा किया है।

व्यापार :—

डॉनाल्ड ट्रंप :—

टैरिफ को अपने चुनाव प्रचार अभियान का प्रमुख नारा बनाया। आयात को लेकर ट्रंप काफी सख्त रहे है। उन्होंने कहा कि वो विदेश से आने वाली—चीजों पर 10 से 20 फीसदी टैरिफ लगायेगें । जबकि चीन से आने वाले सामान पर इससे भी ज्यादा टैरिफ लगाया जाएगा । व्यापार नीतियाँ भारत के अनुकुल नहीं है। वे अमेरिकी श्रमिकों को प्राथमिकता देते है। भारत से आयात पर टैरिफ लगा सकते है।

कमला हैरिस :—

हैरिस ने हर आयात पर टैरिफ लगाने की ट्रंप की नीति की आलोचना की है। उन्होंने उसे एक नेशनल टैक्स करार दिया है जिन्होंने देश के परिवार पर सालाना चार हजार रूपये का बोझ पड़ेगा । हैरिस भी आयात पर टैरिफ लगा सकती है। लेकिन वो इस मामले में चुनिंदा चीजों पर ये टैक्स लगाना चाहेगीं । कुशल श्रमिकों व उद्यमियों लाभांवित करने वाली समावेशी नीतियों की वकालत करती है।

7 टैक्स :—

डॉनाल्ड ट्रंप :—

इस मुद्दे पर ट्रंप ने खरबों डॉलर की टैक्स कटौती के कई प्रस्ताव रखे है। ट्रंप के मुताबिक 2017 में उनकी सरकार ने जो टैक्स कटौतियाँ की थी उन्हें विस्तार दिया गया था। इन कटौतियाँ से ज्यादातर अमीरों को ही मदद मिली थी।

विश्लेशकों का कहना है कि हैरिस और ट्रंप दोनों के टैक्स प्लान से राजकोषीय घाटा है।

कमला हैरिस :—

हैरिस बड़ी कम्पनियों उद्योगों और साल भर में चार लाख डॉलर कमाने वाले अमेरिकियों पर टैक्स बढ़ाना चाहती है। लेकिन उन्होंने मतदाताओं से ऐसे कई कदम उठाने का वादा किया है जिनसे अमेरिकी परिवारों पर टैक्स को बोझ कम होगा । इनमें चाइल्ड टैक्स क्रेडिट का दायरा बढ़ाने जैसा कदम भी शामिल है।

8 रक्षा संबंध :—

डॉनाल्ड ट्रंप :—

इन मामलों में ट्रंप अधिक बेहतर साबित हो सकते है। उन्होंने भारत के साथ बड़े रक्षा संबंधों पर जोर दिया है। वे चीन पर सख्त हो सकते है।

कमला हैरिस :—

बाइडन और हैरिस के वर्तमान कार्यकाल में भी भारत अमेरिका के कई समझौते हुए है लेकिन उन्हें गति नहीं मिल सकी ।

9 नस्लीय भेदभाव :—

डॉनाल्ड ट्रंप :—

ट्रंप के कार्यकाल में नस्लीय भेदभाव और घृणा के कई मामले सामने आए। उनके भाषण और नीतियों के कारण अमेरिकी लोगों ने दक्षिणी एशियाई लोगों को निशाना बनाया ।

कमला हैरिस :—

बाईडेन और हैरिस ने नस्लीय अपराधों से लड़ने के लिए कानून पारित किया । इससे प्रवासी समुदायों के लोगों को राहत मिली। कोरोना के दौरान प्रवासी लोगों पर हमले के कई मामले सामने आए थे। नए कानून में उन्हें अधिकार दिए गए ।

अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव प्रचार में घृणा का बोलबाला

अमेरिका के चुनाव अभियान में जैसी वैमनस्यता और घृणा इस बार दिखी वैसी पहले कभी नहीं देखी गई । न्यूयार्क के मेडिसन स्क्वायर गार्डन रैली में ट्रंप के मंच में प्रवासियों के बारे में घोर नस्लवादी टिप्पणियाँ की गई । कॉमेडियन हिंचक्लिफे ने तो इसी मंच से यहाँ तक कह दिया कि जो पहली अश्वेत महिला राष्ट्रपति बनने की कोशिश कर रही है, उसने अपना करियर प्रॉस्टीट्यूट की तरह शुरू किया।

कमला हैरिस ने भी मंच से लगातार ट्रंप के आचारण और क्षमताओं पर भी सवाल उठाए । हैरिस ने कहा है कि ट्रंप मानसिक और शारीरिक रूप से राष्ट्रपति बनने के लायक नहीं है ।

डॉनाल्ड ट्रंप पर जानलेवा हमला

अमेरिका के पेसिल्वेनिया में जिस वक्त ट्रंप एक रैली को संबोधित कर रहे है, उस वक्त गोली बारी हुई । गोलियों की आवाज आने के बाद अमेरिकी सीक्रेट सर्विस एजेंट्स के अधिकारियों ने ट्रंप को सुरक्षा घेरे में ले लिया । ट्रंप के दाहिने कान के ऊपरी हिस्से को छूते हुए गोली निकल गई ।

अमेरिकी खुफिया सेवा एजेन्टों ने ट्रंप पर हमला करने वाले संदिग्ध व्यक्ति पर गोली चलाकर उन्हें मौके पर ही मार दिया। डॉनाल्ड ट्रंप पर हुए जानलेवा हमले के बाद राष्ट्रपति जो बाइडन ने कहा कि हमें राजनीतिक हिंसा की बातों पर ध्यान न देकर शांतिपूर्ण राजनीतिक विमर्श के कार्य में संलग्न हो जाना चाहिए ।

कमला हैरिस को ओबामा दम्पति का समर्थन

अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के लिए राष्ट्रपति बराक ओबामा और उनकी पत्नी मिशेल ने कमला हैरिस की उम्मीदवारी पर समर्थन दे दिया । ओबामा ने एक विडियो संदेश में कहा कि हमें लगता है वे अमेरिका की शानदार राष्ट्रपति बनेगी, उन्हें हमारा पूरा समर्थन है। हैरिस ने समर्थन के लिए ओबामा दम्पति का आभार व्यक्त किया।

डॉनाल्ड ट्रंप फिर बने राष्ट्रपति

अमेरिका में राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव 5 नवम्बर को सम्पन्न हुआ जिसमें डॉनाल्ड ट्रंप ने एक बार फिर राष्ट्रपति चुनाव जीत लिया । उन्हें 50 राज्यों की 538 सीटों में से 295 सीटें मिली । बहुमत के लिए 270 सीटें जरूरी होती है। डेमोक्रेटिक उम्मीदवार कमला हैरिस कड़ी टक्कर देने के बाद भी 226 सीटें जीत पाई ।

डॉनाल्ड ट्रंप की जीत से शेयर बाजार मुस्कुराया

- 901 अंक चढ़कर 80,378 पर बंद हुआ सेंसेक्स ।
- 1.13 फीसदी उछल कर निफ्टी भी 24,486 पर बंद ।

निष्कर्ष :–

अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव जीतकर ट्रंप ने इतिहास रच दिया और वें अब 47 वें राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगें । जो 78 साल की उम्र में वह व्हाइट हाउस में कदम रखने वाले सबसे उम्रदराज राष्ट्रपति होगें । वह पराजित होने के बाद चुनें जाने वाले अमेरिकी इतिहास के दूसरे राष्ट्रपति बन गए है। 130 साल बाद ऐसा पहली बार हो रहा है, जब कोई दूसरी बार अमेरिकी राष्ट्रपति बनेगा।

सन्दर्भ :–

- आर्थिक मुद्दे ।
- अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के नतीजें ।
- प्यू रिसर्च सेन्टर रिपोर्ट ।
- राजस्थान पत्रिका 3–11–2024 , 7–11–2024, 29–11–2024 , 18–7–2024 , 27–7–2024
- द नेशन पत्रिका (अमेरिका)
- द न्यू रिपब्लिक (अमेरिका)
- अमेरिकन जनरल ऑफ पॉलिटिकल साइंस (अमेरिका)
- अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू (अमेरिका)

मोबाइल नंबर 9001386462

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 112-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय लोकनाट्य परंपरा का विकास एवं आधुनिक परिदृश्य

Dr. Rakesh Ranjan
Vill+Post - Tilaiya,
PS- Bankey Bazar, Dist- Gaya, Bihar, 824217

भारतीय समाज सांस्कृतिक विविधताओं और कलात्मक परंपराओं से समृद्ध रहा है। यहाँ की संस्कृति में लोककला का विशेष महत्व है, क्योंकि यह सीधे जनमानस के जीवन, आस्था, संघर्ष और सपनों से जुड़ी रहती है। लोककला की अनेक विधाओं में लोकनाट्य एक ऐसी सशक्त विधा है जो मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षाप्रद और सामाजिक चेतना का भी माध्यम रही है। यह आम जनता की बोली-भाषा, रीति-रिवाज और जीवनानुभव का प्रतिबिंब है। लोकनाट्य परंपरा का विकास प्राचीन वैदिक यज्ञीय अनुष्ठानों से लेकर आधुनिक समय तक निरंतर हुआ है और आज भी यह विभिन्न स्वरूपों में जीवित है। वर्तमान समय में लोकनाट्य केवल सांस्कृतिक धरोहर ही नहीं, बल्कि सामाजिक विमर्श, जनजागरण और सामुदायिक संवाद का माध्यम भी है।

लोकनाट्य प्राचीनतम कलारूपों में से एक है। नृत्य,गीत तथा संगीत इसके के अनिवार्य घटक हैं। मनोरंजन की तलाश में मनुष्य शुरुआत से ही रहा है। लोकनाट्य का उद्‌गम मनुष्य की इसी तलाश में निहित है। भारत के लोकनाट्य का रिश्ता नवीन न होकर शताब्दियों पुराना है। देवीलाल सागर का कथन भी इस विचार को पुष्ट करता है "लोक नाट्यों की उत्पति सामाजिक तत्वों के साथ ही हुई है और इनका मुख्य उदेश्य ही मनोरंजन तथा सामाजिक उपयोगिता रहा है।"1

नाटकों का प्रारंभिक उत्पत्ति वेदों से जोड़कर भी देखा जाता है क्योंकि वेद हमारे यहां ज्ञान , कला तथा सभ्यता आदि का पहला स्रोत माना जाता है। इसी कारण वेदों को नाटक तथा रंगमंच के स्रोत के रूप में भी माना गया है। हम जानते हैं कि संवाद नाटक का प्रमुख तत्वों में से एक है। यह संवाद वेदों में अनेक प्रसंगों में देखने को मिलता है। यूं तो विद्वानों ने अनेक संवादों के प्रसंग का उल्लेख किया है किंतु तीन प्रसंग महत्वपूर्ण है। यह तीन प्रसंग उर्वर्शी - पुरुरवा, यम-यमी संवाद तथा सोमरस विक्रेता संवाद है। इस प्रकार ये तीनों और इससे मिलते जुलते अन्य दूसरे संवाद जो नाटक जैसी विधा को पुष्ट करते हैं।

'वेदों के बाद लोकनाट्य का दूसरा स्रोत महाकाव्यों (रामायण तथा महाभारत) के गायन परंपरा से जोड़कर देखा जाता है। यही गायन परंपरा कालांतर में एक संपूर्ण दृश्य- कला अर्थात रंगमंच में परिवर्तित हो गया। इन्हीं गायको द्वारा रामलीला तथा रासलीला का भी संभवतः प्रचार हुआ है। दूसरी ओर हम जानते हैं कि महाकाव्य के समय लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। अतः जो भी महाकाव्य रचे या लिखे गए वे मौखिक या श्रुति परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर -पीढ़ी निरंतर गए जाते रहे तथा उनका पाठ सुरक्षित रहा। रामायण के विषय में तो यह जनश्रुति

प्रचलित है कि इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि ने इससे पहले राम के दोनों बेटों लव और कुश को कंठस्थ करवा दिया और उन्होंने नगर नगर घूम कर रामायण जैसे महाकाव्य को गाकर सुनाने की परंपरा का सूत्रपात है।'2

कुछ अन्य विद्वान् नाटक की उत्पत्ति को कठपुतली की कला से जोड़ते हैं। जिस प्रकार कठपुतलियां नचानेवाला अनेक कठपुतलियां को एक डोर(सूत्र) को पकड़कर नचाता है उसी प्रकार वर्तमान नाटकों के सूत्रधार भी नाटकों के विभिन्न विषयों तथा पात्रों को निर्देशित कर अभिनय कराता है इससे स्पष्ट है कि नाटकों का उदय लोक नाटकों के रूप में हुआ। इसी प्रकार नाटकों के संबंध में कई मत प्रचलित हैं। "डा० रिजले का मत है कि नाटक की उत्पत्ति मृतकपूजा से हुई। मृतक वीरों की आत्मा को प्रसन्न करने के लिए उन्हीं के चरित्र का नाटकीय अभिनय किया गया। डा० पिशेल ने कठपुतलियों से नाटकों की उत्पत्ति मानी है। मैक्समूलर का अनुमान है कि ऋग्वेद में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिन्हें नाटकीय संवाद के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। संभवतः ऐसे संवाद से ही नाटकों की उत्पत्ति हुई हो। प्रोफेसर लेवी का भी यही मत है। कीथ ने ऋतु-उत्सवों में होने वाले नृत्यों के मूल में नाटकों की खोज की है। उनके अनुसार वैदिक ऋचाएँ नाट्य-कला के प्रारम्भिक सूत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कीथ ने कोरा जाति के मदोत्सव पर सोमपान के समय इन्द्र द्वारा कहे गए मंत्र को स्वगत- कथन का रूप बनाया है। नाटकों का यह आदिम रूप आज भी आदिम जातियों के सांगलिक अनुष्ठानों पर दिखाई देता है।"3 इस प्रकार कुछ विद्वानों के अनुसार अनुष्ठानिक नृत्यों में सांकेतिक मुद्राओं से नाटक की उत्पत्ति मानी गयी है। इन सभी विद्वानों के कथनों से स्पष्ट है कि लोक जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों,धार्मिक अनुष्ठानों तथा मनोरंजन आदि की दृष्टि से नाट्य तत्वों का प्रयोग आरंभ से ही चलता आ रहा है।

नाटक की उत्पत्ति के संबंध में प्रमाणिक स्रोत भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' से मिलता है। भरत ने नाट्यशास्त्र की रचना विभिन्न वेदों के सहयोग से किया है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लिया है। इसे 'पंचम वेद' भी कहा जाता है, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि इस पूर्व शूद्रों के लिए कोई साहित्यिक विधा नहीं था। अतः भरतमुनि ने जनसाधारण लोगों के आनंद तथा ज्ञानवर्धन के लिए नाट्यशास्त्र नामक नाटक की रचना किया।

संस्कृत नाटकों में क्रमशः आते उतार के समानान्तर ही लोक-नाट्य उभरे और लोकप्रिय हुए। क्योंकि "संस्कृत रंगमंच का बहुलांश उच्च वर्ग के मनोरंजन में ही बीता। उसकी प्रभावपूर्ण और वैभवशाली उपस्थिति में तत्कालीन उच्चवर्गीय समाज से उसके सम्बन्धों की भूमिका थी। सामान्य जन से क्षीण सम्बन्धों के कारण संस्कृत रंगमंच में सोद्देश्यता का अभाव रहा और यही उसके अवसान का कारण भी बना। उस काल के जो भी नाट्यालेख उपलब्ध हैं उनमें विचारों की शून्यता और जीवन-दर्शन का अभाव मिलता है।"4 मध्यकाल के परिस्थितियों से प्रभावित होकर संस्कृत या शास्त्रीय नाटक लोक जीवन से दूर होकर निर्जीव हो चली थी। इसके फलस्वरूप भारत के अलग-अलग प्रदेशों में अपने आंचलिक चरित्र के अनुरूप अलग-अलग लोकनाट्य विकसित हुआ। देवेंद्र राज अंकुर भी अपने पुस्तक 'रंगमंच की कहानी' में कहते हैं कि "एक हज़ार से सत्रहवी शताब्दी तक हमें रंगमंच की एक बिल्कुल नयी धारा का जन्म और विकास दिखाई पड़ता है, जिसे हम लोग अथवा पारंपरिक नाट्य परंपरा के नाम से जानते हैं।"5 हालांकि ऐसा नहीं कि इस पूर्व लोकनाट्य की परंपरा नहीं थी बल्कि यूं कहें की इस समय लोकनाट्य अपने वास्तविक रूप में अधिक उभर कर सामने आया। इस समय लोकनाट्य के उदय में दो कारण महत्वपूर्ण है। पहला, संस्कृत या शास्त्रीय नाटकों का मुस्लिम शासको का आश्रय न मिलना तथा दूसरा देसी भाषा का उदय। शास्त्रीय नाटक में संसाधनों तथा सुविधाओं की अधिक जरूरत पड़ती है। यह जरूर किसी आश्रय शासको में रहकर ही पूर्ति किया जा सकता है। नए शासको के आश्रय के अभाव में शास्त्रीय नाटक का अवसान हो चला था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय में देश का हर भाग में लोक भाषा का जन्म भी हो रहा था। इस समय अनेक कवियों जैसे तुलसी, सूर, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, गुरु नानक आदि द्वारा अपने विचारों को प्रचार - प्रसार के लिए

लोक भाषा का अधिक प्रयोग किया जा रहा था। इस समय लोकभाषा की उपयोग के प्रचुरता के कारण शास्त्रीय नाटक में प्रयुक्त संस्कृत भाषा का हाशिये पर जाना स्वाभाविक था। क्योंकि संस्कृत भाषा लोक की भाषा न होकर अभिजात्य वर्ग की भाषा थी।

लोक नाट्यों का उदय प्रायः कथा गायन से माना जाता है। इन नाट्य रूपों का मूल आधार ही गीत-संगीत रही है। लोक नाटक अपनी लयात्मकता, संगीत नृत्य प्रधानता एवं तीखे व्यंग्य के कारण बहुत सम्मोहक होते हैं। मध्यकाल में संस्कृत रंगमंच के अपकर्ष के बाद भारत के अलग-अलग प्रदेशों में उन प्रदेशों में आंचलिक चरित्र के अनुरूप अलग-अलग प्रकार के लोकनाट्य विकसित हुए। अपने-अपने समय की प्रचलित घटनाओं, प्रथाओं, चरित्रों को कथ्य के रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति इन लोक नाटकों की आधार वृत्ति है। सम्पूर्ण भारत में प्रायः दो प्रकार के लोक नाट्य प्रचलित थे- पहला लौकिक और दूसरा धार्मिक। लोकनाट्य के विद्वान वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय लोकनाट्य' में 'लौकिक लोकनाट्य' के अंतर्गत ख्याल-लावणी, माच, तमाशा, भवाई, नौटंकी और धार्मिक एवं मंदिर आधारित लोकनाट्य के अंतर्गत अंकीया नाट्य, जात्रा, कुड़ीयाट्टम, भागवतमेल कुचिपुड़ी को मानते हैं। समकालीन रंग प्रयोक्ता इनका पुनर्संस्कार कर इसकी सप्राण रंगयुक्तियों को अपने अभिप्रायों के अनुरूप ढाल रहे हैं। इन प्रयोगों के बल पर समकालीन नाटककारों ने जो लोकप्रियता हासिल की है, उससे इन नाटकों की अन्तःशाक्ति को समझा जा सकता है। अपने अभिनय में लाउड होने के बावजूद महाराष्ट्र का तमाशा, गुजरात की भवाई, राजस्थान का ख्याल, उत्तर प्रदेश की कृष्ण लीला, राम लीला स्वांग, नौटंकी, मैसूर का यक्षगान, आन्ध्र की कुचीपुड़ी, बराकथा वीथिनाटकम, मद्रास का पागल वेशम अपने-अपने प्रदेश और परिवेश में आज भी प्रासांगिक बने हैं।

भारतीय नाट्य परंपरा में शुरू से ही लोकनाट्य की विविध परंपराएँ विकसित और पल्लवित होती रही हैं जिनमें कई लोकनाट्य परंपराएँ अब तक जीवित हैं। हिन्दी के इन सभी लोकनाट्य रूपों में आंतरिक एकात्मकता है तथा ये सभी रूप समानार्थी भी हैं परन्तु अंदर से एक नाट्य रूप का आभास देते हुए भी उनमें स्थानगत एवं कालगत विभिन्नता है। लोकनाट्य के विविध रूप देश के विभिन्न भागों में प्राचीन काल से ही जनता का मनोरंजन करते रहे हैं और विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित ये लोकनाट्य भारत की ऐसी नाट्यधारायें हैं जो लोकजीवन में घुल मिलकर इस तरह व्याप्त है कि इससे जन मानस का एक बहुत बड़ा वर्ग अनायास ही प्रभावित होकर मानसिक स्तर पर आन्दोलित होता है। इन लोकनाट्यों का मूल स्रोत भी लोकजीवन ही है और भारतीय लोकनाट्य धारा का यह वही रूप है जिनकी जड़ें हमें आदिम अवस्था तक खींच ले जाती हैं। इसलिए लोकनाट्य से अभिप्राय उन नाट्य रूपों से है जिसका संबंध सामान्य जन जीवन से होता है और जो लोकरुचि तथा सामान्य जन की धार्मिक सांस्कृतिक व नैतिक मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर, लोकनाट्य परंपरा के अधिकतर रूप संस्कृत नाट्य रूपों से ही उद्भूत होकर विकसित हुए हैं। इसलिए लोकनाट्य और संस्कृत नाट्य रूपों एवं परंपराओं में रूढ़ियों तथा व्यवहारों में काफी समानता है। गहराई में उतरने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत नाट्य परंपरा ही बाद में लोकनाट्य के विभिन्न रूपों में रूपांतरित होकर जीवित रही। कदाचित यही कारण है कि संस्कृत नाट्य की अनेक रंगमंचीय विशेषताएँ एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ लोकनाट्यों में आज भी हल्के फेर बदल के साथ विद्यमान हैं।

हिन्दी नाटक और रंगमंच में लोकनाट्य परंपरा के लुप्त होता जा रहे रूपों का सृजनात्मक उपयोग किया जा सकता है। लोकनाट्य और संस्कृत नाट्य की इस परंपरा में आज भी कुछ ऐसे जीवंत नाटकीय तत्व और लोकतत्व विद्यमान हैं जिनका यथावसर समुचित उपयोग कर हिन्दी के नाट्यकार प्रयोग के रूप में नयी सार्थक नाट्य शैली की सृष्टि कर रहे हैं।

लोकनाट्य रूपों से विभिन्न प्रकार के प्रभाव ग्रहण कर आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में नयी प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का विकास किया है और नये नाट्य रूपों की संभावनाओं से साक्षात्कार कर लोकजीवन से

जुड़ने का प्रयास भी किया है। लोककथाओं का आश्रय लेकर अथवा लोककथाओं से प्रभावित होकर लिखे गए नाटकों में लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूखा सरोवर', 'सूर्यमुख), कलंकी एवं एक सत्य हरिश्चन्द्रों', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', जगदीश चन्द्र माथुर का 'कोणार्क', मणि मधुकर का 'रस गंधर्व', 'दुलारीबाई' और 'खेला पोलमपुर', हमीदुल्ला का 'ख्याल भारमली', मृणाल पाण्डे का जो राम रचि राखा', असगर वजाहत का 'वीरगति', शांता गांधी का 'जसमा ओडन', गोविन्द चातक का 'दूर का आकाश' और अशोक मिश्र का बजे ढिंढोरा उर्फ खून का रंग' के अलावा 'इन्ना का आवाज', 'एक था बादशाह', 'जादू जंगल', 'तमाशा', 'कसे हुए तार'आदि विशेष उल्लेखनीय है।

लोकनाट्य भारतीय संस्कृति की आत्मा है, क्योंकि यह आम जनमानस के लोक जीवन, लोक संस्कृति लोक भाषा तथा लोकानुभव आदि को अभिव्यक्ति करता है। इतना ही नहीं, यह लोक समाज को शिक्षित, संस्कारिक तथा मनोरंजन भी प्रदान करता है। लेकिन, वर्तमान डिजिटल युग में लोकनाट्य के सामने अनेक चुनौतियां खड़ा है। आज टेलीविजन, सिनेमा तथा सोशल मीडिया आदि के मनोरंजन के साधन ने लोकनाट्य की लोकप्रियता को काफी क्षति पहुंचाया है। अतः आज आवश्यकता है कि आधुनिक तकनीकी नए प्रयोग से लोकनाट्य को समकालीन बनाया जाए। साथ ही सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों स्तर पर इसके संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाया जाए।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि लोकनाट्य भारतीय संस्कृति जीवन का जीवंत अंग है, जिसने सदियों से लोक जीवन की भावनाओं (हर्ष- उल्लास,सुख-दुख आदि), अनुभूतियों, आकांक्षाओं तथा संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है। इसकी उत्पत्ति मानव सभ्यता के साथ सामाजिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों से हुई। यह अपने विकास क्रम में अनेक रूप धारण किये। हालांकि वर्तमान समय में यह अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है किंतु इसका महत्व आज भी अद्वितीय है। आवश्यकता है कि इसे संरक्षण तथा नवाचार मिले ताकि आने वाले पीढ़ियों के लिए जीवित तथा प्रसांगिक बना रहे।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्याम, डॉक्टर सीताराम झा, हिंदी नाटक: समाजशास्त्रीय अध्ययन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, पृष्ठ. 69
2. अंकुर, देवेंद्र राज, रंगमंच की कहानी, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ. 35
3. उत्पत्ति, डॉ कुंदनलाल, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, पृष्ठ.168
4. हृषिकेश सुलभ, रंग अरंग, पृष्ठ.15
5. अंकुर, देवेंद्र राज,रंगमंच की कहानी, पृष्ठ. 57

Vill+Post - Tilaiya, PS- Bankey Bazar, Dist- Gaya, Bihar, 824217

rakesh.kmcdelhi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 116-119
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य की गद्य विधा में उपन्यास : उद्भव और विकास

आविर्भाव शर्मा
शोधार्थी,
पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर

1) प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की गद्य विधा का विकास आधुनिक भारतीय समाज और संस्कृति के रूपांतरण से गहरे रूप में जुड़ा है। उपन्यास ने कथा-साहित्य को व्यापक सामाजिक यथार्थ, व्यक्ति-जीवन की अंतर्द्वंद्वात्मकता और ऐतिहासिक-राजनीतिक परिवर्तनों से जोड़ा। हिन्दी उपन्यास केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, वैचारिक बहस और सांस्कृतिक स्मृति का सशक्त माध्यम बनकर उभरा।

2) शोध-समस्या, उद्देश्य और पद्धति

इस शोध-पत्र का उद्देश्य हिंदी उपन्यास की उत्पत्ति (उद्भव), विकास-यात्रा, प्रमुख प्रवृत्तियाँ और कथ्य-शिल्पगत परिवर्तन की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। शोध-समस्या यह है कि—हिंदी उपन्यास के आरंभ से लेकर समकालीन समय तक किन सामाजिक-ऐतिहासिक कारणों, साहित्यिक धाराओं और सौंदर्यबोध ने इस विधा को आकार दिया? पद्धति के रूप में ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय दृष्टि, पाठ-विश्लेषण, और प्रमुख रचनाकारों/उपन्यासों के आलोचनात्मक संदर्भों का उपयोग किया गया है।

3) उपन्यास की संकल्पना

उपन्यास गद्य में रचित विस्तृत आख्यान-विधा है, जिसमें चरित्र-विकास, कथानक, परिवेश, समय-चेतना, मानवीय संबंधों के सूक्ष्म आयाम और यथार्थ-बोध का विस्तार रहता है। यह कथा-काव्य अथवा नाटक से भिन्न, बहु-स्वरीय और बहुपरिप्रेक्ष्यात्मक रचना-रूप है, जो समाज की अंत:धाराओं—वर्ग, जाति, लिंग, नैतिक मूल्य, सत्ता-संबंध—को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।

4) उद्भव : ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में औपनिवेशिक आधुनिकता, मुद्रण-यंत्र के प्रसार, शिक्षा-विस्तार और शहरी मध्यवर्ग के उदय के साथ हिंदी में उपन्यास-विधा का आविर्भाव हुआ। अंग्रेज़ी और बंगला साहित्य ने प्रेरक भूमिका निभाई। हिन्दी का प्रारंभिक उपन्यास सामान्यतः पंडित श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' (1882) माना जाता है, जो शिक्षाप्रद-सुधारवादी रचना है। लोकप्रियता के धरातल पर देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकांता' (उन्नीसवीं सदी का अंतिम दशक) ने पाठक-वर्ग को व्यापक किया और उपन्यास को जन-रुचि से जोड़ा।

5) विकास के चरण और प्रमुख प्रवृत्तियाँ

5.1 प्रारंभिक सुधारवादी-शिक्षाप्रद दौर (1880–1900)

• रचनात्मक लक्ष्य: नैतिक-सुधार, सामाजिक बुराइयों की आलोचना, मध्यवर्गीय शिष्टाचार की स्थापना।

• प्रकृति: आचारवाद, उपदेशात्मकता, कथानक में सरलता।

• प्रतिनिधि: ‘परीक्षा गुरु’ (श्रीनिवास दास); खत्री की कल्पनालोक-प्रधान रचनाएँ—लोकप्रियता और कुतूहल-प्रधान शिल्प।

5.2 यथार्थपरक-सामाजिक उपन्यास और नवजागरण चेतना (1900–1936)

• केंद्र: सामाजिक कुरीतियाँ, स्त्री-शिक्षा, दहेज, सामंती अवशेष, औपनिवेशिक दमन।

• प्रेमचंद का अवदान: ‘सेवासदन’, ‘निर्मला’, ‘गबन’, ‘गोदान’ में किसान-मजदूर, स्त्री एवं निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ और करुणा।

• शिल्प: भाषा का बोलचाल-केन्द्रित सरलीकरण, चरित्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर जोर, कथा का नैतिक-सामाजिक उद्देश्य।

5.3 प्रगतिवाद और स्वतंत्रता-संग्राम का प्रभाव (1936–1950)

• प्रवृत्ति: वर्ग-संघर्ष, शोषण-विरोध, राष्ट्रीय मुक्ति का स्वप्न।

• रचनाकार: यशपाल (वैचारिक-संघर्ष और यौन-नैतिकता पर विमर्श), राहुल सांकृत्यायन (इतिहास-बोध), नागार्जुन (जनजीवन)।

• स्वर: यथार्थवाद का उग्र रूप, समाज-परिवर्तन की आकुलता, विचारधारात्मक बहस।

5.4 नयी कहानी-नयी संवेदना और मनोवैज्ञानिकता (1950–1970)

• विषय: मध्यवर्गीय अस्तित्व-संकट, नगरीय अकेलापन, मूल्य-संकट, विभाजन के बाद की पीड़ा।

• रचनाएँ: अज्ञेय का ‘शेखर: एक जीवनी’ (आत्म-खोज, अंतःचेतना), धर्मवीर भारती ‘गुनाहों का देवता’ (प्रेम-त्रासदी और मूल्य-द्वंद्व), फणीश्वरनाथ रेणु ‘मैला आँचल’ (आंचलिकता, बोली-बानी, ग्राम्य-यथार्थ)।

• शिल्प: आत्मकथ्य, बहु-स्वर, स्ट्रीम-ऑफ-कॉन्शसनेस, प्रतीकात्मकता।

5.5 बहुलता, विमर्श और उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियाँ (1970–वर्तमान)

• केंद्र: स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी जीवन, प्रवासी अनुभव, बाज़ारवाद-वैश्वीकरण, राजनीति-सत्ता, मीडिया-संस्कृति।

• रचनाकार/रचनाएँ (संकेतात्मक): मन्नू भंडारी (‘आपका बंटी’—विवाहित जीवन और बाल-मन), राजेन्द्र यादव (लैंगिक-संबंधों पर विमर्श), मैत्रेयी पुष्पा (ग्रामीण स्त्री-जीवन का बेधक यथार्थ), गिरिराज किशोर, शरण कुमार लिंबाल, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि (दलित अनुभव का कथ्य; यद्यपि कुछ नाम आत्मकथा/कहानी में भी अधिक चर्चित हैं), और अनेक समकालीन लेखक जिनमें वैश्वीकरणोत्तर समाज का विखंडन, पहचान और प्रतिरोध उभरते हैं।

• प्रवृत्ति: विधागत सीमाएँ ढीली—हाइब्रिड नैरेटिव, इतिहास-कथा, डॉक्यू-फिक्शन, मैजिकल रियलिज़्म, थ्रिलर और लोकप्रिय उपन्यास का उभार।

6) विषय-वस्तु और विचार-परिप्रेक्ष्य

• सामाजिक यथार्थ: किसान-मजदूर, शहरी निम्नवर्ग, मध्यवर्गीय द्वन्द्व, बेरोज़गारी, पलायन।

• लैंगिक/स्त्री अनुभव: पितृसत्ता, देह-राजनीति, शिक्षा और स्वायत्तता; स्त्री-चरित्रों की जटिलता और आत्मकथ्य।
• जाति-दृष्टि और दलित चेतना: दमन की संरचनाएँ, गरिमा की खोज, प्रतिरोध की संस्कृति; भाषा में आत्मविश्वास।
• आदिवासी/सीमांत समाज: प्रकृति-सम्बंध, विस्थापन, खनन/विकास बनाम जीविका; सांस्कृतिक समता का प्रश्न।
• राष्ट्र, राज्य और नागरिकता: स्वतंत्रता-संग्राम, आपातकाल, उदारीकरण—इन दशाओं में व्यक्ति-समाज संबंधों का पुनर्संयोजन।
• प्रवासी/अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य: भाषा की स्मृति, पहचान-संकट, बहुसांस्कृतिक टकराव और सेतु-बोध।

7) कथन-तकनीक और शिल्प-विधान

• दृष्टिकोण: सर्वज्ञ/सीमित तृतीय पुरुष, प्रथम पुरुष, बहु-दृष्टि—पत्रात्मक शैली, डायरी-प्रविष्टियाँ, साक्षात्कार, दस्तावेज़ी अंश।
• समय-संरचना: रैखिकता से परे फ्लैशबैक, फ्लैश-फ़ॉरवर्ड, स्मृति-धार—समय की बहुधा स्तरित प्रस्तुति।
• भाषा-शैली: खड़ीबोली का मानकीकरण, उर्दू-हिंदी का सहजीवन, क्षेत्रीय बोलियों/लोक-भाषाओं का रचनात्मक प्रयोग (आंचलिकता)।
• चरित्र-निर्माण: आदर्शवादी से यथार्थवादी और फिर 'एंटी-हीरो'/धूसर चरित्र; मनोवैज्ञानिक गहराई।
• अंतःचेतना: स्ट्रीम-ऑफ-कॉन्शसनेस, स्वप्न, प्रतीक और रूपक के माध्यम से भीतरी सत्य का अन्वेषण।

8) लोकप्रिय बनाम तथाकथित 'गंभीर' उपन्यास

हिंदी में आरंभ से ही लोकप्रियता (रोमांच, रहस्य, धारावाहिकता) और 'गंभीर' यथार्थवाद साथ-साथ चले। बाज़ार और पाठक-वर्ग का विस्तार लोकप्रिय उपन्यासों का बल है; वहीं गंभीर उपन्यास समाज-विवेक, वैचारिक जटिलता और शिल्प-नवाचार का प्रतिनिधि रहा। समकाल में यह विभाजन धुंधला हुआ है—कई रचनाएँ दोनों धरातलों का रचनात्मक समन्वय करती हैं।

9) प्रकाशन-परिदृश्य, पत्र-पत्रिकाएँ और पाठक-वर्ग

मुद्रण-यंत्र, पुस्तक-मेले, पुस्तकालय-आन्दोलन, और पत्र-पत्रिकाओं (धारावाहिक प्रकाशन) ने उपन्यास-विधा को जन-जन तक पहुँचाया। उत्तर-उदारीकरण काल में निजी प्रकाशन, ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म, ई-बुक और ऑडियोबुक ने वितरण-संस्कृति बदली है। इससे विषय-वस्तु की बहुलता और प्रयोगधर्मी लेखन को प्रोत्साहन मिला।

10) तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

हिंदी उपन्यास का विकास भारतीय भाषाओं (बंगला, मराठी, उर्दू, गुजराती) और विश्व-साहित्य (रूसी, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी) से संवाद में हुआ। यथार्थवाद, प्रयोगवाद, उत्तर-आधुनिकता, जादुई यथार्थवाद जैसी प्रवृत्तियाँ अंतःसांस्कृतिक प्रभावों से समृद्ध हुईं; किन्तु हिंदी ने अपने सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों की विशिष्टता बनाए रखी।

11) प्रमुख रचनाकार/रचनाएँ (संकेतात्मक सूची)

• श्रीनिवास दास — 'परीक्षा गुरु'
• देवकीनंदन खत्री — 'चंद्रकांता' और किलहन-रूपी लोकप्रिय आख्यान-परंपरा
• प्रेमचंद — 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'गोदान'
• यशपाल — वैचारिक-समाजवादी प्रवृत्ति के उपन्यास
• अज्ञेय — 'शेखर: एक जीवनी'
• धर्मवीर भारती — 'गुनाहों का देवता'

• फणीश्वरनाथ रेणु — 'मैला आँचल' (आंचलिकता)
• मन्नू भंडारी — 'आपका बंटी' (स्त्री-विमर्श/परिवार-टूटन)
• अन्य समकालीन स्वर — मैत्रेयी पुष्पा, गिरिराज किशोर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, शरणकुमार लिंबाळ आदि (विषय-वस्तु/विधा-विस्तार के संकेत के रूप में)।

12) निष्कर्ष

हिंदी उपन्यास का उद्भव औपनिवेशिक आधुनिकता और सामाजिक-सुधार की पृष्ठभूमि में हुआ, परंतु उसका विकास भारतीय जनजीवन के बहुविध अनुभवों से संचालित है। प्रेमचंद के यथार्थवाद से लेकर समकालीन बहुलताओं और विमर्शों तक उपन्यास ने समाज के अंतर्विरोधों, आकांक्षाओं और स्मृतियों को शब्द दिए। आज हिंदी उपन्यास विधागत सीमाएँ तोड़ते हुए डिजिटल माध्यम, वैश्विक गतिशीलता और पहचान-राजनीति के जटिल प्रश्नों से जूझ रहा है। यही उसकी जीवनी-शक्ति है—निरंतर नवीनता, आत्मालोचन और समाज-सापेक्षता।

परिशिष्ट: संदर्भ-संकेत (परामर्श योग्य)

1. हिंदी साहित्य के सामान्य इतिहास-ग्रंथ—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, ज्ञानचन्द्र जैन आदि
2. आलोचना-परंपरा—नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, नगेंद्र आदि
3. लेखक-विशेष पर आलोचनात्मक ग्रंथ—प्रेमचंद, अज्ञेय, रेणु, यशपाल इत्यादि पर उपलब्ध शोध/मोनोग्राफ
4. (टिप्पणी: यह सूची संकेतात्मक है; विस्तृत संदर्भ पाठ्यक्रम/आवश्यकता के अनुसार जोड़े जा सकते हैं।)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 120-122
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गीतांजलि श्री के 'माई' उपन्यास में स्त्री विमर्श

कु० खुशी श्रीवास्तव
शोधार्थी,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु सिद्धार्थनगर- 272202

शोध सार -
स्त्री विमर्श यह केवल बहस का मुद्दा नहीं है, बल्कि समाज में जागृति या चेतना की बात है। समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षिक समानता का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, जिसके परिणाम स्वरुप स्त्रियों द्वारा आंदोलन किए गए और इसे ही नारीवाद या स्त्रीवाद कहा गया।

गीतांजलि श्री का उपन्यास 'माई' हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के संवेदनशील और बहुस्तरीय स्वरूप को प्रकट करने वाला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार की पृष्ठभूमि में स्त्री की मौन, पीड़ा, त्याग, दमन और धीरे-धीरे उभरते आत्मस्वर को चित्रित करता है। इसमें मां, बेटी और पितृसत्तात्मक ढांचे के अंतर्संबंधों को बारीकी से उकेरा गया है। इस शोध-पत्र में 'माई' के माध्यम से स्त्री विमर्श के विभिन्न पहलुओं सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह भी रेखांकित किया गया है कि किस प्रकार गीतांजलि श्री ने स्त्री चुप्पी को ही उसके प्रतिरोध का माध्यम बनाया है।

कुंजी शब्द - स्त्री, विमर्श, पितृसत्ता, मौन, विद्रोह, अस्मिता, चेतना, रूढ़िवाद।

प्रस्तावना

स्त्री विमर्श का मूल आधार स्त्री की अस्मिता, स्वतंत्रता और समानता की खोज में निहित है। यह एक ऐसा वैचारिक और सामाजिक आंदोलन है, जो स्त्री को मनुष्य के रूप में उसके संपूर्ण अधिकार दिलाने की दिशा में प्रयासरत है। इसका उद्भव पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में सदियों से चली आ रहे स्त्री के शोषण, दमन और उपेक्षा के प्रतिरोध के रूप में हुआ।

स्त्री विमर्श की जड़ें पश्चिम में उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ में पाई जाती हैं, लेकिन भारत में यह विमर्श स्वतंत्रता आंदोलन और बाद में 1970 के दशक के नारीवादी आंदोलनों से तेजी से उभरा।

पश्चिम में **सिमोन द बोउवार की पुस्तक The Second Sex** को स्त्री विमर्श का वैचारिक आधार माना जाता है, उन्होंने कहा- **"स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती हैं।"**[1] हिंदी साहित्य में लेखिकाओं ने अपनी

साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से स्त्री अस्मिता के संदर्भ में विभिन्न पक्षों को चित्रित करने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की हैं।

"नारीवाद ही स्त्री विमर्श है। नारी की यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री है।"[2] मैत्रेयी पुष्पा

इस परंपरा में समकालीन महिला लेखिकाओं ने बेजोड़ कार्य किया है। गीतांजलि श्री उनमें से एक है। गीतांजलि श्री हिंदी की पहली ऐसी लेखिका हैं जिन्हें अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला। गीतांजलि श्री इस परंपरा में एक नयी चेतना जोड़ती है वह स्त्री के भीतर के मौन, अनकहे और असहज अनुभवों को कथा के केंद्र में लाती है। 'माई' उपन्यास उनमें से एक है। माई घर के काम, बच्चों की देखभाल और परिवार की आवश्यकताओं में पूरी तरह लगी रहती है, लेकिन उसके जीवन में 'अपने लिए' कुछ करने की गुंजाइश नहीं है। बेटी, जो आधुनिक शिक्षा और शहरी दृष्टि से लैस है, मां के जीवन को देखती है और समझती है कि मौन कितना गहरा और अर्थपूर्ण है।

"माई की चुप्पी में बहुत कुछ था- आहटे, अनकहे शब्द और कभी-कभी ऐसी जिद, जो बिना बोले भी सबको हिला देती थी।"[3]

माई का झुकना केवल शारीरिक रूप से नहीं बल्कि उन सभी रूढ़ियों के आगे जो महिलाओं पर थोपी जाती हैं। माई हमेशा से डरी हुई सी रहती है पर ऐसा नहीं है कि वह कुछ कह नहीं सकती वह अपने मौन से सब कुछ कहती है।

'माई' हमेशा झुकी रहती थी, हमें तो पता है हम उसे शुरू से ही देखते आये हैं। हमारी शुरुआत ही उसकी भी शुरुआत है। तभी से एक मोहन झुकी हुई साया थी।

पति कितना भी गलत क्यों न हो उसकी हां में हां मिलाना एक स्वाभाविकता बन गया है। वह अपने अस्तित्व को बचाने का तनिक भी प्रयास नहीं करती है, जैसे माई ने कभी नहीं किया। माई परंपराओं और रूढ़ियों में इतना घुल-मिल जाती है कि उसे ड्योढी से बाहर निकालना आसान न था क्योंकि माई स्वयं मर्यादा की ओट में इन परंपराओं में समा गई थी कि उसे अलग कर पाना संभव न था।

सुनैना सुबोध से कहती है **"हम जानते थे वक्त लगेगा, लगेगा जब उसे खींच बाहर ले जाते तो माई नन्ही सी बच्ची बन जाती। हमारा करती। भीड़ से घबराई सी घुसती"[4]**

सुनैना खुद को माई से जोड़ के देखती है वह माई के खालीपन को दूर करना चाहती है। उनमें हिम्मत भरना चाहती है। वह नहीं चाहती कि माई खोखली बन कर रह जाए -

"हमने तो जोड़ा तो माई को अपने आप से जोड़ा उसके खाली अन्तरस में खुद को उड़ेल दिया उसके कमजोर व्यक्तित्व में अपनी हिम्मत भरनी चाही।"[5]

इस उपन्यास में तीन पीढ़ियों का संघर्ष है, दादा-दादी बाबू-माई तथा सुनैना-सुबोध। माई जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जकड़ी हुई है बाबू के बाहरी संबंध पर भी नहीं बोल पाती है। सुनैना आज के समय की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। सुनैना में की तरह दब कर नहीं रहना चाहती है। सुनैना पुरानी रूढ़ियों को तोड़ती है और ड्योढ़ी से बाहर निकलती है। सुनैना कहती है-

"मैं माई बन भी सकती तो भी ना बनना चाहूंगी मुझे माई नहीं बनना। हर तरह के सहने को निकाल फेंकना चाहती हूं, वह गलत है, मुझे वह रोकना है।""[6]

सुनैना और सुबोध दोनों का लक्ष्य है माई को ड्योढ़ी की कैद से आजाद करना। दादा-दादी के बाद ही माई ड्योढ़ी की सीमा से बाहर आती है। माई को ड्योढ़ी से बाहर आना किसी के प्रयत्न से नहीं होता बल्कि व्यक्तित्व के न रहने से होता है।

निष्कर्ष –

'माई' उपन्यास हिंदी स्त्री विमर्श के इतिहास में एक मील का पत्थर है। यह दर्शाता है कि स्त्री का संघर्ष केवल बाहर से लड़ाई लड़ने में नहीं, बल्कि अपने भीतर की सीमाओं को तोड़ने में भी है। जहां एक तरफ माई है वहीं दूसरी और सुनैना है, जो सारी रूढ़ियों एवं परंपराओं को तोड़ना चाहती है और अंततः वो उन रूढ़ियों से बाहर निकल जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिमोन द बोउवार, द सेकंड सेक्स, पेरिस : गैलियार्ड 194
2. इग्नू द प्यूपल्स यूनिवर्सिटी इकाई – 2, स्त्रीविमर्श की परिभाषा पृष्ठ - 5
3. गीतांजलि श्री, माई उपन्यास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1993 पृष्ठ - 9
4. वही, पृष्ठ - 99
5. वही, पृष्ठ - 83
6. वही पृष्ठ – 64

Khushisrivastavsdr960@gmail.com
मो० नं० – 7752886779

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 123-125
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मोहन राकेश के नाटक और स्त्री पात्र विश्लेषण

प्रा. डॉ. गायके मुंजाजी मारोतराव,
हिंदी विभाग प्रमुख,
राजर्षी शाहु महाविद्यालय, परभणी महाराष्ट्र

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के प्रमुख नाटककार है। उनके नाटकों में नारी जीवन को बहुत गहराई से चित्रित किया गया है। उन्होंने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। उनके नाटक आधुनिक जीवन की समस्याओं पर आधारीत है। इनमें नारी जीवन का चित्रण बहुत महत्वपुर्ण है। राकेशजी ने महिलाओं को सिर्फ सहायक पात्र नहीं बनाया, बल्कि उन्हें मुख्य भूमिका दी। उनके नाटकों मे महिलाएँ अपनी पहचान खोजती है। रिश्तो में उलझती है और समाज के नियमों से लडती है। यह चित्रण भारतीय समाज की बदलती स्थिती में उलझती है और समाज के नियमों से लडती है। यह चित्रण भारतीय समाज की बदलती स्थिती कों दिखाता है। जहां महिलाएँ पुरानी परम्परा और नई सोच के बीच फंसी रहती है।

मोहन राकेश के मुख्य नाटक (1) आषाढ का एक दिन (1958) (2) लहरों के राजहंस (1963) (3) आधे-अधुरे (1969) आदि रहे है। इन तिन नाटकों मे स्त्री पात्र जैसे मल्लिका, नंदिनी और सावित्री प्रमुख है। इन स्त्री पात्रों के माध्यम से राकेशजीने नारी की भावनाओं, संघर्ष और आकांक्षाओं को व्यक्त किया है। यहाँ पर इन नाटकों के आधार पर स्त्री पात्रो का विश्लेषण करेगें पहले परिचय, फिर प्रत्येक नाटक का वर्णन उसके बाद समग्र विश्लेषण और निष्कर्ष। यह अध्ययन संदर्भग्रंथो पर आधारीत है।

आषाढ का एक दिन : मे स्त्री पात्रों का जीवन का चित्रण 'आषाढ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला प्रमुख नाटक है। यह कवि कालिदास के जीवन पर आधारित है। इसमें मुख्य स्त्री पात्र मल्लिका है, जो कालिदास की बचपन की सहेली और प्रेमिका है। मल्लिका संवेदनशील, भावुक और प्रकृती प्रेमी है। वह कालिदास से गहरा प्रेम करती है, लेकिन बिना किसी स्वार्थ के। जब कालिदास उज्जयिनी जाने लगता है, मल्लिका उसे रोकती नहीं, क्योंकि वह उसके भविष्य में बाधा नहीं बनना चाहती। वह कहती है कि उसका प्रेम कालिदास की काव्य सृष्टि में जीवित रहेगा।

मल्लिका का जीवन प्रेम और कर्तव्य के दृंद से भरा है। समाज के नियमों के कारण वह कालिदास से अलग हो जाती है। बाद में वह विलोम के साथ विवाह करती है, लेकिन उसका मन कालिदास के लिए ही रहता है। जब कालिदास प्रसिध्द होकर लौटता है, मल्लिका उसे अपनी बेटी दिखाती है, लेकिन फिर अलग हो जाती है। यह दिखाता है कि मल्लिका स्वाभिमानी है और अपनी पहचान खुद बनाती है। उसकी माँ अंबिका भी एक नारी पात्र है, जो पारंपारिक जीवन जीती है। बेटी के दुख को समझती है।

नारी की पहचान की खोज, प्रेम त्याग, समाज के दबाव से संघर्ष। राकेशजीने दिखाया है कि महिलाएँ प्रेम में मजबुत होती है, लेकिन समाज उन्हे अकेला छोड देता है। मल्लिका का चरित्र आधुनिक नारी की तरह है, जो

स्वतंत्र सोच रखती है। यह चित्रण बताता हे कि पुरुष की सफलता में नारी तथा स्त्री का योगदान बडा होता है, लेकिन उसे मान्यता नहीं मिलती।

लहरों के राजहंस: राकेशजी का दुसरा महत्वपूर्ण नाटक है। यह बौध्द कथा पर आधारित है, मुख्य नारी पात्र नंदिनी है, जो राजकुमार सुंदर की पत्नी है। नंदिनी एक संवेदनशील और विचारशील महिला है। वह अपने पती से प्रेम करती है, लेकिन जीवन की सच्चाई खोजती है। नाटक में नंदिनी का संघर्ष आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के बीच है।

नंदिनी अपने रिश्तो में असंतुष्ट है। वह सुंदर से खुश नहीं समझता। नंदिनी बुध्द की शिक्षाओं की ओर आकर्षित होती है और वैराग्य को तलाश करती है। लेकिन समाज और परिवार के दबाव के कारण वह फंस जाती है। नाटक के अंत में नंदिनी अपने पती को छोडकर बुध्द के पास जाती है, लेकिन फिर लौट आती है। यह दिखाती हे कि नारी का मन जटिल होता है- वह प्रेम और मुक्ति के बीच उलझती है।

रिश्तों का अधुरापन, नारी की आध्यात्मिक खोज, समाज की उपेक्षाएं। राकेशजीने नंदिनी को एक मजबूत पात्र बनाया है, जो अपनी पहचान के लिए लडती है। वह पारंपारिक नारी से अलग है, क्योंकि वह सिर्फ हार नहीं संभालती, बल्कि जीवन के अर्थ को तलाश करती है। यह चित्रण आधुनिक महिलाओं की स्थिती को दर्शाता है, जहां वे रिश्तों मे पूर्णता नहीं पाती।

आधे-अधुरे : इस नाटक में स्त्री जीवन का चित्रण किया गया है। राकेशजी का आधे-अधुरे यह नाटक सबसे प्रसिध्द नाटक रहा है। इस नाटक मे मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है। मुख्य नारी पात्र सावित्री है, जो महेन्द्रनाथ की पत्नी है। सावित्री कामकाजी महिला है, जो घर और नौकरी दोनों संभालती है। वह महत्वकांक्षी है, लेकिन अपने पती से असंतुष्ट है, क्योंकि वह बेकार और अधुरा है। सावित्री एक पूर्ण पुरुष की तलाश में है। वह जगमोहन और सिंघानिया जैसे पुरुषों से जुडती हैं, लेकिन हर जगह अधुरापन पाती है। सावित्री का जीवन कुंठाओ से भरा है। वह परिवार की जिम्मेदारीयाँ उठाती है, लेकिन कोई सम्मान नहीं मिलता। उसकी बेटियाँ बिन्नी और किन्नी भी संघर्ष करती है। बिन्नी अपने विवाह में असफल है और घरेलू हिंसा का शिकार है। किन्नी परिवार के अधुरापन से परेशान है। नाटक में दिखाया गया है। कि महिलाए घर में दबाई जाती है और उनकी इच्छाऐ दबी रहती है।

अधुरे रिश्ते, मध्यमवर्गीय जीवन को घुटन, नारी की स्वतंत्रता की तलाश। राकेश ने सावित्री को एक आधुनिक नारी के रुप में चित्रित किया है, जो पुरुष प्रधान समाज में लडती है। यह चित्रण बताता है कि महिलाएँ अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती है, लेकिन समाज उन्हे सीमित रखता है।

सार : मोहन राकेश के नाटकों में नारी जीवन का चित्रण बहुत यथार्थवादी है। उनके पात्र जैसे मल्लिका, नंदिनी और सावित्री अलग-अलग समय और परिस्थितीयों में है, लैकिन सबकी समस्या एक जैसे है, पहचान की खोज, रिश्तो का अधुरापन और समाज का दबाव। मल्लिका प्रेम में त्याग करती है, नंदिनी आध्यात्मीक खोज में लगी है, और सावित्री आधुनिक जीवन की कुंठाओं से जुझती है। राकेशजीने दिखाया है कि महिलाएँ मजबुत है, लेकिन पुरुष प्रधान समाज उन्हे दबाता है। पुरानी परम्पराओं से निकलकर महिलाएँ स्वतंत्रता चाहती है, लेकिन रिश्ते और समाज बाधा बनते है। राकेशजी का चित्रण स्त्रीवादी दृष्टिकोण से प्रभावीत है, जहाँ महिलाएँ निष्क्रिय नहीं, बल्कि सक्रिय भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष : मोहन राकेश के नाटकों में नारी जीवन का चित्रण आधुनिक भारतीय समाज की सच्चाई दिखाता है। महिलाएँ अपनी पहचान, प्रेम और स्वंतत्रता के लिए संघर्ष करती है, लेंकिन अधुरापन उन्हे घेरता है। यह चित्रण हमें सोचने पर मजबूर करता है कि समाज में नारी की स्थिति में सुधार की जरुरत है। राकेश के नाटक नारी सशक्तिकरण का संदेश देते है।

संदर्भग्रंथ :

1) आषाढ का एक दिन – मोहन राकेश

2) लहरों के राजहंस - मोहन राकेश

3) आधे-अधुरे - मोहन राकेश

मो. नं. 8888918971

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 126-132
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामवृक्ष बेनीपुरी के काव्य संग्रह 'नया आदमी' का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण

मधु कुमारी
शोधार्थी,
हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

मनुष्य अपने भावों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । भाषा के माध्यम से ही वह अपने जीवन को सुगम बनाता हैं । मनुष्य ने अपने विकास के साथ–साथ भाषा का भी विकास किया । भाषा के इसी विकास प्रक्रिया में विद्वानों ने भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया । जिसे भाषाविज्ञान कहते हैं । जिसके अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति एवं उसके विकास क्रम का अध्ययन किया जाता है । इसके अलावा भाषा में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ का भी अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है । यह सभी विषय भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं । एक सामान्य मनुष्य अपने विचारों को सामान्य ढंग से अभिव्यक्त करता हैं परन्तु एक रचनाकार अपनी रचना में सामान्य भाषा प्रयोग न कर विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है । भाषा की यह विशिष्टता ही उसकी शैली बनती है । **भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "किसी भी कार्य के करने के विशिष्ट ढंग का नाम शैली है ।"**[1] अतः कहा जा सकता है कि 'शैली' ढंग, रीति, परिपाटी का पर्याय रूप है, जिसे रचनाकार अपने भावों के माध्यम से दर्शाता है । कहने का आशय है कि रचनाकार अपने साहित्य में जब विचारों एवं भावों को अभिव्यक्ति देता है तो वह शैली का सहारा लेता है । रचनाकार शैली में शब्दों एवं वाक्यों की ऐसी व्यवस्था एवं संरचना करता है जिससे इसकी विवक्षा का सम्पूर्ण संप्रेक्षण हो जाए । **बफ़ों के अनुसार – "शैली स्वयं आदमी है ।"**[2] अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी शैली में स्वयं प्रतिबिम्बित होता है अर्थात् व्यक्ति की शैली उसके व्यक्तित्व के अनुरूप होती है । शैलीविज्ञान की परिभाषा रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में इस प्रकार है – **"शैलीविज्ञान भी साहित्य को समझने–समझाने की एक दृष्टि है जो 'शैली' के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना (स्ट्रक्चर) और गठन (टेक्सचर) पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अंतर्निहित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है ।"**[3] अर्थात शैलिविज्ञान भाषिक संरचना के साथ–साथ कृति में अंतर्निहित साहित्यिकता पर भी प्रकाश डालती हैं ।

बेनीपुरी का एक मात्र काव्य संग्रह 'नया आदमी' है । जिसमें उन्होंने भारत के पूर्व गौरव की ओर संकेत किया है और वर्तमान विषमता पर प्रहार किया है । इसके अतरिक्त उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण भी किया है । अपनी कविताओं को बेनीपुरी ने छोटे–छोटे भागों में बांट दिया है । जिस कारण उनकी कविताएँ सरल एवं सहज प्रतीत होती हैं । भाषा की दृष्टि से बेनीपुरी की कविताएँ उच्य कोटि की है । जिसमें बेनीपुरी ने शब्दों एवं वाक्यों का चुनाव बहुत सोच समझ के किया है । जिससे बेनीपुरी की परिष्कृत शैली का बोध होता है । इस कविता–संग्रह में मानव जीवन की चेतना समाहित है । जिसे बहुत

ही संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है और प्रस्तुत करने का जो ढंग है वह अपने आप में सराहनीय हैं। बेनीपुरी जमींन से जुड़े व्यक्ति हैं । उनकी लेखनी में ग्रामीण जीवन से दृश्य भी विद्यमान हैं । संवेदनशील होने के साथ–साथ वे क्रान्तिकारी भी हैं । उनके व्यक्तिव की यह विशेषता उनकी कविताओं में भी विद्यमान है । उनकी कविताएँ अपने आप में गहरे अर्थ समेटे हुयें हैं । जिसका श्रेय उनकी लेखन शैली को जाता है । अपनी शैली के दम पर उन्होंने अपनी लेखनी को भावों के सागर में डूबा के सराबोर कर दिया हैं । उनकी प्रकाशित कविताओं में महाबलिपुरम्, कलकत्ता और सिंहगढ़ प्रमुख हैं । इन कविताओं की भाषा प्रसाद गुण से संपन्न हैं । इस संग्रह में सम्मिलित कविताओं में बेनीपुरी ने भाषा के स्तर पर नवीनतम प्रयोग किये हैं । जैसे शब्दों और वाक्यों के चयन को बहुत सूझ–बूझ के साथ प्रयोग किया है । जटिल शब्दों को छोड़कर सरल–सहज शब्दवाली को अपनाया गया है । 'नया आदमी' कविता संग्रह में नया आदमी, सिंहगढ़, पचासवाँ पर किया !, किसको मैं प्यार करूँ ?, बुद्ध की मूर्ति, कलकत्ता, महाबलीपुरम्, धान की बालियाँ, बेनीपुर, बापू की समाधि पर, जय नेपाल !, बंबई, आँसुओं को बोलने दो !, जैसी कविताएँ शामिल हैं । भाव औए भाषा की दृष्टि से यह सभी कविताएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं । जिनका शैलिविज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण इस प्रकार है –

"चयन का अर्थ है 'चुनना' अर्थात् एकाधिक में किसी 'एक' को चुन लेना । शैलिविज्ञान के प्रसंग में इसका अर्थ होगा किसी भाषा में प्राप्त एकाधिक इकाइयों या व्यवस्थाओं में अपनी अभिव्यक्ति के लिए 'किसी एक को चुन लेना ।"[4] बेनीपुरी ने अपनी कविताओं के अंतर्गत बहुत ही सोच–समझकर शब्दों एवं वाक्यों को रखा हैं । 'नया आदमी' कविता में बेनीपुरी ने प्रकृति को मानवीकरण रूप में प्रस्तुत किया हैं । प्रकृति को एक रहस्मय व्यक्ति के समान दर्शाया गया है । प्रकृति का यह रहस्य पूरी कविता में बराबर बना रहता है । कविता की शुरुआती पंक्ति इस प्रकार है –

"वह कौन खड़ा है ?
सामने है जिसके,
हरा मैदान लाल रंग में नहाया हुआ "[5]

इस पंक्ति में बेनीपुरी ने 'वह' शब्द का चयन किया है । यह शब्द रहस्मय प्रकृति के लिए प्रयोग में लाया गया है । जो प्रतीक है चेतना का, खुशहाली का, करुणा का, उत्साह का । अगर रचनाकर ने 'वह' शब्द को छोड़ कर कोई नाम रख दिया होता तो वह प्रभाव विहीन हो जाता । इस शब्द के प्रयोग से रचनाकर ने पूरी रचना ने एक कौतूहलता बना कर रखा है जो कविता को रोचकता प्रदान करता है । इस 'वह' तलाश पाठक पूरी कविता में करता है । इस शब्द का चयन यहाँ सार्थक है । जो रचनाकार की शैली में रोचकता एवं कौतूहलता को जन्म देता है । इसी कविता से एक और उदाहरण इस प्रकार है –

"कण–कण स्वर्णमय,
क्षण–क्षण स्वर्णमय"
दूसरा उदाहरण इस प्रकार है –
"धीरे–धीरे चलता
ऊँघता, मचलता"
तीसरा उदाहरण इस प्रकार है –
"बछड़े उछल रहे हैं,
मेमने मचल रहे हैं,"[6]

इन तीनों पंक्तियों में रचनकार ने साम्य ध्वनि वाले शब्दों को रखा है । जिससे कविता में लयात्मकता का बोध होता है और कविता का सौन्दर्य बढ़ जाता है ।

"देखो उसके अलौकिक स्वरूप को –
उन्नत ललाट, देदीप्य मुखमंडल ;
मांसल भुजाएँ, प्रशस्त वक्षस्थल ;
पुट्ठों का विपुल उभाड़ ;
नसों में, शिराओं में

तप्त तरुण रक्त का संचार ;
सर से पैर तक –
जीवन–यौवन शौर्य–वीर्य की साक्षात् मूर्ति ;
उत्साह, उमंग और स्फूर्ति
रोम–रोम से हैं टपकते,
बरसते ;"[7]

इस पूरी पंक्ति में रचनाकार ने ज्यादातर तत्सम शब्दावली का चयन किया है । बेनीपुरी ने 'नया आदमी' की बाहरी संरचना का चित्र खिंचा हैं । इन शब्दों के माध्यम से पाठक वर्ग को पता चलता है कि उस नया आदमी की शारीरिक संरचना सुडौल है । भावों के स्तर पर उसमें नई उमंग है, नया जोश है, उत्साह है ।

"मिट्टी का पुतला यह
मिट्टी का इसको अभिमान ;
मिट्टी का बना है, पला है यह मिट्टी पर ;
मिट्टी खोद–खोदकर बनाई एक दुनिया –
दुनिया निराली रंगीन ;
देख प्रकृति दंग रही !"[8]

इस उदाहरण में कवि ने 'मिट्टी' शब्द का चयन सामान्य रूप से न कर के विशिष्ट रूप से किया गया है । 'मिट्टी' शब्द को रख कर के बेनीपुरी ने मानव को क्षणभंगुरता से परिचित करवाया है । मनुष्य को अपने ऊपर कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रकृति उस से कहीं ज्यादा शक्तिशाली हैं । इस शब्द के पीछे कवि की गहरी परियोजना है । जो मनुष्य के क्षणिक जीवन का बोध कराती हैं । मनुष्य को अभिमान रहित जीवन जीने का संदेश देती है ।

भाषा शैली के स्तर पर विचलन बेनीपुरी की कविताओं में दूसरी सबसे बड़ी विशेषता है । **"सामान्य भाषा के नियम, बन्धन चलन अथवा पथ को छोड़कर नए का अनुसरण करना नए पथ पर चलना ही विचलन विपथन है ।"[9]** अपनी कविताओं को प्रभावशाली बनाने के लिए बेनीपुरी ने भाषिक स्तर पर बहुतायत में विचलन का चयन किया है । 'नया आदमी' कविता में रचनाकार ने प्रकृति के सौन्दर्य का बहुत हो मनमोहक चित्रण किया है । जिसका उदाहरण इस प्रकार है –

"सोना घासों की तुनुक फुनगियों पर,
सोना दूबों के शर्मीले अधरों पर,
[ातों में, खलिहानों में,
घरों में, आँगनों में,"[10]

इस पंक्ति में बेनीपुरी ने 'शर्मीले अधरों पर' शब्दों का चयन किया है । 'शर्मीले' शब्द प्रयोग ज्यादातर मानव जाति के लिए प्रयोग किया जाता है परन्तु रचनाकार ने इस शब्द का प्रयोग प्रकृति के परिपेक्ष्य में किया है । जो भाषा के स्तर पर विचलन है । जिसके प्रयोग से प्रकृति का सौन्दर्य पूर्ण रूप से बढ़ जाता है । एक उदाहरण इस प्रकार और है

"धरा धसकती–सी,
कसमस में सारा भूगोल ;
हाथों में रह–रहकर ऊपर उछलता है –
हवा सिहरती सी,
काँपता–सा सारा खगोल ;"[11]

इस पंक्ति में बेनीपुरी ने प्रकृति का मानवीकरण किया है । जिसके लिए उन्होंने 'हवा', 'खगोल' को मानव द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से जोड़ा हैं । हवा सिहर नहीं सकती ना ही खगोल काँप सकता है परन्तु रचनकार ने अपनी विवक्षा के संम्पूर्ण संप्रेक्षण के लिए भाषिक विचलन का प्रयोग किया हैं। ऐसे कई उदाहरण रचनाकर ने अपनी कविताओं में प्रयोग किये हैं । जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है –

"उस दिन प्रकृति कुँआरी थी !
वृक्ष भी यहाँ थे और फूल–फूल लगते,
फल खाते बंदर–सियार,
फलों पर नाचती थी तितली
या भौंरे का होता गुंजार ;"[12]

इस उदाहरण में रचनाकार ने प्रकृति का मनमोहक चित्र खींचा हैं । फिर से लेखन ने भाषिक सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए विचलन का प्रयोग किया है । पहले वाक्य के अंतर्गत प्रकृति को एक किशोरी स्त्री के समान प्रस्तुत किया है । जिससे अभिव्यक्ति पक्ष में नवीनता का बोध होता है ।

बेनीपुरी की कविताओं में भाषा के स्तर पर बहुतायत में शब्दिक समांतरता देखी जा सकती है । **"समानांतरता से आशय है, किसी रचना में समान या विरोधी भारिक इकाइयों का समांतर प्रयोग । इसमें समान भाषिक इकाई की बार या अधिक बार आवृत्ति होती है अथवा दो अधिक विरोधी भाषिक इकाइयाँ साथ–साथ आती है ।"[13]** 'सिंहगढ़' कविता में बेनीपुरी ने इतिहास प्रसिद्ध शिवाजी के बनाए सिंहगढ़ दुर्ग पर छाछा बेचती हुई एक किशोरी की गरीबी का चित्रण किया है साथ ही महाराष्ट्र में निवास कर रहे लोगों में उत्साह भरने का प्रयास किया है । 'सिंहगढ़' कविता से एक उदाहरण इस प्रकार है –

"आज यह किसकी पुकार है,
आज यह किसकी ललकार है,
आज यह किसकी मनुहार है,
सुन लो, महाराष्ट्र के सपूतो तुम,
सुन लो, ओ राष्ट्र के सपूतो तुम,
आज क्या तुम्हारे कान बहरे हो गए ?
आज क्या तुम्हारे सारे आन–बान खो गए ?
तानाजी का वंश लुप्त हो गया !
सारा महाराष्ट्र सुप्त हो गया ?
पूना की सड़कों पर,
साइकिलें उड़ाता वह कौन है,
मोटरें दौड़ता वह कौन है,"[14]

इस उदाहरण में बेनीपुरी ने महाराष्ट्र में रह रहे लोगों में जोश उत्साह भरने का पूरा प्रयास किया हैं । इन सभी पंक्तियों को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर पता चलता है कि रचनाकर ने एक जैसी ध्वनि उत्पन्न करने वाले शब्दों का चयन किया है जो पंक्तियों को लयात्मकता प्रदान करती है । 'पुकार', 'ललकार', 'मुनहार', 'हो गए', 'खो गए', जैसे समान ध्वनि उत्पन्न करने वाले शब्दों का चयन किया है । इसके अतरिक्त 'वह कौन है' शब्दों का प्रयोग दो बार किया गया है । 'आज यह' शब्द को तीन बार रखा है एवं 'किसकी' शब्द को भी तीन बार प्रयोग में लाया गया है । कहने का भाव है की रचनाकार ने ज्यादातर शब्दों का चयन एक से ज्यादा बार किया है । जिससे उनकी अभिव्यक्ति का ढंग विशिष्ट बनता है । 'महाबलीपुरम्' कविता से एक और उदाहरण इस प्रकार हैं –

"गाओ दक्षिण के गीत,
गाओ दक्षिण भारत के गीत,
ओ उत्तर के रहनेवालो
ओ उत्तर भारत के रहनेवालो,
गाओ दक्षिण भारत के गीत !
दक्षिण भारत के गीत,
जहाँ तुम्हारी कला सुरक्षित है,
जहाँ तुम्हारा संगीत सुरक्षित है,
जहाँ तुम्हारा नृत्य सुरक्षित है,

जहाँ तुम्हारा स्थापत्य सुरक्षित है !"[15]

'महाबलीपुरम्' कविता के अंतर्गत बेनीपुरी ने दक्षिण भारत की कला संस्कृति की विशेषताओं को उकेरा हैं । इस इस उदाहरण में भी उनका यही लक्ष्य है । अपनी प्रस्तुती को प्रभाशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने एक जैसे शब्दों का बार–बार प्रयोग किया है । जैसे 'गाओ' शब्द को चार बार, 'दक्षिण' शब्द को पाँच बार, 'ओ उत्तर' शब्द को दो बार, 'गीत' शब्द को पाँच बार, 'जहाँ तुम्हारी' शब्द को चार बार प्रयोग में लाया है । इन शब्दों का बार–बार प्रयोग कविता को लयात्मकता प्रदान करता है । जिससे कविता के सौन्दर्य में बढ़ोत्तरी होती हैं । बेनीपुरी ने 'बेनीपुर' कविता में अपने गाँव का बहुत ही सुंदर चित्र उकेरा हैं । जिसके लिए उन्होंने समान भाषिक इकाइयों का चयन किया है । जिससे उनका प्रस्तुतिकरण और भी निखर गया है । यह कविता बेनीपुरी ने अपनी मातृभूमि को समर्पित किया है । जिसका एक उदाहरण इस कविता से इस प्रकार है –

"ओ री मेरी मातृभूमि,
मैं तुम्हारे गीत गाऊँगा ।
प्यारी मेरी मातृभूमि,
मैं तुम्हारे गीत गाऊँगा !
तुम्हारे गीत गाऊँगा
जिसमें होली की उमंग होगी,
जिसमें चैती की करुणा होगी,
जिसमें विरह की व्यथा होगी,
जिसमें बारहमासों की रंगीनियाँ होंगी !
जो सावन की फुहारों से भीगे–भीगे होंगे,
जो कातिक के ओसो से लदे–लदे होंगे,
जिनमें सरसों की बालियों की लहराना होगी,
जिनमें सरसों की बासंती चादर की फहरान होगी !"[16]

बेनीपुरी ने अपने ग्रामीण क्षेत्र 'बेनीपुर' का बहुत ही सुन्दर चित्र उकेरा है । जिसके लिए उन्होंने इस उदाहरण में एक शब्द को कई बार प्रयुक्त किया है । जिससे उनकी इस कविता का सौन्दर्य बढ़ जाता है । जिसके अनेक उदाहरण मिलते हैं । 'बंबई' नामक कविता में बेनीपुरी ने बंबई महानगर का चित्रण किया है । जिसका एक दृश्य इस प्रकार है –

"बिजली का यह है शहर,
बिजली से ही सारे काम होते यहाँ !
बिजली रेल चलाती है,
बिजली ट्राम चलाती है,
बिजली बसें चलाती है,
बिजली कारखाने चलाती है,
बिजली खाना पकाती है,
यहाँ कण–कण में बिजली है,
जहाँ आँखें झिपीं कि अ गए बिजली की चपेट में !"[17]

इस उदाहरण में रचनाकार ने 'बिजली' शब्द का चयन नौ बार किया है । जिसका उद्देश्य वाक्यों को लयात्मक बनाना एवं चित्रात्मकता प्रदान करना है । इस संग्रह की अंतिम कविता 'आँसुओं को बोलने दो' इस कविता में रचनाकार ने आजाद भारत की दुर्दशा का वर्णन करते हैं कि आज़ादी के बाद भी ज्यादा कुछ नहीं बदला । हमारी माताएँ, बहने अभी भी आँसू बहा रही हैं । देश को आजाद करने से पहले लोगों को गाँधी के स्वराज्य का सपना दिखाया गया । जो पूर्ण रूप से विफ़ल रहा है । क्योंकि गाँधी ने जिस स्वराज्य का सपना देखा था वैसा स्वराज्य जनता को नहीं मिला । जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है –

"यह माताओं के आँसुओं की पुकार है !

यह पत्नियों के आँसुओं की पुकार है !
यह बहनों के आँसुओं की पुकार है !
यह पिताओं के आँसुओं की पुकार है !
यह भाइयों के आँसुओं की पुकार है !
यह साथियों के आँसुओं की पुकार है !
यह स्नेहियों के आँसुओं की पुकार है !
और यह पुकार है
राम की, बुद्ध की, अशोक की, गाँधी की,
सत्य की, अहिंसा की !
सुनो, सुनो !
हटो और हटाओ !
हटो और हटाओ !
हटो और हटाओ !"[18]

भाषिक स्तर पर रचनाकर ने लगभग सभी पंक्तियों को सामान रखा हैं । एक शब्द को एक से ज्यादा बार प्रयोग में लाया है । जिससे सभी पंक्तियाँ समान रूप से अभिव्यक्त होती हैं । बेनीपुरी आम जनता के माध्यम से देश को सही दिशा ले जाने की मांग कर रहें हैं । सत्ता परिवर्तन की चेतवानी भी अंतिम की पंक्तियों में विद्यमान है ।

निष्कर्ष :– भाषिक स्तर पर बेनीपुरी ने अपनी कविताओं को एक नया रूप प्रदान किया है । जिससे उनकी कविता विशिष्ट बनती है । शैलीविज्ञान के इन उपकरणों की कसौटी पर रचनाकार की कविताओं खरी उतरती हैं यह पूर्ण रूप से देखा जा सकता है, बेनीपुरी एक उच्च कोटि के शैलीकार है जिन्होंने अपनी लेखनी से अपनी पहचान करवाई है । शब्दों के स्तर पर उनका चयन सराहनीय है । जिससे उनकी शैली में नवीनता आई है । उन्होंने भाषा के स्तर पर बहुत ही बारीक़ काम किया है । भाषा में छोटे–छोटे स्तरों पर उपयुक्त चयन किया है । जिससे उनकी सम्प्रेक्षण प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त होती हैं ।

सन्दर्भ सूचि :–

1. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 23
2. यथावत्, पृष्ठ संख्या 1
3. नरेन्द्र, डॉ अनिता, निराला के आलोचनात्मक लेखन में शैलीवैज्ञानिक मान्यताएँ, आशा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 64
4. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 68
5. शर्मा, सुरेश (सम्पा॰), बेनीपुरी ग्रंथावली, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 399
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या 399
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या 400
8. यथावत्, पृष्ठ संख्या 402
9. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 4010
10. यथावत्, पृष्ठ संख्या 399
11. यथावत्, पृष्ठ संख्या 400
12. यथावत्, पृष्ठ संख्या 411
13. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 81
14. शर्मा, सुरेश (सम्पा॰), बेनीपुरी ग्रंथावली, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 426
15. यथावत्, पृष्ठ संख्या 438
16. यथावत्, पृष्ठ संख्या 445

17. 17 शर्मा, सुरेश (सम्पा॰), बेनीपुरी ग्रंथावली, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 462
18. 18 यथावत्, पृष्ठ संख्या 476
Email id-madhugupta583@gmail,com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 133-138
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Role, Function, and Grammatical Significance of Anubandhas: Pāṇinīya Dhātupāṭha vs. Kavikalpadruma

Dr. Ahasena Begum,
Assistant Professor, Department of Sanskrit,
Shahid Matangini Hazra Govt. General Degree College for Women
Chaksrikrishnapur, Kulberia, Purba Medinipur-721649

Abstract:
This paper presents a comparative analysis of the use and grammatical function of *anubandhas* (markers) in two major Sanskrit root lexicons**:** Pāṇini's Dhātupāṭha and Vopadeva's Kavikalpadruma**.** Both texts are provided dhātu (verbal root) lists but their structural goals and ways of grammatical information differ significantly. Pāṇini uses anubandhas systematically to enrich grammatical uses and also guide derivational rules within the frame of the Aṣṭādhyāyī. Centuries later, Vopadeva, writing a more lexical and descriptive work with systematic use of anubandhas. The aim of the paper is to explore the diverse roles and grammatical significance of anubandhas in the *Pāṇinīya Dhātupāṭha* and contrasts them with the *Kavikalpadruma*.
Keywords: Anubandhas, Pāṇinīya Dhātupāṭha, Kavikalpadruma, Sanskrit grammar, Verbal roots, Comparison.

Introduction:

The Sanskrit grammar, codified by Pāṇini namely *Aṣṭādhyāyī*, is known for its methodical system of rules and technical devices. Among these, *anubandhas* stand out an integral markers used in root lists (*Dhātupāṭha*) to help morphological processes. These markers, although not pronounced in actual speech directly but they are essential in making derivations and interpretation of verbal roots. In contrast, the *Kavikalpadruma*, a lexicographic and poetic work attributed to Vopadeva, demonstrates a broader and more interpretive use of *anubandhas*.

Objective and method of the Paper:

The objective of the paper is to explore the function, nature, and implications of Anubandhas in Pāṇinīya *Dhātupāṭha* and *Kavikalpadruma*. This study also carries out a comparative analysis of the anubandhas listed in Pāṇinīya *Dhātupāṭha* and those found in the *Kavikalpadruma*.

Understanding Anubandhas:

anu paścāt badhyate anena iti anu -√bandh + ghañ > anubandha. The meaning of anubandha is to 'what is attached to'. It attached to a stem termination augment or a substitute to indicate the occurrence of some special modification such as *vikaraṇa, āgama, guṇa* or *vṛddhi*, accent etc. Actually, Anubandhas are special markers, typically letters, attached to roots or suffixes in grammatical texts to indicate specific derivational or phonological properties. These are intended for pronunciation but serve as instructions for morphological function or

classification also. For instance, the marker *'o'* attached with √*hā* roots (*ohāk tyāge)* indicates a particular grammatical category or rule association. These markers are removed (*lopa*) before actual word formation but are crucial to interpreting how roots behave in derivation.

Anubandhas in Pāṇinīya Dhātupāṭha:

The *Dhātupāṭha* of Pāṇini is a categorized list of verbal roots classified into ten conjugational classes (*gaṇas*). Each entry is rich with grammatical information encoded via anubandhas. Though Pāṇini does not use the term directly, he referred to it as *'it'*. "Eight aphorisms (1.3.2-1.3.9) composed by Pāṇini regarding *'it in his Astadhyayi Sutrapatha (henceiorth 'A')'*. According to him, 'a vowel is to be considered *'it'* if it is belongs to the *upadeśa* (original instruction in the *Sūtrapāṭha*, the *Gaṇapāṭha* or the *Dhātupāṭha)* and as a nasal.(*Upadeśe'janunāsika it* A.1.3.2**)** In accordance to Pāṇini, other aphorisms regarding '*it*' are described here in short; such as, *halantyam* (A.1.3.3) - Final consonant or the last consonant of a dhātu or Pratyaya, *na vibhaktau tusmāḥ* (A.1.3.4) - in case-endings, tavarga (c-class), *s*, and *m* are not treated as anubandhas, *ādirñṭuḍavaḥ* (A.1.3.5) – initial markers: ñi, ṭu, ḍu at the beginning of dhatus are *its*, *ṣaḥ pratyyasya* (A.1.3.6) – ṣ- at the beginning of a suffix is an *it*, *cu ṭu* (A.1.3.7) - initial cavarga (ca-class) and ṭavarga (ṭa-class) consonants in suffixes are marked as *its, laśakvataddhite* (A.1.3.8) **-** initial l, ś, and ka-varga (velars), in non-taddhita (not secondary) suffixes, called as *its.* As per Aṣṭādhyāyī aphorism 1.3.9 states '*tasya lopaḥ'*; meaning each '*it'* is deleted once its function is fulfilled.

The role of anubandha in Pāṇinīya *Dhātupāṭha*:

The Anubandha can be added with *dhātu* or *Pratyaya* in various *Dhātupāṭha* differently. Pāṇini uses total 17 anubandhas in his *Dhātupāṭha* text like as, *ā, i, ī, u, ū, ṛ, ḷ, e, o, k, ṅ, ñ, ñi, ṭu, ḍu, m, ṣ*. Among these, *'m'* anubandha added with roots as augmentation and defined them (√*ghaṭ* etc.) as *'mit'* roots. It also mentions the position of *udātta* etc. accent. Each and every anubandhas have special significance and Pāṇini make rules in support of those, like as,

Ñimidā – here marker *'ā'* is encoded with the root. As per Aṣṭādhyāyī 7.2.16 (*āditaśca*), roots with 'ā'- marker do not permit the application of the 'it' augmentation when a *niṣṭhā* suffix (such as *kta* or *ktavatu*) is subsequently added. Examples include *minnaḥ* (from *ñimidā* + *kta*) and *minnavān* (from *ñimidā* + *ktavatu*), where the expected '*it*' marker before the suffix is omitted in adherence to this restriction. Below is a list of *anubandhas* that appear in the *Dhātupāṭha*, such as –

Rootswith Markers	Anubandha (marker)	Result	Sūtra	Example
skadi	*i*	*num* augmentation	*idito num dhātoḥ A.7/1/58*	*skundate*
cyutir	*ir*	*'aṅ'* replacement in the place of '*cli'* Vikaraṇa to ir-ending roots if *Parasmaipada* suffix in later.	*irito vā A.3/1/57*	*acyutat, acyotīt*
oljī	*ī*	*'it'* augmentation is forbidden if *niṣṭhā* suffix later added.	*śvīdito niṣṭhāyām A.7/2/14*	*lagnaḥ, lagnavān*
śamu	*u*	*iḍāgama* of *'– tvā'* in duplicate	*udito vā 7/2/56*	*śamitvā, śāntvā*
ṣidhū	*ū*	*'it'* augmentation in duplicate. Roots with this anubandha are called *veṭ*.	*svaratisūtisūyatidh-ūñūdito vā A.7/2/44*	*seddhā, sedhitā*
ṭuyācṛ	*ṛ*	Roots with this anubandha don't shorten their radical vowel.	*nāglopiśāsvṛditām A.7/4/2*	*ayayācat*
gamḷ	*ḷ*	'aṅ' replacement in the place of 'cli' suffix to ḷ-marker Parasmaipada roots.	*puṣādidyutādyḷditḥ parasmaipadeṣu A.3/1/55*	*agamat*
kakhe	*e*	e-marker roots vṛddhi doesn't happened	*hyantakṣaṇaśvasajā gṛṇiśvyeditām A.7/2/5*	*akakhīt*
ohāk	*o*	After the o-marker root's, replacement is occurred 'na' instead of with 'ta'of *niṣṭhā* suffix.	*oditaśca A.8/3/45*	*hīnaḥ*
ṣūṅ	*ṅ*	ṅ- marker roots takes Ātmanepada endings.	*anudāttaṅita ātmanepadam A.1/3/22*	*sūte, sūyate*
ñidhṛṣā	ñi	past participle of roots be a symbol of an action to the present time	*ñītaḥ ktaḥ* A.3/2/187	*dhṛṣṭa*
ṭuvepṛ	*ṭu*	form an abstract noun with the suffix '-athau'	*ṭvito'thuc A.3/3/89*	*vepathuḥ*
ḍudāñ	*ḍu*	form an adjective in '-trima' in the sense of 'made'.	*ḍvitaḥ ktriḥ A.3/3/88*	*dadhrimam*
ghaṭ	*m*	these roots shorten their penultimate radical vowel in the causative system	*mitāṃ hrasvaḥ A.6/4/92*	*ghaṭayati*
kṣamūṣ	*ṣ*	form action noun in feminine with 'aṅ'	*ṣidbhidādibhyo'ṅ A.3/3/104*	*kṣamā*

Table 1: The usage of anubandha in Pāṇinīya *Dhātupāṭha*

Anubandhas function differently depending on their type and the specific grammatical role they fulfil; they are not uniformly applied across all roots or affixes. Such as, *ṅ*-marker when attached with *kṛt Pratyaya*, it prevents the *guṇa* or *vṛddhi* of root (kṅiti ca A. 1.1.5). Again in the case of *dhātu*, the *dhātu* become *Ātmanepada (anudāttaṅita ātmanepadam A.1.3.2).*

Anubandhas in Kavikalpadruma:

Most of the Post- Pāṇinian *Dhātupāṭha* followed the Pāṇinian *Dhātupāṭha*. But they have left an impression of individuality at the same time. Jainendra *Dhātupāṭha* uses two more anubandhas which Pāṇini does not used i.e. *ai* & *au*. On the other hand, *Kavikalpadruma* uses total 43 code letters. Among the Traditional Grammars, in Bengal, the fame of *Mugdhabodha Vyākaraṇa* by Vopadeva comes only after *Kātantra*. Initially, it followed Pāṇini, but it had more originality other than corresponding Grammars. *Kavikalpadruma* (henceforth the *Kkd*) by Vopadeva is an excellent text on roots. Vopadeva also wrote a commentary called *Kāmadhenu* on it.

The total number of code letters used here is 43.They are, *ā, i, ir, ī, u, ū, ṛ, ṝ, ḷ, e, ai, o, au, k, ki, kṣ, g, gi, gh, ṅ, j, ñ, ñi, ṭu, ḍu, ṇ, t, d, dh, n, p, bh, m, mi, y, r, l, li, lu, v, ś, śi* and *ṣ*. Out of these 17 viz. *ā, i, ir, ī, u, ū, ṛ, ḷ, e, o, ṅ, ñ, ñi, ṭu, ḍu, m* and *ṣ* are used here with the same significance of as in Pāṇinian *Dhātupāṭha*. Whether *k, n, p* used by Pāṇini with a different significance. Moreover, *'au'* is borrowed from Jainendra *Dhātupāṭha*. Remaining among them is Vopadeva's own creation. Another feature of it's, it classified into ten *gaṇas* but here roots are arranged in a particular alphabetic order which totally different from other Pāṇinian *Dhātupāṭha*. For that reason, he invented some specific Anubandhas. Like as, in *Bhvādi* gaṇas nothing symbol has used there for indication but for *Adādi* gaṇas- l, *Juhotyādi*- li, *Divādi*- y, *Svādi*- n, *Tudādi*- s, *Rudhādi*- dh, *Tanādi*- t, *Kryādi*- g, *Curādi*- k etc. used individually.

Comparative Analysis:

Ā- as per Pāṇini '*it'* augmentation is not allowed in ā-marker roots if *niṣṭhā* suffix is later added. According to Kkd, same significance revealed with Pāṇinian *Dhātupāṭha* ā (*niṣṭhābhāvādikarmaveṭ 7.c, p.2)*

I – same significance as Pāṇinian *Dhātupāṭha (ir numvān 7.d, p.2)*

IR – Roots bearing this *anubandha* optionally take the aorist affix 'a' (*aṅ*) in stem formation(*ir vā (aṅvān)8.b.*). This is also used with same significance as Pāṇinian *Dhātupāṭha*. Like that, ī (*īr aniṇniṣṭhaḥ 7c),* u *(uḥ ktvāveṭ 7d), ū (ūs tu veṭkaḥ7d), ṛ, ḷ (ḷr aṅvān8ab), e (eḥ siciavṛddhih8bc), o (or niṣṭhātanaḥ 8d), ṅ (ṅas taṅvān kartari9cd), ñ, ñi (ñiradya-ktaḥ 10a), ṭu (ṭuḥ sāthuḥ 10b), ḍu (ḍus trimagyutah10b), m (mo ṇiciṇṇamoḥ dīrgho vā11b)* and *ṣ (ṣ kṛdaṅvān12c)* etc. markers are used in Kkd with same function. Rest of the *anubandha* discussed here. A correspondence table of comparison has prepared here,

Anubandhas	Pāṇinian *Dhātupāṭha*	Significance in Kavikalpadruma
k	✓	Roots with the *anubandha* '*k'* belong to the tenth or Cur- class(*kaś curādiḥ, kis tu vā Kkd 9a)*
ki	×	the roots which belong to the *Cur*-class alternatively included into general or *Bhū*-class also.
kṣ	×	the roots with this *anubandha* belong to the jakṣa class.
g	×	*kryā*-class root
gi	×	*pū*-class root
gh	×	*rud*-class root
ai	×	belong to the '*yaj'* class
au	×	Aniṭ roots (Consonant)
j	×	*jvalādi* roots
ṇ	×	belong to the '*phaṇ*-class'.
t	×	regarded as ending in *'a'*
d	×	belong to the eighth class.
dh	×	belong to the '*rudh*- class'.
n	×	belong to the '*su*- class'.
p	×	belong to the '*muc*- class'.
bh	×	belong to the '*śam*- class'.
y	×	belong to the '*div*- class'.
r	×	restricted for Vedic roots.
l	×	*ad*-class
li	×	*hu*-class
lu	×	*svap* class (within *ad*-class)
v	×	*vṛt*-class
ś	×	*tud*-class
śi	×	*kuṭ*-class

Table 2: The significance of anubandhas in Kavikalpadruma

Conclusion:

In conclusion, it can be said, that, this study reveals a functional evolution in the use of *anubandhas* from the grammatical tradition of Pāṇini's *Dhātupāṭha* to the more systematized and innovative approach of Vopadeva in the *Kavikalpadruma*. In Pāṇinīya *Dhātupāṭha, anubandhas* primarily worked as a technical marker. However, Vopadeva introduces an important change by reinterpreting and expanding the role of *anubandhas*. The verbal roots he has arranged in strict alphabetical order, and the added anubandhas are no longer mere grammatical markers but serve as functional symbols to clearly indicate class membership. So any root presented without a class-indicating *anubandha* is to be understood as belonging to a predetermined class, thereby systematizing class association through symbolic absence or presence. Furthermore, Vopadeva refines the use of *anubandhas* to indicate sub-classifications.

References:

1. Abhyankar, Kasinath Vasudev. *A Dictionary of Sanskrit Grammar; revised in collaboration with J. M. Shukla.* Gackwad's Oriental Series 134. 1st edition 1961, Baroda: Oriental Institute, 1977.
2. Bandopadhyaya, Devendra Kumar. (Ed.) *Pāṇinir Aṣṭādhyāyī* with *Prabhā* commentary, reprint, Kolkata: Sadesh, 2003.
3. Brahmacārī, Nirañjanasvarūpa.(Ed.) *Vopadevakṛtam Mugdhabodhavyākaraṇam* (with commentaries by Durgādāsa Vidyāvāgīśa and Rāmacarana Tarkavāgīśa),1st edition, Kolkata: Sanskrit Pustak Bhandar, 1391.
4. Das, Karunasindhu. (Ed.) The *Dhātupradīpa by Maitreya Rakṣita with vivaraṇa by Śrīśacandra Cakravartin,* 1st edition, Kolkata: Sanskrit Pustak Bhandar, 2007.
5. Devasthali, G. V. *Anubandhas of Pāṇini.*1st Edition, Poona: University of Poona, 1967.
6. Mīmāṃsaka, Yudhiṣṭhira. (Ed.) *Kṣīrataraṅgiṇī, Kṣīrasvāmīviracitā*, Sonipat: Mantri Śree Ramlal Kapoor Trust, 1958.
7. Palsule, G.B. (Ed.) *Kavikalpadruma of Vopadeva*, 1st edition, Sources of Indo-Aryan Lexicography: 15, Poona: Deccan College, Post-Graduate & Research Institute, 1954.

Email - ahsanb.snsk93@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 139-141
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पौराणिक आख्यानों पर आधारित नरेंद्र कोहली के उपन्यासों की प्रासंगिकता

आयुष तिवारी
शोधार्थी,
लखनऊ विश्वविद्यालय।
डॉ मनोज कुमार पांडेय,
शोध निर्देशक,
कालीचरण पी. जी. कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ।

उपन्यास को साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में जाना जाता है और साहित्य - मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति। जीवन जगत की जितनी सुंदर अभिव्यक्ति उपन्यास में होती है, उतनी साहित्य की अन्य किसी विधा में नहीं होती है। जीवन का जितना विस्तृत चित्रण उपन्यास के द्वारा किया जा सकता है, उतना किसी भी अन्य साहित्यिक विधा के द्वारा संभव नहीं है। समाज में घटित हो रही प्रत्येक घटनाओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपन्यासकार उपन्यास की रचना करता है और यही कारण है कि आज भी उपन्यास अपनी प्रासंगिकता को बनाए हुए हैं। "उपन्यास शब्द उप जिसका अर्थ - समीप या निकट तथा न्यास जिसका अर्थ - रखना है, के योग से बना है। इस प्रकार उपन्यास शब्द का अर्थ हुआ समीप या निकट रखी हुई वस्तु।"[1] अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर पाठक को यह आभास हो कि उपन्यासकार हमारी ही कथा को हमारी ही भाषा में कह रहा है। किसी प्रसिद्ध पूरा कथा को माध्यम बनाकर लिखे गए उपन्यास को पौराणिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। पौराणिक उपन्यास केवल एक काल विशेष की घटना नहीं है, अपितु इन उपन्यासों में उपन्यासकार पौराणिक ग्रंथों में निहित मूल्यों को पौराणिक चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

समकालीन हिन्दी कथाकारो में नरेन्द्र कोहली एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। महाकाव्यीय कथावस्तु के धरातल पर उन्होंने पौराणिक युग के आख्यानों को अभिनव स्वरूप में चित्रांकित करते हुए तर्कमयी युग दृष्टि से ओत-प्रोत मौलिक उद्भावनाये प्रस्तुत की हैं। पौराणिक आख्यानों के अमानवीय, दैवीय तथा अद्भुत चमत्कारिक संदर्भों को नरेन्द्र कोहली ने तर्कसम्मत बौध्दिकता से संवेष्टित कर उन्हें मनौवैज्ञानिक धरातल पर जीवन्त किया है।

किसी भी कृतिकार द्वारा अपनी संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता का अनुभव उस साहित्य के लिए शुभत्व का संकेत है। यह उपक्रम उस समय और महत्त्वपूर्ण हो उठता है, जब कोई कृतिकार वैज्ञानिक आलोक में आधुनिक जीवन - दर्शन की पड़ताल करना चाहता हो और प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति अंधाग्राही न हो। यह

प्रक्रिया उस युग में विशेष सार्थक और प्रासंगिक समझी जानी चाहिए, जिसमें प्राचीन संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों की महत्ता को लेकर महिमामण्डित नारे लगाए जा रहे हैं। यह मोह पुनरुत्थानवादी मूल्यों को संबध्द करके मानवीय विकास की प्रगतिमयी संभावनाओ का पथ अवरुध्द करता है। इससे प्रगतिगामी मूल्यों की अवांछनीय तमिस्रा का पथ प्रशस्त होता है।

साहित्य रचना के समय पौराणिक कथानक तथा पात्र आकर्षण के प्रमुख केन्द्र होते हैं। यह स्थिति हिन्दी कथा साहित्य की ही नहीं अपितु प्रायः सभी भाषाओं के कथा साहित्य की है। इसका प्रमुख कारण यह है कि, शताब्दियों से प्रचलित आख्यान धीरे-धीरे अर्धचेतन या अचेतन में स्थान बना लेते हैं, किन्तु पुनराख्यान दो धारी तलवार है, तनिक - सी असावधानी सम्पूर्ण प्रयत्न को अनाकर्षक और कभी - कभी तो उपहासास्पद तक बना देती है। समसामयिकता का मोह जैसे ही उत्तेजना का रूप धारण करता है, समूची कृति अविश्वसनीय लगने लगती है। ऐतिहासिकता के खण्डित हो जाने के कारण समूची कृति एक कठघरे में खड़ी हो जाती है। दूसरी ओर पौराणिकता का अनावश्यक समावेश भी रचना को अनाकर्षक बना देता है। इस प्रकार कृतिकार को दोहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। पौराणिकता को अक्षुण्ण बनाये रखने का दायित्व तथा समसामयिकता के भरपूर किन्तु गोपनीय समावेश का दायित्व।

नरेन्द्र कोहली ने राम - कथा पर आधारित वस्तु विन्यास को सांप्रतिक युग -बोध, तर्क तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं से परिपुष्ट कर वृहद उपन्यास का सृजन किया। इस कृति में अतीत के आख्यान को समकालीन दृष्टि तथा सरोकारो से संवेष्टित करके प्रस्तुत किया गया है। स्थान - स्थान पर कृतिकार की प्रगतिशील दृष्टि के दर्शन होते हैं, जिसमें प्रतिगामी मूल्यों को ध्वस्त करके पतनशील समाज के स्थान पर अभिनव समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है। अहल्या प्रसंग में पौराणिक प्रस्तुति के अनुसार इन्द्र द्वारा अहल्या का शील भंग होने पर अहल्या के पति गौतम ऋषि से अभिशप्त अहल्या पत्थर की हो गई थी। नरेन्द्र कोहली ने इस प्रसंग को तर्क तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा। नरेन्द्र कोहली ने इस अंधकार आच्छादित सत्य का उद्घाटन इस प्रकार किया है कि राम ने अहल्या पर हुए अत्याचार को समझा। अहल्या के आश्रम जाकर उन्होंने निरपराध नारी को सामाजिक मान्यता दी। जब राम अहल्या को सम्मान तथा मान्यता दे रहे हैं, तो समाज की नपुंसक चेतना को न्याय के पक्ष में जाने और अहल्या को मान्यता देने का साहस तथा बहाना मिला। जनश्रुति तथा पौराणिक आख्यान के अनुसार यही अहल्या का पत्थर से सजीव नारी के रूप में रूपांतरण था, जिसे नरेन्द्र कोहली ने पुनराख्यायित करके स्वाभाविक रूप प्रदान किया। इस उपक्रम में नरेन्द्र कोहली की मौलिक प्रयोगधर्मिता परिलक्षित होती है- "शिलाओं को पिघला देने वाली राम की मुस्कान अधरों पर आई - देवि आप मुझे इतना महत्त्व न दें। मुझे ही अपनी ओर से कुछ कहने दें। मैं समूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा-याचना माँगता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उससे प्राण दण्ड दूंगा। मेरी आयु अभी इतनी नहीं, मेरा ज्ञान भी इतना नहीं, जितना इन ऋषियों, तपस्वियों, मुनियों और साधकों का है। मेरे सम्मुख तो अपना मार्ग भी स्पष्ट नहीं है परन्तु मैं अत्यंत चकित और पीड़ित हूँ। ये लोग जानते है कि सत्य क्या है,उचित क्या है, न्याय क्या है? किन्तु फिर भी ये सबके सब, किस भय से निष्क्रिय और जड़ पड़े हुए हैं। आपने कहा है देवि! इन सबको युग-पुरुष की प्रतीक्षा है, जो इन्हें जड़ता से उबार कर, नवजीवन दे सके; किन्तु वह पुरुष मैं ही हूँ, यह कोई कैसे कह सकता है, मैं स्वयं भी कैसे कह सकता हूँ। पर हाँ, मैं इस जड़ता को यथाशक्ति तोडूं। मैं कौशल्या पुत्र बचन देता हूँ कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं इस गलित समाज का नाश कर नया समाज बनाऊंगा।”[2]

आज के समय में विश्व के सभी देश शस्त्र एवं हथियार बनाने की होड़ में लगे हुए हैं। इन हथियारों के निर्माण में एवं उनके परीक्षण में पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति पहुंच रही है। उपन्यासकार नरेंद्र कोहली ने इस समस्या को पहचानते

हुए महासमर भाग 5 अंतराल में नारद एवं अर्जुन के आपसी संवादों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि जब भी मनुष्य इन हथियारों का प्रयोग करता है तो उससे प्रकृति एवं जीव जंतुओं को सर्वाधिक क्षति पहुंचती है। वे लिखते हैं - "तुमने नहीं सोचा पुत्र की उसके परीक्षण से यहां की प्रकृति नष्ट होगी। प्राकृतिक संतुलन बिगड़ेगा।तुम्हारा ध्यान इस और नहीं गया कि यह दिव्यास्त्र बिना किसी विशिष्ट लक्ष्य के मात्र परीक्षण के लिए नहीं चलाए जाते। नारद ने क्षण भर रुक कर उसकी ओर देखा, इस समय तुम्हें अपने प्राणों का किसी ओर से भय नहीं है तो अन्य जीव जंतुओं के प्राणों के लिए तुम क्यों भय बन जाते हो।"[3] इसके अतिरिक्त नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास महासमर भाग 4 धर्म में यह स्पष्ट किया है कि पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए जंगल का होना अति आवश्यक है। नरेंद्र कोहली ने युधिष्ठिर के माध्यम से विकास कार्यों और प्राकृतिक संसाधनों के बीच के संतुलन को बनाए रखने का सुझाव दिया है। जब युधिष्ठिर इंद्रप्रस्थ राज्य की स्थापना करते हैं तब वह वनों को नष्ट न करने का संकेत देते हैं और वनों के महत्व को उजागर करते हैं - "उसे ध्वस्त करने का हमें कोई लाभ नहीं। युधिष्ठिर ने कहा नगर के निकट वन रहेगा तो हमें फलों, लकड़ी, पत्तों तथा अन्य वस्तुओं की सुविधा भी रहेगी। वायुमंडल शुद्ध रहेगा। वर्षा अच्छी होगी। पशुओं के लिए गोचर भूमि तथा वनस्पतियों की उपलब्धता रहेगी। खांडव वन को नष्ट करने का हमें कोई लाभ नहीं है। यह न होता तो कदाचित हमें अपने नगर के निकट एक वन उगाना पड़ता।हम खांडव वन को इसी प्रकार बनाए रखेंगे।"[4] इस प्रकार उपन्यासकार ने पर्यावरण के महत्व को उजागर करते हुए उसके संरक्षण प्रबल दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक वस्तु विन्यास को अपनी प्रयोगधर्मिता से लौकिक, विश्वसनीय, तर्क संगत तथा सामाजिक संदर्भों के लिए उपयोगी बनाया है। वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर अभ्युदय उपन्यास की रचना की गयी है। लेखक ने रामायण के पात्रों तथा प्रसंगों के माध्यम से युगीन समस्याओं और उनके समाधान के दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किए हैं। पौराणिकता के निर्वाह का प्रयास करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यासों को प्रासंगिक तथा मानवीय अनुभूतियों से जोड़ कर रखा है। नरेंद्र कोहली के सभी पौराणिक उपन्यासों के पात्र ईश्वरीय ना होकर मानवीय रूप में पाठकों के समक्ष आते हैं और यही कारण है कि उनके उपन्यास उन पौराणिक कथाओं की प्रासंगिकता को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 93।
2. नरेंद्र कोहली, अभ्युदय भाग 1, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2018, पृष्ठ 183।
3. नरेंद्र कोहली, महासमर भाग 5 अंतराल, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 323।
4. नरेंद्र कोहली, महासमर भाग 4 धर्म, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 51।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 142-145
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'सोशल मीडीया का छात्रों पर पड़ता प्रभाव'

सोनाली अवसरमोल
शोध–छात्रा,
डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर मराठवाडा वश्वविद्यालय, औरंगाबाद

प्रस्तावना :

आज के युग में सोशल मीडिया हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। जैसे कि फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, और स्नैपचौट, वीडियो शेयरिंग, स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म, चर्चा मंच, ब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म और सहयोगी परियोजनाएँ जैसे प्लेटफॉर्म्स ने जिस तरह से हमारे विचारों के आदान.प्रदान और एक–दूसरे से जुड़ने के तरीको को बदल दिया हैए वह अभूतपूर्व है। हालांकि, जहाँ सोशल मीडिया के कई सकारात्मक पक्ष हैं, जैसे कि जानकारी का आदान–प्रदान और लोगों का आपस में जुड़ना, उनका मनोरंजन करना है, वहीं इसके नकारात्मक प्रभाव भी कम नहीं हैं, खासकर स्कूल और कॉलेज के छात्रों पर। यह लेख उसी सोशल मीडिया के छात्रों पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करता है।

बीज शब्दः सोशल मीडिया, सकारात्मक प्रभाव, नकारात्मक प्रभाव, युवा पीढ़ी, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, इंटरनेट, साइबर बुलिंग, मानसिक स्वास्थ्य।

सोशल मीड़या क्या है? यह आज के युग में बताने की जरूरत नही है... आज के समय में बच्चे बुढे अच्छे तरीके से जानते है के सोशल मीडीया क्या है? फेसबुक, व्टिटर, व्हाटसअप, इन्स्टाग्राम, युटुब, लिंकडिन, गुगल प्लस आदि का ही रूप है, इनके जरीए हम अपने विचारों का अदान–प्रदान करते है... सोशल मीडीया एक ऐसा प्लेटफॉर्म है, जिसकी मदद से हम अपने कार्यो को एक जगह से दूसरे जगह तक बडे ही आसानी से पहूँचा देते हैं... सोशल मीडीया में एक या दो ही व्यक्ती नहीं अपितु अनेकों लोग एक साथ जुड़ सकते है... वर्तमान स्वरूप का काम पुरी तरह ऑनलाईन हो चुका है, इस का उपयोग हर जगह हो रहा है, जैसे सरकारी दफ्तर, बॅकों में, स्कुल में, निजी ऑफीस में हो रहा है... इसका उपयोग ज्यादातर हम फोन और कम्प्युटरद्वारा करते है... यह ऑनलाईन के जरिए कार्य करता है... इसके जरीए हम एक मिनट में लाखो रुपये एक जगह से दुसरी जगह भेज सकते है...

सोशल मिडियाने जीवन बहुत आसान कर दिया है... यहॉ तक हमने सोशल मिडिया की सकारात्मक भूमिका देखी है... पर यह जीतना सकारात्मक है उतना ही नकारात्मक भी है... 2019 में करोना की महामारी के कारण सोशल मिडिया पर ज्यादा असर हुआ सारे काम घर बैठे ऑनलाईन तरिके से होने लगे बच्चे घर से पढ़ने लिखने लगे, इंटरनेट, फोन, लॅपटॉप, कम्प्युटर की माँग बढ़ गई इसका सिधा असर हमारे जीवन पर हुआ... सोशल मिडिया के जितने फायदे है, उतने नुकसान भी हैं... बच्चे से लेकर बड़े तक सोशल मिडिया से बंध गए हैं... ज्यादा तर नुकसान युवा पिढी पर हुआ है... छात्रोंपर मीडिया का गलत

प्रभाव हो रहा है... इसकी लत छात्रों में ज्यादा लगती है... वे इंटरनेट पर ज्यादा आकर्षित हो रहे है... उनका समय बर्बाद हो रहा है, इससे छात्रों के करिअर में प्रभाव पड़ रहा है... पढ़ाई से ध्यान हट रहा है, चौबीस घंटो में से सात, आठ घंटे तक मोबाईल पर समय बिताते है, हर दो से तीन मीनट के अंदर अपने मोबाईल को चेक करते है, उसमें सोशल मीडिया पर जाकर वह लोगों के कमेन्ट्स और अपने द्वारा दिये गए कमेन्ट्स पर लोगों की राय आदि को देखते ही है, सिखने से ज्यादा समय बिताना यानी टाईमपास हो रहा है... छात्रों पर इसका भयानक परिणाम हो रहा है...[1]

सोचो अगर चोबीस घंटे के लिए इंटरनेट सेवा बंद कर दी तो क्या होगा? जाहिर है, हा–हा कार मच जाएगा... छात्रों पर मानसिक और शारीरिक प्रभाव हो रहा है, उनकी ऑखो पर असर हो रहा है, दिमाग में असर हो रहा है, पिकनिक और पार्टी इत्यादी फुटेज लोग अपने सोशल मिडिया पर डालना नही भूलते, सोशल मिडिया के जरीए हम अच्छे–बुरे खबर तुरंत प्राप्त कर लेते है, पर सोशल मिडिया ने पहचान की चोरी, विवरण चोरी, सायबर धोकाधडी, हैकींग और वायरस के हमलों की संभावना को बढ़ावा दिया है, यदी आपने अपना फोन नंबर, कार्यस्थल और अपने परिवार की जानकारी किसी सोशल मिडिया की साईट पर अपडेट की है तो कुछ लोग उस जानकारी का गलत फायदा उठाते है और गलत काम करते है,

टेक्नॉलॉजी की वजह से दुनिया आगे तो बढ़ रही है पर कुछ विचार पीछे जा रहे है... बच्चों को सोशल मिडिया और इंटरनेट पर सबकुछ आसान से मिल जाता है, बच्चों को इंटरनेट पर कार्टून देखना और गेम खेलना पंसत है, कभी–कभार ऐसा करते हुए, बच्चों को ऐसा कुछ दिख जाता है, जिसकी छाप उनके दिमाग पर लंबे समय तक रह जाती है... जिसकी वजह से सोशल मिडिया का बच्चों पर गलत प्रभाव भी देखा जा सकता है, और कभी–कभी बच्चें गलत शब्द घर में इस्तमाल करते है, बच्चे सोचने से पहले ही गुगल करते है... सिक्के की तरह हर चिज के दो पहलु होते है... एक अच्छा और दुसरा बुरा इसकी तरह सोशल मिडिया का बच्चों पर प्रभाव भी दो तरह से हो सकता है...[2]

सोशल मिडिया का सर्वाधिक प्रयोग युवा वर्ग कर रहा है, व्हॉट्स अप, और फेसबुक जैसी सोशल मिडिया साईट पर अत्याधिक समय व्यतीत करने से युवा वर्गपर इसका नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित होता है जो समय पढ़ाई करणे में व्यतीत होना चाहिए... उसका काफी कुछ हिस्सा सोशल मिडिया पर चला जाता है, जिसका उन्हें कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता है... दुसरे शब्दों में कहा जाए तो यह समय का अपव्यय है... 'फेसबुक पर नित्य प्रोफाईल बदलना दिन में कईबार स्टेटस अपडेट करना, धंटो फेसबुक पर मित्रों के साथ चैटींग करना जैसे आदतो में युवा पीढीं को काफी हद तक प्रभावित किया है... घंटो तक फेसबुक चिपके रहने से न केवल उनकी पढ़ाई प्रभावित हो रही है, बल्कि कुछ नया रचनात्मकता करना भी खत्म हो रही है... सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से तमाम अश्लील सामग्री और भडकाऊ बाते भी लोगों तक प्रसारित कि जा रही है, जो कि लोगों के मनोमस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालती है... सोशल नेटवर्कींग साइट्स में लोगों को वास्तविक जीवन की बजाय आभासी जीवन में रहने को मजबूर कर दिया है... ''यह ऐसा खेल बन चुका है, जहॉ एक दुसरे के साथ लाइक और शेअर के साथ दुख और सपने बांटे जाते है, और अगले ही क्षण रिश्तों को ब्लॉक कर दिया जाता है...'' कई बार युवाओं के मानसिकता पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है...[3]

इंटरनेट का सकारात्मक प्रभाव महिलाओं के जीवन में देखा जा सकता है... परिवार के दायरे में रही महिलाएँ यहॉ अपनी क्षमता दिखाने और पहचानने को तत्पर दिखती है... तभी तो महिलाएँ घरमें घरेलु कार्यों के साथ–साथ अपने दिलो दिमाग में यह भी मंथन कर रही होती है, वह आज वह किसी मुद्दे को लेकर सोशल साइट्स पर लिखेगी? जिन मुद्दों और बातों को लेकर घर और समाज में बोलने की बंदिशे है, वे सोशल साइट्स पर खुलकर शेयर की जा रही है, और उनपर अच्छी खासी बहस भी हो रही है... यहॉ तक कि सोशल मिडिया के मामलें में घरेलु महिलाएँ कामकाजी महिलाओं से ज्यादा सक्रीय है, अनुभवों और आपबीती को साझा करने से व्यक्तित्व के कितने सुखद पहलू सामने आ सकते है आगे बढ़ने का किस कदर

संकल्प जाग सकता है, सोशल मिडिया इसका ज्वलंत उदाहरण है... दिल्ली में हुए गैंगरेप और 5 साल की बच्ची के वीभत्स बलात्कार के बाद उत्पन्न स्थिती में तमाम महिलाओं ने सोशल मिडिया के जरीए न केवल आंदोलन की रुपरेखा तय की बल्कि महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता से लेकर असहिष्णू होते समाज पर लाखों लोगो द्वारा की गई टिप्पणियों ने ऐसे कुकृत्य के विरुध्द एक माहौल भी बनाया... नतीजा सामने था, और सरकार को कारवाई करनी पड़ी...[4]

सोशल मिडिया में सबकुछ अच्छा हो ऐसा नहीं है, महिलाओं पर सकारात्मक ही नहीं नकारात्मक प्रभाव भी हुआ है... इसमें स्कूल की लड़कियॉ भी शामिल है... कई बार महिलाओं के नाम से और लडकियों के नाम से फर्जी प्रोफाईल बनाकर भी दुरुपयोग किया जाता है... कई बार इंटरनेटपर महिलाओं को बदनाम करने की साजिश कि जाती है... सोशल नोटवर्कींग साइट्स पर डाली गई जानकारी व फोटो के दुरूपयोग के कई मामले सामने आए है... कुछेक महिलाओं को अकाउंट को उनके ही दोस्तों द्वारा हैक करके आपत्तिजनक स्टेटस और फोटो पोस्ट करने जैसे तमाम शिकायते सामने आई हैं... ऐसे में अपनी किसी निजी बात या निजी जानकारी मसलन ई–मेल, पत्ता, फोन नम्बर को शेयर करना खतरनाक भी हो सकता है... कई बार तो कुछेक लोग महिलाओं की स्वतंत्रता को बर्दाश नहीं कर पाते और सोशल मिडिया मे अनाप–शनाप टिप्पनियॉ भी करते दिखते है...[5]

छात्रों पर हो रहा नकारात्मक प्रभाव से शारीरिक बीमारियॉ हो रही है, क्योंकी अधिक समय घर पर बैठने से शारीरिक कार्य कम हो रहे है डॉक्टरने मरिजों के बीमारी का कारण बताया है की, वे 10 से 12 घंटे इंटरनेट पर समय बिताते है, यह नशा इतना सिर चढ़कर बोलता है कि वे अपने परिवार को समय नहीं दे पा रहे हैं... उनके परिवार वाले जब पढ़ने के लिए किताबों की बाते करते हैं तो वे उसका विरोध करते हैं तो कई बार वे आक्रमक हो जाते है और तो और अगर इंटरनेट ठीक से काम नही करता है तो उनमें गुस्से का अलग रुप सामने आता है, कई महानगरों में सोशल मिडिया एडिक्ट के इलाज के लिए डी–एडिक्शन सेंटर खुल रहें हैं... इससे साफ है कि सोशल मिडिया का इस्तेमाल अब बीमारी का रुप ले रहा है...[6] फिलहाल, इसमें कोई दो राय नहीं है कि सोशल मिडिया आज लोगों के लिए बहुत आवश्यक हो गया है, लेकिन इसका जो दूसरा पहलू है, जो नकारात्मक है, उससे बचने की जररुत है, क्योंकी जब किसी भी चीज का दुरूपयोग होने लगता है तो वो वरदान नहीं अभिशाप बन जाता हैं...

उपसंहार :

इस विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि सोशल मीडिया एक दोधारी तलवार है। जहाँ एक ओर यह संचार और जानकारी के आदान–प्रदान एक शक्तिशाली माध्यम है, वहीं दूसरी ओर इसके अत्यधिक और गलत उपयोग से से गंभीर परिणाम हो सकते हैं, खासकर छात्रों पर। सोशल मीडिया ने दुनिया को करीब लाया है और लोगों को अपने विचार व्यक्त करने का मंच दिया है, लेकिन इससे पहचान की चोरी, धोखेबाजी और साइबरबुलिंग जैसी समस्याओं को भी जन्म दिया है।

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि, सोशल मिडिया का छात्रों पर नकारात्मक प्रभाव की संभावना ज्यादा है... सोशल मिडिया के साइट के उपयोग करने के पहले कभी–कभी पुस्तकें पढ़ा करते थे, लेकिन अब 44.44 प्रतिशत लोगों ने यह माना कि सोशल मिडिया के उपयोग करने के बाद उनकी पढ़ने की आदत पर असर पड़ा है... अब छात्र पहले से कम पढ़ाई करते है...

सोशल मिडिया सूचनाओं का सागर है, युवाओं के विकास में यह सकारात्मक जानकारी ही नहीं बल्कि दिमाग पर असर करने वाली नकारात्मक जानकारी भी प्राप्त होती हैं... इससे छात्रों का शारीरिक और मानसिक संतुलन बिघडता हैं...

संदर्भ सूची –

1. 'सोशल मिडिया का प्रभाव' hindi-essay.com
2. 'हैलो स्वास्थ्य भारत' heelloasthya.com

3. 'लोकतंत्र और सोशल मिडिया' www.ijesrr.org
4. 'सोशल मिडिया और आधि आबादी के सरोकार' पृष्ठ संख्या 36.
5. वही, पृष्ठ संख्या, 39
6. सोशल मिडया के उपयोग के बाद युवाओं की पुस्तकों से बढ़ती दूरी का अध्ययन पृष्ठ संख्या, 33

मो.नं. 9767377380
ईमेल – sonaliawasarmol86@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 146-149
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतेन्दु और हिन्दी नवजागरण

डॉ. सुनीता राठौर
सहायक प्राध्यापक हिन्दी,
शासकीय एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय चाम्पा

भारतेन्दु हरिशचंद्र का समय उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण का समय था। वह दो विपरीत स्थितियों के संधिकाल का समय था। एक ओर 1857 की जनक्रांति की असफलता के कारण चारों ओर निराशा का वातावरण व्याप्त था, वहीं दूसरी ओर स्वामी दयानंद और राजा राममोहन राय के विचारो के कारण समाज में नूतन जागरण और नई आशा का संचार भी हो रहा था। निराशा और आशा की मिलन रेखा के ऐसे विषम समय में भारतेन्दु आशा की रेखाओं को घनीभूत करने के लिए साहित्य मंच पर अवतरित हुए।

आधुनिक काल –

आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरंभ उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ से माना जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के बाद आधुनिक काल आता है। इसका आरंभ 1850 के आस पास से माना जाता है, यह सन् भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म काल है। उस दौरान विभिन्न आंदोलन, संघर्ष और 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ। भारतीय और यूरोपीय संस्कृति और आदर्शो के संघर्षो से भारतीय जीवन में नवजागरण का स्पंदन प्रारंभ हुआ था, इस कारण भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल भी कहते है।

भारतेन्दु और उनका मंडल –

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिन्दी गद्य का जनक माना जाता है। भारतेन्दु द्वारा प्रयुक्त हिन्दी 'हरिश्चंद्री हिन्दी' मानी जाती है।

भारतेन्दु–मंडल के अन्य सहयोगी लेखको में पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहन सिंह आदि प्रमुख थे। आचार्य शुक्ल ने बालकृष्ण भट्ट की तुलना एडीसन तथा प्रतापनारायण मिश्र की तुलना स्टील नामक अंग्रेजी गद्य लेखको से की है।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध्द की हिन्दी पत्रकारिता –

हिन्दी में पत्रकारिता का उदय सन् 1826 में प्रकाशित 'उदन्त मार्तण्ड' से आरंभ होता है। संवत् 1902 में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने बनारस सें
'बनारस अखबार' निकाला इसके बाद 1907 में बाबू तारामोहन मित्र ने एवं उनके साथियों ने बनारस से ही 'सुधाकर' प्रकाशित किया।

आधुनिक युग के दौरान सास्कृतिक पुनर्जागरण में विभिन्न संस्थाओं का योगदान–

1. **ब्रंहमसमाज** – राजा राम मोहन राय ने सन् 1829 ई. में राष्ट्रीय जागरण एवं सास्कृतिक पुनरूत्थान के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना। राजा राममोहन राय ने कर्मकाण्ड, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, बाह्यआडंबर, जातिप्रथा, सतीप्रथा आदि बुराईयों का विरोध किया। राजा राम मोहन राय ने 'संवाद–कौमुदी' की रचना की।
2. **आर्य समाज** – आर्य समाज की स्थापना सन् 1867 में दयानंद सरस्वती द्वारा की गई। दयानंद सरस्वती जी ने अपनी प्रसिध्द रचना 'सत्यार्थ–प्रकाश' में इसाई एवं मुस्लिम धर्मो की आलोचना की।

3. **रामकृष्ण मिषन** – रामकृष्ण मिशन की स्थापना रामकृष्ण परमहंस के स्वर्ग गमन के बाद उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने की थी।
4. **थियोसोफिकल सोसायटी** – इस संस्था की स्थापना 1875 ई. में मैडम ब्लावस्तु और ओनकार्ट द्वारा न्यूयॉर्क में हुई थी। श्रीमती एनीबेसेंट 1888 में संस्था से जुड़ी। बनारस का सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की सोसायटी द्वारा स्थापित किया गया।

भारतेन्दु युग का साहित्य (1850–1900) –

भारतेन्दु हरिशचंद्र को हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तक साहित्यकार माना जाता है। नई चेतना से युक्त होने के कारण हिन्दी साहित्य रीतिबध्दता से मुक्त हुआ।

भारत में अठारहवीं सदी के उत्तराध्र्द से अंग्रेजो का वर्चस्व हो गया, उन्होने भारत के उद्योगों को नष्ट कर दिया। लुटेरी व्यापार–नीति से भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को रोका। इसका परिणाम 1857 का सिपाहीं विद्रोह था। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है – ''भारतेन्दु–युग'' का साहित्य व्यापक स्तर पर गदर से प्रभावित है। इसका पहला प्रमाण यह है कि, इस साहित्य में किसानों को लक्ष्य करके उन्हें संगठित और आंदोलित करने की दृष्टि से, जितना गद्य–पद्य लिखा गया है, उतना दूसरी भारतीय भाषाओं में नहीं लिखा गया''।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग की जनवादिता को ध्यान में रखते हुए लिखा है – ''भारतेन्द युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढ़ॉचे से सुतुष्ट न रहकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है। भारतेन्दु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारको में भी प्रमुख थे। स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, विदेश यात्रा आदि के वे सर्मथक थे।''

हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण पर मुख्यतः अंग्रेजो के शोषण, 1857 के सिपाही विद्रोह और राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र, विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस आदि का प्रभाव है। भारतेन्दु इस नवजागरण के अग्रदूत थे।

हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत :– भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चंद्र – ''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल'' अर्थात् अपनी भाषा की प्रगति ही हर तरह की प्रगति का मूलाधार है, इसीलिए हम भारतेन्दु को 'आधुनिक हिन्दी का अग्रदूत' कहते है। उन्होने हरिश्चंद्र चंद्रिका, 'कविवचनसुधा', 'बालाबोधिनी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन किया, अनेक नाटक लिखें, नाटको के अनुवाद कियें और उसमें अभिनय कियें।

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी आलोचना, के भी अग्रदूत कहें जा सकते है, हिन्दी गद्य के विकास और रूप निर्धारण में उनकी पत्रिका 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का विशेष योगदान है। नाटक भारतेन्दु जी की सार्वाधिक प्रिय विधा रही। 'भारत दुर्दशा', 'अंधेंर–नगरी', 'नील देवी' जैसे कई मौलिक नाटकों के साथ ही उन्हो ने अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला के नाटकों का अनुवाद भी किया। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होनें 'नाटक अथवा दृश्य काव्य' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी।

भारतेन्दु के समय हिन्दी नाटकों पर बंगला और अंग्रेजी के साथ पारसी शैली के नाटकों का भी प्रभाव पड़ा।

कविता के संबंध में भारतेन्दु के विचार हमें उनके निबंध 'जातीय–संगीत' में मिलते है। इसमें उन्होंने लिखा है, ''यह सब लोग जानते है कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी, उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि, जितना ग्राम गीत शीघ्र फैलते है और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगो के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। (भारतेन्दु ग्रंथावली, संपादक ओमप्रकाश सिंह, खंड–6 पृष्ठ–102)

हिन्दी के महत्व और उसकी प्रगति के लिए भारतेन्दु का चिंतन बहुत महत्वपूर्णहै। भारतेन्दु का बलिया वाला भाषण 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, का अंतिम वाक्य है – ''परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत करो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करों।''

हिन्दी की उन्नति को आधार बनाकर भारतेन्दु ने अन्ठानवे दोहो का एक संकलन तैयार किया है। इसी का एक प्रसिध्द दोहा है –

''निज भाषा उन्नतिअहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।''

भाषा के संबंध में भारतेन्दु की यही मूल स्थापना है। उनका विश्वास है कि, कोई भी जाति सिर्फ अपनी भाषा के माध्यम से ही प्रगति कर सकती है पराई भाषा के माध्यम से पढ़ाई करने वाला व्यक्ति सिर्फ नकलची बन सकता है। भारतेन्दु जी हमारा ध्यान अंग्रेजों की ओर आकर्षित करते है और कहते है, कि अंग्रेजों ने कैसे प्रगति की ? उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से प्रगति की। यह बात हमें उनसे सीखनी चाहिए। अंग्रेजों की भाषा अंग्रजी पर टिप्पणी करते हुए वे कहते है कि इनकी भाषा बहुत अटपटी है। लिखा कुछ जाता है, पढ़ा कुछ जाता है, लेकिन इस अटपटेपन के होते हुए भी अंग्रेजों ने अपनी भाषा नहीं छोड़ी अंग्रेजीं में जो ज्ञान – विज्ञान है, उसे सीख कर हिन्दी में ले आना चाहिए। (38–39)

निसंदेह भारतीय के भाषा संबंधी चिंतन का तत्कालीन हिन्दू समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। खास तौर पर भारतेन्दु–मंडल के लेखकों ने भाषा के इस रूप को आगे बढ़ाने में महती भूमिका निभाई।

भारतेन्दु के भीतर की इस आधुनिकता के मूल में बंगाल के नवजागरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। बंगाल के नवजागरण के प्रमुख नायक ईश्वरचंद्र विद्यासागर से उनकी गहरी मैत्री थी। विद्यासागर की मॉ भगवती देवी के कांशीवास करने पर भारतेन्दु ही उनकी देखरेख कर रहें थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर जिस 'अभिज्ञान–शाकुंतलम' का संपादन किया था, उसकी अलग–अलग तीन प्रतियॉ भारतेन्दु ने अपने निजी पुस्तकालय से उन्हें भेंट की थी। अपनी पुस्तक की भूमिका में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने इस बात का बड़े संम्मान के साथ उल्लेख किया है। भारतेन्दु ने ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रशंसा में एक लावनी भी लिखी है।

''सुंदरबानी कहि समुझावै, विधवागन सौं नेह बढ़ावै,
दयनिधान परमगुन सागर, सखी सज्जन नहीं विद्यासागर।

<u>हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु हरिश्चंद्र</u> :–

हिन्दी प्रदेश में नवजागरण का आरंभ 1857 ई के स्वतंत्रता आदोलन से माना जाता है। राष्ट्रीय एकता, राजसत्ता को जनहित के लिए बाध्य करना, अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त व्यवस्था को उलट देना, किसान सैनिको व गैर सैनिक किसानों का साथ मिलकर लड़ना, साम्प्रदायिक भेदभाव को दरकिनार करना, हिन्दी भाषी प्रदेश का मुख्य रणक्षेत्र होना आदि विशेषताऍ इस स्वतंत्रता आंदोलन की रही है, जो हिन्दीप्रदेश में नवजागरण के कारण ही रहें है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में दो तरह की लड़ाई लड़ी गई। एक तो भारतीय सामंत वर्ग से तो दूसरे अंग्रेजों से। चूकि भारतीय सामंत वर्ग ने अंग्रेजो का साथ दिया था। रामविलास शर्मा लिखते है – कि ''भारत में अंग्रेजो के मुख्य सहायक यहा के सामंत थे। सन् सन्तावन अंठावन में कश्मीर से लेकर हैदराबाद और महाराष्ट्र राजस्थान से लेकर बंगाल तक के जमीदारों और राजाओं नवाबों ने अंग्रेजो की मदद की।'' (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली– पृ. 11)

1857 की क्रांति ने भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता के प्रति चेतना पैदा की। लेकिन अंग्रेजो ने इस क्रांति को बुरी तरह कुचल दिया था। अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगधंधों, व्यापार, कृषि सबका विनाश कर दिया था। किसानों को व्यापारिक फसल नील आदि की खेती करने के लिए मजबूर कर दिया गया। सैनिकों को अपने ही देश के खिलाफ खड़ा किया जा रहा था। हर क्षेत्र में शोषण जारी था जो 1857 की क्रांति के कारण रहें हैृ

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के साहित्य में राष्ट्रीय स्वाधीनता की समस्या प्रमुख रूप से उभरकर सामने आती है। उनपर अंग्रेज राजभक्ति का आरेप लगता रहा है, पर उनकी राजभक्ति सीमित थी। वे शिक्षा के विकास में, कुछ अंग्रेज अधिकारियों द्वारा नवीन न्याय व्यवस्था आदि के विकास को लेकर अंग्रेजों की प्रशंसा करते है। उनकी राजभक्ति वहीं खत्म हो जाती है, जब भरतीय मांगो को अंग्रेज दरकिनार कर देते है। अफगान युध्द से भारतीय धन का अपव्यय हो रहा था, तो वे लिखते है कि –

''ये तो समुझत व्यर्थ, सब यह रोटी उत्पात।
भारत कोष विनाश को, हिय अति ही अकुलात।''

(आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थ वाद, डॉ परशु राम शुक्ल 'विरही', ग्रंथम शोध ग्रंथों के प्रकाशक, रामबाग, कानपुर, पृ–175)

भारत दुर्दशा नाटक में अंग्रेजों पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते है कि –

''मरी बलाउँ देश उजाडूँ, महँगा करके अन्न
सबके उपर टिकस लगाउँ, धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।।''

अंग्रेजों से पदवी व सम्मान या खिताब पाने वालो की योग्यता पर भी भारतेन्दु ने बहुत लिखा है। उनसे खिताब पाने के लिए सिर्फ इतना काफी है कि जनता से धोखा करो और उनकी सेवा–चाकरी करो। झूठी–रिपोर्ट बनाकर उन्हें सौंप दो। अंधेर नगरी–नटक में गोवर्धनदास अंधेर नगरी (अंग्रेजी शासन) की व्यंग्यात्मक तारीफ करते हुए कहते है कि –

''प्रगट सभ्य अंतर छल धारी। सोई राजसभा बलभरी।
साँच कहै ते पनही खावै। झेठे बहुविधि पदवी पावै।''

नवजागरण दौर में सभी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया जा रहा था। भारतेन्दु साहित्यकार, पत्रकार के साथ–साथ एक समाज सुधारक भी थे। उन्होने धार्मिक पाखंड फैलाने वाले पंडे–पुजारियों, अधार्मिक कृत्य एवं समाज विरोधी कार्य करने वालो की तीखी आलोचना की है पशुबलि, मदिरापान आदि का भारतेन्दु जी ने कड़ा विरोध किया है। ''वैदिक हिंसा हिंस न भवति'' नाटक में इस तरह की धार्मिक सामाजिक बुराईयों पर जोरदार व्यंग्य किये गयें है ''बस चुप, दुष्ट! जगदंबा कहता है और फिर इसी के सामने उसी जगत के एक बकरे को अर्थात उसके पुत्र ही को बलि देता है, और दुष्ट अपनी अम्बा कह, जगदंबा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत के बाहर है ?'' (भारतेन्दु हरिश्चंद्र, वैदिक हिंसा–हिंसा न भवति, खंड विलास प्रेस बांकीपुर पृ.–26)

नील देवी (1880) उनका प्रसिध्द ऐतिहासिक नाटक है। इस नायिका प्रधान नाटक में मुगल शासकों की विलासप्रियता की पृष्ठभूमि में हिन्दू नारी के साहस और महान आदर्श की स्थापना की गई है। तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति भारतेन्दु के 'भारत–दुर्दशा' (1876) नाटक में हुई।

भारतेन्दु सामाजिक चेतना प्रधान नाटक भी लिखे। इन नाटकों में समाज सुधार संबंधी विषय पाये जाते है, जैसे – विधवा–विवाह, मॉस भक्षण निषेध, रजवाड़ों के कुचक्र, पोंगा पंडित की खिचाई आदि। 'वैदिकी हिसां–हिंसा न भवति' (1873) में पशु हिंसा, मद्य मॉस–भक्षण की निंदा की गई है। प्रेम जोगनी (1875) में कांशी को केन्द्र बनाकर धार्मिक पाखंडों और मिथ्याचारों पर प्रहार किया गया है।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः निश्चित रूप से हम कह सकते है कि भारतेन्दु जी असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र एक साहित्यकार, पत्रकार होने के साथ–साथ समाज सुधारक के लिए भी प्रयासरत थें। उनकी अंग्रेजीं के प्रति जो राजभक्ति थी, उससे उनकी देश भक्ति को अलग कर देखने की जरूरत है वे सच में हिन्दी नव जागरण के दूसरे चरण के अग्रदूत है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की अंग्रेजी राज्य की आलोचना पर रामविलास शार्मा ने ठीक लिखा है कि – ''भारतेन्दु की महत्ता इस बात में है कि, वह अंग्रेजी राज्य के सच्चे और कटु आलोचक थे। उनके नाटकों, कविताओं और निबंधों ने जनता को अंग्रेजी राज्य के अन्याय और शोषण के प्रति सचेत किया। भारतेन्दु जी ने अंग्रेजी राज्य की सभ्यता, नेक–नियती और जनतंत्र का पर्दाफाश कर दिया।''

इस प्रकार यदि हम भारतेन्दु जी के पद चिन्हों पर चलते है तो हमारा भारत देश विकसित देश की ओर अग्रसर होगा। भारतेन्दु जी के समान हमे समाज सुधार में भी ध्यान देना चाहिए। स्त्री शिक्षा, विधवा–विवाह, को हमको समर्थन देना चाहिए।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :–

1. उपकार – यू.जी.सी. नेट / जे.आर.एफ. / स्लेट – हिन्दी– लेखक – कुमार गणेश पृ. संख्या 46, 47,48 प्रकाशक – उपकार प्रकाशन, आगरा–2
2. हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – नेट से
3. भारत दुर्दशा (नाटक) – भारतेन्दु हरिश्चंद्र
4. अंधेर नगरी (नाटक) – भारतेन्दु हरिश्चंद्र
5. हिन्दी साहित्य भाग–2, प्रधान संपादक डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी–भोपाल, पृ. संख्या 2, 3, 7

मो. नं. – 9907987060

sunitarathore1503@gmail.com

C/O श्री सुरेन्द्र सिंह राठौर, तलवापारा जांजगीर, वार्ड नं. 10, जिला जांजगीर–चाम्पा (छ.ग.)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 150-152
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कनुप्रिया रचना में मूल्य संवेदना

डॉ. श्रीदेवी. एस
सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
हिंदी विभाग सेंट जोसेफस कॉलेज (स्वायत्त) तिरुचिरापल्ली तमिलनाडु

(1) प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में पौराणिक आख्यानों के आधुनिक पुनर्पाठ की परंपरा अत्यंत समृद्ध है। छायावादोत्तर काल में जब व्यक्तिवादी चेतना और नारी-स्वर उभर रहा था, तब डॉ. धर्मवीर भारती (1926–1997) ने अपनी सृजनशीलता से साहित्य को नया मोड़ दिया। उनकी दीर्घकविता *कनुप्रिया* (1967) इस बात का प्रमाण है कि कैसे पौराणिक राधा–कृष्ण कथा को आधुनिक नारी की संवेदना और मूल्य-चेतना के आलोक में पुनर्परिभाषित किया जा सकता है।

(2) रचना-परिचय

कनुप्रिया एक काव्यात्मक कृति है जिसमें राधा का आत्मस्वर प्रमुख है। कृष्ण के प्रति उसका प्रेम केवल लौकिक न होकर आत्मिक और आध्यात्मिक है। राधा यहाँ प्रतीक्षा करने वाली पारंपरिक नायिका भर नहीं है, बल्कि स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और आधुनिक नारी की चेतना का प्रतीक है। भारती लिखते हैं—

"तुम्हें बाँधकर रखने का
कोई भी प्रयत्न,
राधा को कभी स्वीकार नहीं।"

यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि राधा अपने प्रेम में दासता नहीं, बल्कि आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता चाहती है।

(3) मूल्य संवेदना की अवधारणा

मूल्य संवेदना साहित्यिक अभिव्यक्ति का वह आयाम है जिसके द्वारा नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को कलात्मक रूप मिलता है। यह केवल भावुकता नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन और अनुभव की गहराई है। *कनुप्रिया* में प्रेम, आत्मसम्मान, त्याग, धैर्य और भक्ति जैसे मूल्य भावनात्मक रूप में संप्रेषित होते हैं।

(4) प्रेम का मूल्य

भारतीय साहित्य में राधा–कृष्ण का प्रेम अलौकिक प्रतीक है, किंतु भारती ने उसे मानवीय धरातल पर लाकर जीवंत बनाया। राधा कृष्ण से केवल मिलन की आकांक्षा नहीं रखती, वह प्रेम की पवित्रता और निष्कलुषता को जीती है—

"मैंने कभी नहीं चाहा
कि तुम मेरे हो जाओ,

मैंने तो केवल इतना चाहा
कि मैं तुम्हारी बन सकूँ।”

यहाँ प्रेम का मूल्य समर्पण से अधिक आत्मीयता और स्वाभाविकता है।

(5) नारी-स्वतंत्रता और आत्मसम्मान का मूल्य

भारती की राधा आधुनिक नारी की चेतना की वाहक है। वह अपने अधिकारों और अस्तित्व को पहचानती है। उसका स्वर निष्क्रिय प्रतीक्षा का नहीं, बल्कि आत्मचेतना का है। वह प्रेम में रहते हुए भी आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती। यही मूल्य *कनुप्रिया* को स्त्रीवादी दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण बनाता है।

(6) विरह और धैर्य का मूल्य

भारतीय काव्य परंपरा में विरह को मिलन से अधिक सृजनात्मक माना गया है। राधा का विरह केवल पीड़ा नहीं है, बल्कि आत्मविकास की शक्ति है। वह कहती है—

“तेरे आने की प्रतीक्षा में
मैंने अपने आँचल में
अनगिनत दीप जला लिए हैं।”

यह प्रतीक्षा धैर्य, आशा और आत्मबल का प्रतीक है।

(7) त्याग और समर्पण का मूल्य

भारती की राधा अपने प्रेम में त्यागमयी है, परंतु यह त्याग उसकी स्वेच्छा से उपजा है। वह कृष्ण की उपलब्धि को अपनी उपलब्धि मान लेती है। इस समर्पण में दासता नहीं, बल्कि गरिमा है। यही उसकी मूल्य-संपन्नता का द्योतक है।

(8) सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य

कनुप्रिया में राधा–कृष्ण कथा भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की स्मृति है। किंतु भारती ने इसे आधुनिकता से जोड़ा, जिससे यह केवल पौराणिक आख्यान न रहकर समकालीन चेतना का प्रतीक बन गई। इस प्रकार रचना परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को एक सूत्र में पिरोती है।

(9) आध्यात्मिकता और भक्ति का मूल्य

कविता के अनेक अंशों में प्रेम धीरे-धीरे भक्ति में रूपांतरित होता है। राधा कृष्ण को ईश्वर के रूप में देखती है—

“तुम ईश्वर नहीं,
पर जब भी मैं तुम्हें सोचती हूँ,
ईश्वर की ही अनुभूति होती है।”

यहाँ प्रेम और भक्ति का अद्वैत स्थापित होता है।

(10) भाषा और शिल्प में संवेदनाएँ

कनुप्रिया की भाषा मुक्तछंद में रची गई है। इसमें प्रतीक, बिंब और उपमानों की गहनता है। राधा की अंतर्दशा को व्यक्त करने में भाषा की भावुकता और लयात्मकता मूल्य संवेदनाओं को और गहराई देती है।

(11) समकालीन प्रासंगिकता

आज की नारी भी स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और प्रेम की गरिमा के लिए संघर्षरत है। राधा का स्वर आधुनिक स्त्री की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए *कनुप्रिया* केवल 1960 के दशक की रचना नहीं, बल्कि आज के समय की भी प्रासंगिक कृति है।

(12) निष्कर्ष

डॉ. धर्मवीर भारती की *कनुप्रिया* प्रेम, विरह, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, त्याग और भक्ति जैसे मूल्यों की गहन संवेदना से परिपूर्ण है। यह न केवल पौराणिक आख्यान का पुनर्पाठ है, बल्कि आधुनिक नारी की चेतना और जीवन-दर्शन की साहित्यिक व्याख्या भी है। इस दृष्टि से यह हिंदी साहित्य में मूल्य-संवेदनात्मक रचनाओं की श्रेणी में एक कालजयी कृति मानी जाती है।

ग्रंथसूची / संदर्भ सूची

1. भारती, धर्मवीर। *कनुप्रिया*। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 1967।
2. भारती, धर्मवीर। *अंधा युग*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1954।
3. शुक्ल, नामवर। *हिंदी कविता और संवेदना*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1978।
4. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद। *भारतीय काव्य-परंपरा और आधुनिकता*। प्रयागराज: साहित्य भवन, 1982।
5. सिंह, रमेश। *धर्मवीर भारती: काव्य और नाट्य दृष्टि*। दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1995।

Mob: 9495243814

ईमेल: sdtvpm@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 153-156
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

असम के उजापालि नृत्य का संक्षिप्त परिचय

परीक्षित नाथ
सहकारी अध्यापक,
दुमदुमा महाविद्यालय,रुपाई साइडिंग, तिनसुकिया असम -786153

अनेकता में एकता भारतवर्ष की मुख्य विशेषताओं में से एक रही है। भारतवर्ष में विभिन्न जाति, उपजाति, जनजाति, विभिन्न धर्मावलंबी, विभिन्न भाषा-भाषी के लोग आपस में मिलजुल कर रहते हैं। यही विशेषता भारतवर्ष को दुनिया के सभी देशों से अलग और विशेष बनाती है। यह देश सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी बहुरंगी व बहुआयामी है।

भारतवर्ष के पूर्वोत्तर में स्थित असम राज्य इन्हीं सारी विशेषताओं को साथ लेकर चलने वाला भारतवर्ष का एक ऐसा राज्य है, जहां पर अनेकों जातियां, उपजातियां, जनजातियां, विभिन्न धर्म, संस्कृति, मान्यता, परंपराएं, विश्वास, बोली, भाषाएं स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती हैं। इन सभी विविधताओं के बावजूद भी इस राज्य में शांति और भाईचारा कायम है। यहां के लोग प्रेम और सद्भावना में विश्वास रखते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी यह राज्य मिलन और प्रेम का प्रतीक माना जाता है, जिसका उदाहरण हमें कामरूप ग्राम्य में स्थित हाजो क्षेत्र से मिल जाता है, जहां पर मुसलमानों के पोवामक्का, हिंदूओं के हयग्रीव माधव मंदिर और सिखों के गुरुद्वारा हैं।

असम राज्य जाति-जनजातियों का एक समन्वय क्षेत्र है। यहां की जाति-जनजातियां कई समूहों में विभक्त हैं। भिन्न-भिन्न जाति-जनजातियों के भिन्न-भिन्न संस्कृतियां, मान्यताएं , परंपराएं हैं तथा इन सभी जाति-जनजातियों का लोक साहित्य एवं लोक नृत्य भी एक दूसरे से भिन्न है। यहां की जातियों में ब्राह्मण, कायस्थ, योगी आदि मुख्य है। जनजातियों में आहोम, बोड़ो, राभा, तिवा, कार्बी, मिसींग, ताइ, ताइ फाके, कुकी, मरान, मटक, डिमासा, सूतिया, हाजोंग, चाय जनजाति, खासी, गारो आदि प्रमुख हैं। इन सभी जाति-जनजातियों तथा धर्मों के बहुरंगी परंपराओं और मान्यताओं को मिलाकर असम की इंद्रधनुषी असमिया संस्कृति का निर्माण हुआ है।

असम भिन्न भिन्न जाति-जनजातियों का निवास क्षेत्र होने के कारण यहाँ लोक नृत्य तथा शास्त्रीय नृत्य का बहुरंगी रूप देखने को मिलता है। यहां के शास्त्रीय नृत्यों में से सत्रिया नृत्य, भोरटाल नृत्य, उजापालि नृत्य, माटी आखरा, सूत्रधारी नृत्य, रास नृत्य, देवदासी नृत्य आदि प्रमुख हैं, दूसरी ओर लोकनृत्यों में से बिहू नृत्य, बागुरुम्बा (बोडो जनजाति), झुमुर नृत्य (चाय जनजाति), बहुवा नृत्य (सोनोवाल कछारी), भारीगान नृत्य (राभा जनजाति), हाचाकेकान नृत्य (मिकिर जनजाति), कार्लेक किकान नृत्य (डिमोरिया कार्बी जनजाति), चोमांकान नृत्य (कार्बी जनजाति), बरतर नृत्य (तिवा जनजाति), गुमराग (मिसिंग जनजाति), फात्री नृत्य (डिमाचा जनजाति), कालीचंडी नृत्य (गोवालपरीया समूह), ज्योन व नृत्य (टांगछा जनजाति) आदि प्रमुख है। यह सभी अलग अलग नृत्य भिन्न भिन्न अवसरों पर प्रदर्शित किये जाते है।

उजापालि नृत्य असम का एक परंपरागत लोक नृत्य है। यह नृत्य प्राचीनकाल से ही असम में प्रचलित होता आया है। उजापालि नृत्य का जन्म भारतीय संगीत परंपरा से हुआ है। इस नृत्य का उद्भव और विकास के संदर्भ में असम में विभिन्न जनश्रुतियों का प्रचलन है। कहा जाता है कि जब अर्जुन बृहन्नला के रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब वे इस कला को स्वर्ग से धरती तक लाए थे। कुछ मान्यताएं इस प्रकार की भी हैं कि पारिजात नामक एक महिला ने सपनों में ही इस कला को सीखा और उसने अपने शिष्यों को इस कला का ज्ञान दिया। कुछ विद्वानों के अनुसार बियाह कला और केंद्र कला नामक दोनों व्यक्ति ही उजापालि के जनक हैं। उजापालि नृत्य असम में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इसका उल्लेख हमें तेरहवीं सदी के विशिष्ट पंडित वेदाचार्य के 'स्मृति रत्नाकर', असम की ताम्र लिपि, 'गुरु चरित कथा' तथा असम के वैष्णव युग के विभिन्न साहित्य पर मिल जाता है।

उजापालि नृत्य महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के पूर्व से ही असम में प्रचलित होता आया है। शंकरदेव ने भी पहले पहल अपना उपदेश व वाणी को उजापालि नृत्य के द्वारा ही लोगों तक पहुंचाने का काम किया था। बाद में शंकरदेव ने उजापालि नृत्य को सत्रिया नृत्य के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में समाहित कर लिया। उजापालि नृत्य असम की एक अर्धनाटकीय नृत्यकला है। यह नृत्य सामूहिक रूप से प्रदर्शित किया जाता है। इस नृत्य के द्वारा महाभारत व रामायण आदि कथाओं की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। उजापालि नृत्य में उजा और पालि दोनों पात्र गद्य और पद्य दोनों के माध्यम से विषयवस्तु व कहानी व आख्यान को लोगों के सामने रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उजापालि को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है- महाकाव्य सम्बंधी उजापालि और महाकाव्येतर उजापालि। महाकाव्य सम्बंधी उजापालि के अंतर्गत व्यास उजापालि, पांचाली उजापालि, डुलरी उजापालि, नगंवा उजापालि, भाइरा उजापालि, दुर्गावली उजापालि, सत्रिया उजापालि, दामोदरी सत्र उजापालि आदि। महाकाव्येतर उजापालि के अंतर्गत सुकनानी उजापालि, विषहरी उजापालि, पद्मपुराण गान, मारेगान, झुनागीत अथवा करीगीत, तुकुरिया उजापालि, राखोवाल उजापालि, आपी उजापालि अथवा लिकिरी उजापालि आदि है। इसमें नृत्यगीत को उजा नामक पात्र सूर और राग प्रारंभ कर देते हैं फिर पालि नामक पात्रों के सहयोग से आगे बढ़ते हैं। उजापालि में उजा मुख्य होता हैं, जो गीत व राग की शुरुआत करता है तथा पालि समूह के सहयोग से नृत्यगीत संपूर्ण होता है। महाकाव्य सम्बंधी उजापालि के अंतर्गत सत्रिया उजापालि आते हैं, जो सत्रिया नृत्य का एक मुख्य भाग माना जाता है। उजापालि के अंतर्गत इस प्रकार के सभी विभाजन तथ्यपरक हैं। वर्तमान समय में सुकनानी उजापालि और रामायण व सभागोवा उजापालि ही जीवित व सक्रिय हैं। असम के कामरूप जिले में रामायण गाने वाले उजा को सभागोवा कहा जाता है। दूसरी तरफ दरंग जिला में प्रचलित पद्मपुराण के गीत-पद गाने वाले उजा को सुकनानी उजा कहा जाता है। उजापालि के गीत-पद, विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य गुण समृद्ध उजापालि को वैष्णव प्रदर्शन कला और महाकाव्येतर उजापालि को शाक्त प्रदर्शन कला भी कहा जाता है। महाकाव्य सम्बंधी उजापालि के अंतर्गत रामायण, महाभारत तथा पुराण के गीत, पद को गाते हैं और महाकाव्येतर उजापालि शाक्त देवी पूजा तथा मनसा देवी की आराधना करके पद्म पुराण के गीत पद से मनसा देवी को वंदना करते हैं, तथा चांदो सदागर, बेउला-लखिन्दा कहानी को विविध सुर-ताल के साथ गाते हैं।

'उजापालि' यह पद दो शब्दों के योग से बना है, उजा और पालि। 'उजा' शब्द संस्कृत का शब्द 'उपाध्याय' से आया है तथा 'पालि' शब्द का प्रचलन भी असमिया समाज में है, जिसका अर्थ है- सहायक। उजापालि नृत्य में गीत-पद आदि गानेवाले उजा की सहायता करनेवाले को ही पालि कहा जाता है। पालि विभिन्न प्रकार के होते हैं- डाइना पालि, गोर पालि एवं आग पालि इत्यादि।

उजापालि नृत्य में उजा और पालि के माथे पर सफेद पगड़ी बंधी होती है, यह पगड़ी नाव के सदृश होती है। दोनों पैरों में पायल बांधी जाती है, कान में कुंडल तथा पैरों तक सफेद कुर्ता और कमर में एक चादर विशेष शैली में बांधी जाती है तथा शरीर पर सफेद वस्त्र (चेलेंग,चादर) धारण करते हैं, माथे पर चंदन का तिलक लगाया जाता है।

पालि के दोनों हाथों में कटोरे के समान ताल (वाद्ययंत्र) होता है। इस प्रकार की उजापालि को व्यास या वियाह उजापालि कहा जाता है। व्यास उजापालि को वैष्णव उजापालि भी कहा जाता है। विष्णु पूजा, वासुदेव पूजा आदि में गीत-पद गाकर व्यास उजापालि ही प्रदर्शन करते हैं। व्यास उजापालि के गीत-पद की विषयवस्तु रामायण, महाभारत से संबंधित है।

उजापालि नृत्य गीत में वाद्ययंत्रों का विशेष प्रचलन है। उजापालि गीत में विशेष स्वर, ताल, पद तथा वाद्ययंत्रों का प्रयोग देखा जाता है। इस नृत्य का प्रारम्भ एक विशेष राग से होता है, उसके बाद गुरु वंदना, विष्णुपद, संगीतालाप और उसके बाद झूना व जूना व पूवली गीत अथवा पूवेली गीत से संपन्न होता है। इस नृत्य के प्रारम्भ में एक विशेष राग से गणपति, सदाशिव, महामाया, कृष्ण और गंधर्व से आशीर्वाद लिया जाता है। इस वंदना में भी विशेष शब्दों का प्रयोग देखा जाता है, जैसे- हा-र अर्थात गणपति, ता-र अर्थात सदाशिव, ना-र अर्थात महामाया, रि-र अर्थात कृष्ण, रिता-र अर्थात गंधर्व। इस राग-वंदना के बाद गुरु वंदना की जाती है। उजापालि नृत्य गुरुमुखी विद्या है, जिसके कारण इसके गीत पर नृत्य के प्रारंभ के पूर्व गुरु की वंदना की जाती है। गुरु की वंदना सिंधुरा अथवा रामगिरी या गुन्जरी या भ्रमरी राग में नृत्य सहित गाया जाता है। गुरु वंदना से ही उजापालि संगीत की शुरुआत होती है, इसलिए इसको पातनी गीत भी कहा जाता है। गुरु वंदना एक श्लोक से आरंभ होता है-

" श्री कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नंदनाय च।
नंद गोप कुमारय गोविंदाय नमो नमः॥"

इस श्लोक के बाद कई वंदना गीत गाए जा सकते हैं। वंदना गीत- सारंग, सुसारंग देशाग, रामगिरी, धनश्री आदि राग के किसी भी एक या दो राग में गाया जा सकता है। इस गीत की ताल 'लेछारी' या 'जिकरि' होती है। जिकरि ताल का एक वंदना गीत इस प्रकार है-

"अहे गोविंद कि दीबो यादव राय।
अहे ब्राह्मणडर भीतरे जत वस्तु आछे
समस्ते तोमाते पाय॥
पद: किबा आसन दिबो नारायण
गड़ुरे जार बाहन।
किबा अलंकार रंजीबो तोमारे
कौस्तभे जार भूषण ॥.....
कृष्णर चरण हृदये धरिया
दीन माधव दासे गाय"

सामग्र रूप में 'आलाप' (राग), 'गुरु वंदना' और 'पातनि गीत' इन तीनों गीतों के समाहार को ही गुरुमंडली या गईद या धुन्नी कहा जाता है।

नृत्य, वेशभूषा, संलाप व कथोपकथन और मुद्रा उजापालि के चार मुख्य अंग हैं। उजापालि नृत्य में भारतीय शास्त्रीय तथा परंपरागत नृत्य शैली की विशेषताएं अंतर्निहित हैं। उजापालि नृत्य का प्रभाव असम के अनेक नृत्यों में दृष्टिगोचर होता है। व्यास उजापालि नृत्य से ही सत्रिया उजापालि नृत्य का विकास हुआ है, जो नृत्य श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रचारित हुआ था।

जीवन की 64 कलाओं में से साहित्य, संगीत और नृत्य कलाओं का एक समन्वय रूप का नाम ही उजापालि है। असम में प्राक शंकरी युग से ही परंपरागत रूप में उजापालि प्रचलित होते आया है। यह नृत्य असम का एक अमूल्य एवं महत्वपूर्ण नृत्य है। ऐसा नहीं है कि इस नृत्य को एक धर्म या जाति विशेष के लोगों ने ही जीवित रखा हुआ है, बल्कि परशु शेख उजा धर्म में मुसलमान थे जबकि उजापालि और देउधनी नृत्य के लिए उन्होंने अपना पूरा

जीवन समर्पित कर दिया। उजापालि नृत्य को प्रदर्शित करने वाली प्रथम महिला का नाम हाफ़ेजा बेगम है। इसप्रकार उजापालि नृत्य को जीवित रखने में असम के सभी लोगों का योगदान रहा है। अंत में यह कहा जा सकता है कि उजापालि नृत्य असम के ही नहीं बल्कि भारतवर्ष का एक अमूल्य एवं महत्वपूर्ण लोकनृत्य हैं। इस प्रकार उजा पालि नृत्य भारतीय लोक नृत्य में एक विशेष महत्व रखता है।

सहायक ग्रंथ सूची:

1. शर्मा,नबीन चन्द्र ,भारतर उत्तर पूर्वाञ्चलर परिवेश्य कला,शराइघाट फोटोटाइप्स लिमिटेड,गुवाहाटी
2. शर्मा,सत्येंद्र,असमियार साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त,सौमार प्रकाश,गुवाहाटी
3. हाकाचाम,उपेन राभा,असमिया आरु असमर जाति-जनगोष्ठी: प्रसंग-अनुसंग,किरण प्रकाशन,धेमाजी
4. सं.भट्टाचार्य,प्रमोदचन्द्र,असमर जनजाति,किरण प्रकाशन,धेमाजी
5. इंटरनेट, विकिपीडिया

दूरभाष-7002607797

ईमेल- parikshitnath96@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 157-166
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

স্বামী বিবেকানন্দের ভাবনায় বেদান্ত ও তার প্রাসঙ্গিকতা

ড. উত্তম পালুয়া
সহকারী অধ্যাপক,
বাংলা বিভাগ গুরুচরণ বিশ্ববিদ্যালয়, শিলচর

আমাদের পুণ্যতীর্থ ভারতবর্ষের পবিত্র ভূমিতে এমন বহু সাধু, মহাপুরুষ,অবতারের জন্ম হয়েছে যাঁদের দিব্যজ্যোতিতে আলোকিত হয়েছে গোটা দুনিয়া। সমগ্র বিশ্ব-চরাচর। বিশ্ববন্দিত এমনই একজন জ্যোতির্ময় যোগীপুরুষ হলেন স্বামী বিবেকানন্দ (১৮৬৩-১৯০২)। ভারতবর্ষের সর্বশ্রেষ্ঠ সন্তানদের মধ্যে তিনি ছিলেন অন্যতম । ভারতের বিবেক তো বটেই, সমগ্র বিশ্বেরও আচার্য তিনি । স্বামীজীর আদর্শ ও ভাবনা চিন্তা আমাদের এক নতুন পথের,সত্য পথের সন্ধান দিয়েছে। নবজীবনবোধে উদ্বুদ্ধ করেছে বিশ্বের প্রতিটি মানুষকে। পৃথিবীর ইতিহাসের পাতা খুললে এমন আর কোন চরিত্র আমাদের চোখে ধরা পড়ে না, যিনি তাঁর রচনা ও বাণীর দ্বারা, কর্ম ও জীবনাদর্শের দ্বারা বিশ্ববাসীর মন জয় করেছেন। একমাত্র স্বামী বিবেকানন্দই সেই বিশ্ববিজয়ী কর্মযোগী সর্বত্যাগী বীর সন্ন্যাসী যাঁর শাশ্বত প্রভাব পড়েছে জগতের সবার উপর। জাতি-ধর্ম-বর্ণ নির্বিশেষে সবাইকে তিনি এনে দাঁড় করালেন একই মানবতার পতাকাতলে।

আসলে স্বামীজী যে ধর্মচক্র প্রবর্তন করেছেন, বৈদান্তিক ভাবধারায় সাম্য-মৈত্রী-শান্তি ও একত্বর কথা বলেছেন, যে ত্যাগ ও সেবাধর্মের মন্ত্রে মানুষকে দীক্ষিত করেছেন তা বর্তমান পৃথিবীর জন্য যেমন নতুন বার্তা নিয়ে এসেছে, তেমনি অনাগত ভবিষ্যতের জন্যও আলোকিত পথনির্দেশ করে গেছে । সঙ্গত কারণেই স্বামীজীর ভক্তপ্রাণ এক শিষ্যকে আমরা বলতে শুনি -

> *"স্বামী বিবেকানন্দ মানবাত্মার জাগরণের দূত, জাগ্রত আত্মার প্রতীক। তিনি আমাদের পূর্ণ জাগ্রত বিবেক । আমাদের দেশ, জাতি, সমাজ, আমাদের অতীত, বর্তমান, ভবিষ্যৎ।"১*

বিবেকানন্দের আলোকোজ্জ্বল আবির্ভাব ও সমকালীন ভারতবর্ষ

ভারতবর্ষে হিন্দু সংস্কৃতির ভয়াবহ এক সংকটময় কালে স্বামী বিবেকানন্দের আবির্ভাব। ১২ জানুয়ারি ১৮৬৩ সালে বিবেকানন্দের জন্ম আর ১৯০২ সালের ৪ জুলাই তাঁর তিরোভাব। মাত্র ৩৯ বছর ৪ মাস ২৪ দিন

আয়ুর ছোট্ট জীবনকাল স্বামীজীর। এর মধ্যে আবার শেষ ৯-১০ বছর ছিল তাঁর কর্মজীবন ও সাধনপর্বের প্রকৃত সময়সীমা।

উনিশ শতকের এই কালপর্বে সমগ্র বাঙালি জাতি ঘোর সংকটের মধ্য দিয়ে চলছিল। প্রাচ্য ও পাশ্চাত্য সংস্কৃতির দ্বন্দ্বে তখন বাঙালি জাতি হয়ে পড়েছিল দিশাহারা। সমাজের একটা বড় অংশ ছিল ঘোর সংস্কারপন্থী-পাশ্চাত্য শিক্ষা দীক্ষা গ্রহণের বিরোধী। আরেকদল পাশ্চাত্যের অন্ধ অনুকরণে গড্ডলিকাস্রোতে গা ভাসিয়ে দিয়েছিল। এই সাংস্কৃতিক দ্বন্দ্বের মাঝে রামমোহন(১৭৭২-১৮৩৩),বিদ্যাসাগর(১৮২০-,১৮৯৯) প্রমুখ জাগ্রত চেতনাসম্পন্ন দু'চারজন মনীষী সমাজ সংগঠনের দায়ভার নিজেদের হাতে তুলে নিয়েছিলেন। রাজা রামমোহন থেকে বঙ্কিমচন্দ্রের কাল (১৮৩৮-১৮৯৪) পর্যন্ত চলছিল এই জাগরণের চেষ্টা। তবে তা ছিল কেবল স্বপ্নেরই চেষ্টা। মানুষের প্রকৃত জাগরণ তখনও ঘটেনি। যথার্থ জাগরণ এসেছিল স্বামী বিবেকানন্দের কালে । স্বামীজী বুঝিয়ে দিলেন -

*“একটা জাতিকে তুলতে হলে জাতের মাত্র এক অংশকে তুললে হবে না। গরীব, দুঃখী, নিম্নশ্রেণীর সকলকে না তুললে জাত উঠবে না। স্বামীজীর সংস্পর্শে আসা অবধি তিলকের মনোভাবের পরিবর্তন হল। তিনি নিম্নশ্রেণির লোকদের জন্যও নানা প্রকার। চেষ্টা করতে লাগলেন।”*২

রামমোহনের জন্মের ৯১ বছর পর আবির্ভূত হয়েও বিবেকানন্দ ভারতবর্ষ তথা সমগ্র বিশ্ববাসীর মনে যে অভূতপূর্ব সাড়া জাগিয়ে তুলেছিলেন তা বিস্ময়কর। দেশপ্রেমে, জাতিগঠনে, ভারতীয় সংস্কৃতি ও ঐতিহ্যের প্রতি সুগভীর শ্রদ্ধায় মানুষের অন্তরাত্মার বিকাশ সাধনে, কুসংস্কারমুক্ত স্বাধীন চিন্তাভাবনায়, সর্বোপরি ধর্মদর্শন আধ্যাত্মিকতার প্রচার ও প্রসারের মধ্য দিয়ে বিশ্ব শান্তি ও সাম্য প্রতিষ্ঠার লক্ষ্যে স্বামীজী যা করে গেছেন তা এর পূর্বে ভারতবর্ষের আর কেউ করতে পারেননি। বৈষম্যহীন ঐক্যবদ্ধ মানবজাতির গড়ে তোলাই ছিল স্বামীজীর মূল উদ্দেশ্য। তাই গোটা পৃথিবীকেই তিনি দেখলেন মানবজাতির পুণ্যতীর্থরূপে। শিকাগোর মহাধর্মসভায় (১৮৯৩) বৈদান্তিক ভাবধারায় সকলকে ‘বসুধৈব কুটুম্বকম্” মন্ত্রে দীক্ষা দিয়ে বিশ্বশান্তির কথাই নানাভাবে তুলে ধরলেন -

*“Help and not Fight', Assimilation and not destruction, Harmony and Peace and not Dissension”*৩ এভাবেই স্বামী বিবেকানন্দ হয়ে উঠলেন মানবজাতির সত্য-শান্তির পথদ্রষ্টা ।

আধুনিক ভারতে বেদান্তচর্চা ও বিবেকানন্দ

আধুনিক ভারতে 'বেদান্ত' নিয়ে প্রথম চর্চার সূত্রপাত করেন রাজা রামমোহন রায়। বেদান্তের ভাবনা ও দর্শনের আলোকে তিনি ভারতের পুনর্জাগরণের স্বপ্ন দেখেন । এ বিষয়ে তাঁর রচিত ‘বেদান্তগ্রন্থ’ (১৮১৫), ‘বেদান্তসার’ (১৮১৫) এবং পাঁচটি উপনিষদের অনুবাদ (কেন, ঈশ, কঠ, মুণ্ডক, মাণ্ডূক্য) প্রভৃতি ধর্মকেন্দ্রিক অধ্যাত্ম-বিশ্লেষণমূলক রচনাগুলি উল্লেখযোগ্য। তবে বেদান্তচর্চা করলেও রামমোহন বেদান্তের কোন নতুন ব্যাখ্যা বা ভাষ্য দিতে পারেননি । এমনকি তিনি বেদান্ত ভাবনার জাগরণের জন্য যে প্রতিষ্ঠানগুলির (আত্মীয় সভা, ব্রাহ্মসমাজ, বেদান্ত কলেজ) জন্ম দিয়েছিলেন তাও যুগত্তীর্ণ হতে পারেনি। কোরান ও বাইবেলের দ্বারা প্রভাবিত রামমোহন মূর্তিপূজার বিরোধী হয়ে কেবলমাত্র নিরাকার ব্রহ্মোপাসনার প্রচার করতেই ব্যস্ত ছিলেন। দেশে থেকে প্রতিমাপূজা তুলে দেবার চেষ্টাও করেছিলেন তিনি। রামমোহনের পরবর্তীকালে দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর (১৮১৭ – ১৯০৫) ঔপনিষদিক ভক্তিবাদে ঘনিষ্ঠভাবে অনুপ্রবিষ্ট হয়ে সংযত ভক্তির আলোকে ব্রহ্মোপলব্ধির সাধনা করেছিলেন তবে তিনি বাস্তব পরিবেশ সম্বন্ধে ছিলেন উদাসীন । ব্রাহ্ম সমাজের আদর্শ বিস্তারই ছিল

তাঁর সাধনার মূল উদ্দেশ্য। এ বিষয়ে তার 'ব্রাহ্মধর্ম গ্রন্থ'(১৮৫১), 'ব্রাহ্মধর্মের মত ও বিশ্বাস', (১৮৬০), 'কলিকাতা ব্রাহ্মসমাজের বক্তৃতা' (১৮৬২), 'জ্ঞান ও ধর্মের উন্নতি', (১৮৯৩) 'পরলোক ও মুক্তি' (১৮৯৫) গ্রন্থগুলি উল্লেখযোগ্য । বলা বাহুল্য, রামমোহন ও দেবেন্দ্রনাথ সীমিত দৃষ্টি দিয়ে বেদান্তের বিচার করেছিলেন বলে তাদের বেদান্তচিন্তা সার্বজনীন ধর্মমত হয়ে উঠতে পারেনি। এক্ষেত্রে বিবেকানন্দ একেবারেই নতুন পথের দিশারি। বেদান্ত চর্চায় বিবেকানন্দ নতুন ব্যাখ্যা বা ভাষ্য রচনা করে তাকে বিশ্বের দরবারে পৌঁছে দিলেন। প্রধানতঃ তিনটি ক্ষেত্রে বিবেকানন্দ বেদান্ত চর্চায় নতুনত্বের সন্ধান দিলেন । এগুলি হ'ল -

(১) বিবেকানন্দই সর্বপ্রথম সমগ্র বিশ্বে ভারতের বেদান্ত দর্শন প্রচার করলেন । ১৮৯৩ থেকে ১৮৯৬ এর ডিসেম্বর পর্যন্ত প্রায় ৪ বছর ধরে পাশ্চাত্যের বিশেষ করে আমেরিকা ও ইউরোপের বিভিন্ন শহর ঘুরে ঘুরে বেদান্তের প্রচার ও প্রসার করে বিশ্বসভায় ভারতকে গৌরবের উচ্চ-শিখরে নিয়ে গেলেন ।

(২) অত্যন্ত সহজ-সরল ভাবে সর্বসাধারণের উপযোগী করে বেদান্তের অন্তর্নিহিত ভাবসত্য তুলে ধরলেন।

(৩) বেদান্তকে আত্মমুক্তি ও পুঁথিগত স্তরে সীমাবদ্ধ না রেখে তাকে বাস্তব তথা ব্যবহারিক জীবনের সঙ্গে যুক্ত করলেন।

বেদান্ত সম্পর্কে স্বামী বিবেকানন্দের এই নতুন উপলব্ধি এবং বাস্তব জীবনে তার প্রয়োগের বিষয়টিই সাধারণভাবে 'নব্য বেদান্ত' বা *'Practical Vedanta'* নামে সকলের কাছে পরিচিতি লাভ করলো। এই বেদান্তের আদর্শকেই বিবেকানন্দ বিশ্বমানবের ধর্মীয় আদর্শ বলে প্রচার করলেন। তাঁর মতে, একমাত্র বেদান্তই হল সর্বমানবের মুক্তি এবং আন্তর্জাতিক ঐক্য ও সাম্যের ভিত্তি। তাই স্বামীজী শিকাগোর বিশ্বধর্মসভায় (১৮৯৩) বেদান্তের মূল ভাবনা ও দর্শনের কথা ৬টি ভাষণের মধ্য দিয়ে নানাভাবে তুলে ধরেছেন । সকল জীবের মধ্যে একই সত্তার অনুভব এবং এই অনুভবই আনবে মানবজীবনে শান্তি- বেদান্তের এটাই হ'ল অন্তর্নিহিত ভাবসত্য। বেদান্তের আদর্শকে স্বামীজী তাই সকলের আদর্শ করে তুলতে চেয়েছেন। এ প্রসঙ্গে তার বক্তব্য -

"বেদান্তের আদর্শ কেবল ভারতবর্ষে নয়, বাহিরেও প্রচার করিতে হইবে। লেখার মধ্য দিয়া নয়, ব্যক্তির মধ্য দিয়া প্রত্যেক জাতির মানস-গঠনে আমাদের চিন্তাধারা সঞ্চার করিতে হইবে।" ৪

আর এই লক্ষ্যেই স্বামীজী বেদান্তকে বাস্তব জীবনে প্রয়োগ করার কথা বলেছেন। এবং মঠ-মন্দির থেকে, অরণ্য থেকে, সম্প্রদায়বিশেষের অধিকার থেকে বের করে এনে বেদান্তকে ভারতবর্ষ তথা বিশ্ববাসীর চোখের সামনে মেলে ধরলেন। স্বামীজী তাঁর 'আমার সমরনীতি' শীর্ষক বক্তৃতায় অত্যন্ত সুস্পষ্টভাবে একথা তুলে ধরেছেন -

"প্রথমে আমাদিগকে এই কাজে মন দিতে হইবে - আমাদের উপনিষদে, আমাদের পুরাণে আমাদের অন্যান্য শাস্ত্রে যেসকল অপূর্ব সত্য নিহিত আছে, সেগুলি ঐসকল গ্রন্থ হইতে, মঠ হইতে, অরণ্য হইতে, সম্প্রদায় বিশেষের অধিকার হইতে বাহির করিয়া সমগ্র ভারতবর্ষে ছড়াইয়া দিতে হইবে - যেন ঐসকল শাস্ত্র নিহিত সত্য আগুনের মতো উত্তর হইতে দক্ষিণ, পূর্ব হইতে পশ্চিম, হিমালয় হইতে কুমারিকা, সিন্ধু হইতে ব্রহ্মপুত্র পর্যন্ত সারা দেশে ছুটিতে থাকে"। ৫

এভাবে বিবেকানন্দ আমাদের ধর্মশাস্ত্রকে প্রথমেই সংকীর্ণ গন্ডি থেকে ছিন্ন করে জাতীয় জীবনের সর্বাঙ্গীন উন্নতিসাধনের সঙ্গে যুক্ত করে দিয়েছিলেন। বলা বাহুল্য, স্বামী বিবেকানন্দই প্রথম ভারতীয় যিনি বেদান্তকে বিশ্বমানবের একমাত্র ধর্ম বলে ঘোষণা করেছিলেন এবং এ বিষয়ে যুক্তিসম্মত মতামত দিয়েছিলেন।

‘বেদান্ত’ সম্পর্কে বিভিন্ন মতবাদ ও স্বামী বিবেকানন্দের নতুন ব্যাখ্যা তথা ভাষ্য:

‘বেদান্ত’ সম্পর্কে স্বামী বিবেকানন্দের মূল ভাবনা ও ব্যাখ্যাগুলিকে বুঝতে গেলে সবার প্রথমে ‘বেদান্ত' সম্পর্কে আমাদের ধারণা থাকা একান্ত প্রয়োজন। আলোচনার ক্ষেত্রে তাই আমরা ‘বেদান্ত’ সম্পর্কে একটি সংক্ষিপ্ত পরিচয় তুলে ধরবো এবং সেই সূত্রে স্বামীজীর বেদান্ত চিন্তা পর্যালোচনা করবো।

বেদান্ত বা উপনিষদ হল প্রাচীন ভারতবর্ষের আধ্যাত্মিক দর্শনগুলির মধ্যে অন্যতম। বেদান্ত কোন ব্যক্তিবিশেষের রচনা নয়। প্রাচীন ভারতীয় ঋষিগণের উপলব্ধজাত চিরবিদ্যমান সত্য ও জ্ঞানসমূহের যুগযুগান্তরের সঞ্চিত ভাণ্ডার। বেদান্তের মূল ভাবনা ও দর্শনটিতে বলা হয়েছে, এই জগতে ঈশ্বর পরম ব্রহ্ম প্রতিটি প্রাণীতে এবং প্রতিটি বস্তুতে তার আস্থান । জীবের ভিতরে তিনি ‘আত্মা’ রূপে বিরাজ করছেন। আত্মাকে চোখে দেখা যায় না, আগুনে পোড়ানো যায় না। তিনি অবিনাশী। সকল শক্তির উৎস। তিনি সাকার এবং নিরাকার দুই রূপেই অবস্থান করেন। শ্রীমদ্ভগবদগীতায়ও বলা হয়েছে-

নৈনং ছিন্দন্তি শস্ত্রাণি নৈনং দহতি পাবকঃ।
ন চৈনং ক্লেদয়ন্ত্যাপো ন শোষয়তি মারুতঃ॥

এখন প্রশ্ন হ’ল বেদান্তে ব্রহ্মাকে ঈশ্বর বলা হয়েছে, আবার এটিও বলা হয়েছে যে, সেই ব্রহ্মই জগতের প্রতিটি প্রাণীর মধ্যে বিরাজমান । তাহলে ব্রহ্ম এবং জগৎ এক না আলাদা? এই জটিল এবং কঠিন প্রশ্নটির উত্তর খুঁজতে গিয়ে 'বেদান্ত' শাস্ত্রকে কেন্দ্র করে তিনটি মতবাদের জন্ম হয়েছে । এগুলি হ’ল -

(১)অদ্বৈতবাদ -এর প্রবক্তা হলেন জগৎগুরু শ্রীশংকরাচার্য।

(২) বিশিষ্টাদ্বৈতবাদ – এর প্রবক্তা হলেন শ্রীরামানুজাচার্য ।

(৩) দ্বৈতবাদ -এর প্রবক্তা হলেন শ্রীমাধবাচার্য।

এই তিনটি মতবাদে জগৎ ও ব্রহ্ম সম্পর্কে যা বলা হয়েছে তা প্রসঙ্গত এখানে তুলে ধরা যেতে পারে-

অদ্বৈতবাদ :

অদ্বৈতবাদ কথাটির অর্থ হ’ল দুই নয়- এক। অদ্বৈতবাদের মতে, ব্রহ্ম এবং জগৎ আলাদা কোন সত্তা নয় - একই । ব্রহ্মই এক এবং এই বিশ্বের সকল প্রাণী, সকল বস্তুর মধ্যেই তার অস্তিত্ব বিদ্যমান- ‘সর্বং খল্বিদং ব্রহ্ম’। ব্রহ্ম ব্যতীত দ্বিতীয় কোন সত্তা নেই - ‘একমেবাদ্বিতীয়ম্’ । একই ব্রহ্ম বা ঈশ্বর সর্বভূতে বিরাজমান। জগতের সমস্ত প্রাণের একই উৎস, একই গতি। এই মতবাদের প্রবক্তা শ্রীশংকরাচার্য্য । তাঁর মতে “ব্রহ্ম সত্য জগন্মিথ্যা” এখানে ‘মিথ্যা’ শব্দে মায়াকে বোঝানো হয়েছে। জগতের আলাদা কোন অস্তিত্ব শংকরাচার্য্য মেনে নেননি । জগৎ বলে যেটি আমরা দেখে থাকি সেটি মায়া মোহ ছাড়া আর কিছুই নয় । স্বামী বিবেকানন্দ এই অদ্বৈতবেদান্তকে সর্বশ্রেষ্ঠ দর্শনরূপে মেনে নিলেও শংকরাচার্য্যের ‘জগন্মিথ্যা’ অর্থাৎ জগতের অস্তিত্বহীনতার তত্ত্বটিকে মেনে নেননি । এ বিষয়ে স্বামীজী তাঁর নিজস্ব মতামত পোষণ করেছেন যা ‘নব্য বেদান্তবাদ’ নামে পরিচিতি লাভ করেছে ।

বিশিষ্টাদ্বৈতবাদ :

বিশিষ্টাদ্বৈতবাদে সম্পূর্ণ আলাদা কথা বলা হয়েছে। এখানে বলা হয়েছে জগৎ ব্রহ্ম থেকে আলাদা বা পৃথক নয় । ব্রহ্মই জগতে পরিণত হয়েছে, কিন্তু জগৎ মানেই ব্রহ্ম নয় । মুণ্ডকোপনিষদে বিষয়টি বোঝানোর জন্য একটি সুন্দর দৃষ্টান্ত তুলে ধরা হয়েছে। মাকড়সা তার দেহ থেকে সুতা নির্গত করে জাল তৈরি করে। ঐ

জাল মাকড়সার থেকে আলাদা নয় মাকড়সার দেহেরই একটি রূপান্তরিত অংশ। কিন্তু তাই বলে জালকে মাকড়সা বলা যাবে না। ঠিক তেমনিই জীব জগৎ মানেই ব্রহ্ম নয়, তারা ব্রহ্মের পরিবর্তিত রূপমাত্র।

দ্বৈতবাদ :

দ্বৈতবাদে বলা হয়েছে ব্রহ্ম এবং জগৎ এক নয় -আলাদা। দ্বৈত কথাটির অর্থই হ'ল দুই। অর্থাৎ এই মতবাদ অনুসারে ঈশ্বর এবং জগৎ আলাদা বা পৃথক। ঈশ্বর আনন্দস্বরূপ এবং একমাত্র ভক্তির মধ্য দিয়েই তার দর্শন পাওয়া যায়।

স্বামী বিবেকানন্দের দৃষ্টিতে বেদান্ত-দর্শন ও ব্যবহারিক জীবনে তার প্রয়োগ

বেদান্ত দর্শনের ক্ষেত্রে স্বামী বিবেকানন্দ উপরে উল্লিখিত তিনটি পরস্পরবিরোধী ব্যাখ্যার সমন্বয় সাধন করে বেদান্তের একটা সহজ-সরল ভাষ্য রচনা করেন। তিনি বলেন, জগৎ, জীব ও মানুষের মধ্যেই ঈশ্বরের প্রকাশ ঘটে থাকে -'যত্র জীব, তত্র শিব' । প্রত্যেক মানুষ এবং জীবের মধ্যেই দেবত্ব লুকিয়ে থাকে। সেই সুপ্ত দেবত্বকে মহৎ গুণাবলীর দ্বারা জাগরিত করাই হল প্রকৃত মানবধর্ম। পরম ব্রহ্ম 'আত্মা' রূপে সকল জীবের মধ্যে যেহেতু অবস্থান করছেন, তাই জীবসেবার মধ্য দিয়েই আমরা ঈশ্বর সেরা করে থাকি । 'শিবজ্ঞানে জীবসেবা'র এই বৈদান্তিক তত্ত্বটি স্বামীজী খুব সুন্দর ভঙ্গিতে তুলে ধরেছেন তাঁর 'সখার প্রতি' কবিতায় -

"ব্রহ্ম হ'তে কীট-পরমাণু, সর্বভূতে সেই প্রেমময়,
মন প্রাণ শরীর অর্পণ কর সখে, এ সবার পায়।
বহুরূপে সম্মুখে তোমার, ছাড়ি কোথা খুঁজিছ ঈশ্বর ?
জীবে প্রেম করে যেই জন, সেই জন সেবিছে ঈশ্বর।" ৬

এভাবে বেদান্তের অন্তর্নিহিত ভাবসত্য উদ্ঘাটন করে অখন্ড মানবজাতির আসল পরিচয়টি তুলে ধরলেন বিবেকানন্দ। বুঝিয়ে দিলেন মানুষ অমৃতের সন্তান- 'অমৃতস্য পুত্রঃ' । মানুষের মধ্যেই ঈশ্বরের অধিষ্ঠান। যে ঈশ্বর এতোদিন ধরাছোঁয়ার বাইরে ছিল সেই ঈশ্বরকে তিনি আবিষ্কার করলেন বিশ্বের প্রতিটি প্রাণীর মধ্যে।

অন্যত্রও তিনি বৈদান্তিক ভাবনায় এই নিগূঢ় তত্ত্বটি তুলে ধরেছেন -

"জগতে ঈশ্বর বলে যদি কিছু থেকে থাকে, তবে
তা এই জীবে জীবে বিলীন হয়ে আছে।" ৭

এভাবে জীবসেবা, মানবকল্যাণ ও একত্ববোধের মধ্য দিয়ে বেদান্ত দর্শনের এক নতুনতর ব্যাখ্যা স্বামীজী সমগ্র বিশ্ববাসীর সামনে মেলে ধরলেন।

সমাজে সাম্য শান্তি প্রতিষ্ঠার জন্য বিশ্বব্যাপী যুদ্ধ-বিগ্রহ কম হয়নি। কুরুক্ষেত্র থেকে ক্রুসেড, বদর থেকে মক্কা বিজয়- রক্তক্ষয়ী সংগ্রাম যুগে যুগে অনেক হয়েছে। শ্রীকৃষ্ণ থেকে শ্রীচেতন্য, যিশু থেকে মহম্মদ প্রত্যেকেই সাম্য প্রতিষ্ঠার জন্য ভগবান কিংবা ঈশ্বপ্রেরিত অবতারপুরুষরূপে আবির্ভূত হয়েছেন। প্রচার করেছেন ঈশ্বর-প্রাপ্তির বাণী। কেউ রাজা প্রতিষ্ঠা করেছেন। আবার কেউবা রাজ-পৃষ্ঠপোষকতা লাভ করেছেন। কিন্তু স্বামী বিবেকানন্দ উল্লিখিত মহাপুরুষদের থেকে একেবারেই আলাদা। বিবেকানন্দের সাম্য-শান্তি প্রতিষ্ঠার জন্য কোন রাজ পৃষ্ঠপোষকতার দরকার হয়নি। প্রয়োজন হয়নি রোমান সম্রাট কনস্টাইন বা মৌর্য্য সম্রাট অশোকের মতো ধর্মান্তরের । এমনকি ঈশ্বর প্রেরিত দূত বা অবতার পুরুষ রূপেও মানুষের সামনে এসে তিনি দাঁড়ান নি । মানুষ বিবেকানন্দ মানুষের প্রতিনিধি হয়ে মানবজাতির পাশে এসে দাঁড়িয়েছেন। নিজ

ধর্ম ও সংস্কৃতির ভিত্তির উপর দাঁড়িয়ে প্রয়োগ করলেন ‘অভেদ-নীতি’ । ‘ত্যাগ’, ‘সেবাধর্ম’ ও ‘সাম্যে’র বাণী প্রচার ও প্রসারের মধ্য দিয়ে সমষ্টির কল্যাণ ও মুক্তির পথ খুঁজলেন। জীব ও জগৎ পরম সত্তার অংশ - এই বৈদান্তিক ভাবধারায় তিনি উপলব্ধি করলেন আত্মমোক্ষ নয় সমষ্টির মোক্ষের কথা। এ বিষয়ে তাঁর মত- “আত্মনো মোক্ষার্থে জগদ্ধিতায় চ” অর্থাৎ জগতের কল্যানের মধ্য দিয়েই ঘটবে নিজের মুক্তি । স্বামীজী আমৃত্যু তাই জগতের কল্যাণে কাজ করে গেছেন। এ বিষয়ে তাঁর কুণ্ঠাহীন ঘোষণা -

“যদি এ দেহটা পরের সেবায় যায়, তবে তো ইহা ধন্য
হইল। যদি একজন লোকেরও যথার্থ উপকার হয়,
সেজন্য আমি হাজার হাজার দেহ দিতে প্রস্তুত আছি”। ৮

‘শিবজ্ঞানে জীবসেবা’র এই মহান ধর্মটি বিবেকানন্দ লাভ করেছিলেন তাঁর গুরু শ্রীরামকৃষ্ণদেবের কাছ থেকে । এই যে সামাজিক কাজ, যাকে আমরা বৈদিক সংজ্ঞায় নিষ্কাম কর্ম বলতে পারি তা আজ বিকীর্ণ হয়ে আছে সমগ্র বিশ্বে । রামকৃষ্ণ মঠ ও মিশনের অজস্র কর্মপদ্ধতির মধ্যে এই মহাধর্মসেবার ভাবটিই নিহিত রয়েছে। বেদান্তে বলা হয়েছে জীবকে শিব (ঈশ্বর) রূপে সেবা করার কথা । বেদান্তের এই ভাবকে কার্যকরী করে বিশ্ববাসীর অন্তরে সঞ্চার করে দিতে পেরেছিলেন একমাত্র বিবেকানন্দই। বাস্তবিকই বনের বেদান্তকে ঘরে এনে মানুষে ঈশ্বর ভাবনার মধ্য দিয়ে জীবসেবারূপ *'Practical Vedanta'* প্রবর্তন করলেন স্বামী বিবেকানন্দ ।

স্বামী বিবেকানন্দের নব্য বেদান্তের (*Practial Vedanta*) মূল ভাবনা

ভারতীয় দর্শনে বৈদান্তিক সাধুগণ গৌতমবুদ্ধ, মহাবীর, শ্রীচেতন্য, গুরু নানক-সহ অনেকেই ঈশ্বর প্রাপ্তির পথ দেখিয়েছেন পদ্ধতিগতভাবে ভক্তি আর ঈশ্বরের উপর জোর দিয়ে। আর স্বামী বিবেকানন্দ ও রামকৃষ্ণ ঠাকুরের কাছে প্রাপ্ত পরম সত্যের উপলব্ধিতে ব্যাকুল হলেন মানুষকে মানুষ হিসেবে গড়ে তোলার জন্য। ঠাকুর শ্রীরামকৃষ্ণের তিরোধানের পর তিনি ঝাঁপিয়ে পড়লেন কর্মযজ্ঞে। কাশ্মীর থেকে কন্যাকুমারী, ভারত থেকে আমেরিকা। বৈদান্তিক ভাবধারার প্রচার ও প্রসারের মধ্যে দিয়ে সমগ্র বিশ্ববাসীকে বুঝতে শেখালেন একমাত্র সত্য হল পরমব্রহ্ম এবং এই ব্রহ্ম বা ঈশ্বরের প্রত্যক্ষ জীবন্ত মূর্তি হ’ল মানুষ। এই মানুষের মুক্তির জন্যই তিনি সব ত্যাগ করে সন্ন্যাসী হলেন। সর্বধর্ম সমন্বয়ের মধ্য দিয়ে মানবকল্যাণের মধ্য দিয়ে একই সত্যস্বরূপ, একই ঈশ্বরের সাধনায় নিমগ্ন হলেন। এবং ঘুমন্ত বিশ্ববাসীর চৈতন্য জাগরণে সচেষ্ট হলেন। বেদান্তের অন্তর্নিহিত ভাবসত্য তুলে ধরে বললেন—

“যদি ভিতরে চলিয়া যাও, তবে এই একত্ব দেখিতে পাইবে
মানুষে মানুষে একত্ব, নরনারীতে একত্ব, জাতিতে জাতিতে
একত্ব, উচ্চ-নীচে একত্ব, ধনী-দরিদ্রে একত্ব.... যদি আরো
অভ্যন্তরে প্রবেশ কর দেখিবে ইতর জীবজন্তুও সবই - এক”। ৯

- এভাবে দিশাহারা আত্মগ্লানিতে ভোগা মানবজাতিকে, প্রতিটি সম্প্রদায়ের মানুষকে মাথা উঁচু করে বাঁচতে শেখালেন। ধর্মভাবনার সঠিক প্রয়োগের মধ্য দিয়ে মানুষের মধ্যে ঘুমন্ত দেবতাকে জাগিয়ে তুলতে চাইলেন। বিশ্ববাসীকে শেখালেন ধর্মনিরপেক্ষতা ও অসম্প্রদায়িকতার পাঠ। দিলেন ‘একাত্মতা’র মহামন্ত্র। এভাবেই স্বামীজী এক নতুন যুগের সূচনা ঘটালেন। জ্ঞান, ভক্তি ও কর্মযোগের এমন অপূর্ব সমন্বয় এর আগে জগতে কেউ করতে পারেন নি। বেদান্ত সম্পর্কে স্বামীজীর এই নতুন ব্যাখ্যা, কর্মযোগ, জ্ঞান ও ভক্তির প্রকাশের মধ্য দিয়ে গড়ে উঠবে বিবেকানন্দের সেই কাঙ্ক্ষিত স্বপ্নের পৃথিবী। জন্ম দেবে এক নতুন ‘সামাজিক দর্শন’, ‘নবীন

সমাজ বিজ্ঞান', 'নতুন সামাজিক সচেতনতা', এক অখণ্ড পরিপূর্ণ জীবন যাকে স্বামীজী 'সত্যযুগ' নামে আখ্যা দিয়েছেন । এই সত্যযুগ হবে অবশ্যই স্বাধীনতার যুগ, মুক্তির যুগ। লক্ষ লক্ষ মানুষ মুক্ত হবে; তাদের অজ্ঞান-শৃঙ্খল থেকে মুক্ত হবে, মানসিক, নৈতিক ও আধ্যাত্মিক ক্ষেত্রে মুক্ত হবে। তা হবে 'স্বাধীন স্বর্গরাজ্য', আকাশের মতো বিশাল ব্যাপ্ত ও মহাসাগরের মতো গভীর । এই সত্যানুসন্ধানের অভিযানে সাহসের সঙ্গে একাত্ম হয়ে সকলকে পথে নামতে হবে যতক্ষণ না লক্ষ্যে পৌঁছাই। স্বামীজী তাই বজ্রনির্ঘোষে বিশ্ববাসী সকলের উদ্দেশ্যে বলেছেন- *"Arise, awake and stop not till the goal is reached".* ১০ অর্থাৎ "ওঠ, জাগ, লক্ষ্যে না পৌঁছানো পর্যন্ত থেমো না।"

এই উদ্দেশ্যেই মানুষ তৈরি করার কাজে স্বামীজী তাঁর সারাজীবন ব্যয় করেছেন। স্বামীজীর কর্মধারা আজও অব্যাহত, তাঁর নিজের কথাই তার সাক্ষী-

"আমি কোনদিন কর্ম হইতে ক্ষান্ত হইব না। যতদিন না সমগ্র
জগৎ ঈশ্বরের সঙ্গে একত্ব অনুভব করিতেছে, ততদিন
আমি সর্বত্র মানুষের মনে প্রেরণা জাগাইতে থাকিব" । ১১

বাস্তবিকই স্বামী বিবেকানন্দ তাঁর স্বল্পায়ু জীবনে বিশ্ববাসীকে যা দিয়ে গেলেন তাতে 'ঊষার স্বর্ণদ্বার' খুলে গেল, সমগ্র মানবজাতি খুঁজে পেল মুক্তিলাভের পথ, অসীম অনন্তের চির শাশ্বত চরম অনুভূতি । স্বামীজীর 'রচনা ও বাণী' , তাঁর আদর্শ ও ভাবধারা বেদান্ত সম্পর্কে চিন্তা-ভাবনা মন্থন করে যে দিকগুলি উঠে আসে সেগুলি সূত্রাকারে আমরা তুলে ধরতে পারি এভাবে -

বেদান্ত-ভিত্তিক শিক্ষাদানঃ

স্বামীজী উপলব্ধি করেছেন, বেদান্তই হতে পারে ভবিষৎ পৃথিবীর ধর্ম। তাই শৈশব থেকেই আমাদের বিজ্ঞান ও বেদান্তের যুগ্ম অনুশীলন দরকার বলে স্বামীজী মনে করেছেন । বিজ্ঞানের জ্ঞান আমাদের বাহ্যজগৎ চিনতে সাহায্য করে । মানুষের বহির্জীবনকে গড়ে তোলে । বাইরে থেকে ঝকঝকে বানায় । করে তোলে সুদক্ষ, সক্রিয়, বুদ্ধিমান । বিজ্ঞানলব্ধ জ্ঞানের সাহায্যে তাই সুগম হয় জীবিকা অর্জনের পথ । কিন্তু বেদান্ত গড়ে তোলে মানুষের অন্তর্জীবনকে । তার ঘুমন্ত অন্তরাত্মার জাগরণ ঘটায়। জাগিয়ে তোলে অন্তরের মহৎ গুণগুলিকে । বেদান্তের জ্ঞান মানুষকে করে তোলে প্রেমময়, দায়িত্বশীল, সৎ এবং সংযত রূপে। বেদান্তের মধ্যে মানুষ খুঁজে পায় বেঁচে থাকার সুন্দর জীবনপথ (way of life)। আত্মমুক্তির সঙ্গে ঘটায় সমষ্টির মুক্তি ও কল্যাণ চিন্তা এবং অখন্ড ঐক্যের ভাবনা যা বেদান্ত দর্শনের মূল কথা। তাই বেদান্ত-ভিত্তিক শিক্ষার মাধ্যমেই মানবজাতির সার্বিক উন্নয়নের কথা ভেবেছেন বিবেকানন্দ । আর এই লক্ষ্যেই সবার প্রথমে তিনি বনের বেদান্তকে ঘরে ফিরিয়ে আনলেন। যুগ যুগ ধরে আমাদের ধর্মাচার্যরা বেদান্তকে সীমাবদ্ধ করে রেখেছিলেন সাধু-সন্ন্যাসী এবং নির্জনবাসী তপস্বীদের মধ্যে - সমগ্র মানবসমাজে যাঁদের সংখ্যা ছিল চিরকালই মুষ্টিমেয় । মানবসমাজের গরিষ্ঠ অংশ সবসময়ই গৃহী- তাঁদের কাছে এই অপরূপ বেদান্ততত্ত্ব অধরাই ছিল। স্বামীজী এই ক্ষুদ্র গন্ডি ভেঙে বেদান্তের অমূল্য সম্পদ সর্বসাধারণের হাতে তুলে দিলেন । এ প্রসঙ্গে স্বামীজী নিবেদিতাকে বলেছেন -

"এতদিন আমাদের ভারতীয় ধর্মের মহাত্রুটি হয়েছে এইখানে যে, আমরা
শুধু দুটি কথাই জেনে এসেছি-ত্যাগ আর মুক্তি । ...গৃহস্থদের জন্য
কিচ্ছু নেই ! কিন্তু এই গৃহী মানুষগুলিকেই আমি সাহায্য করতে চাই ।

*... জাতির জীবনে শক্তি-সঞ্চার করতেই হবে (যে জাতিতে গৃহীরাই গরিষ্ঠ সংখ্যক) এবং তা করতে হবে (বেদান্ত-ভিত্তিক) শিক্ষার মাধ্যমে।”*১২

বেদান্ত শিক্ষার গুরুত্ব যে কতখানি তা বোঝাতে গিয়ে তিনি অন্যত্রও বলেছেন -

*"জগতের সকলেরই বেদান্তের চর্চা করা কেন উচিত, তাহার প্রথম কারণ- বেদান্তই একমাত্র সার্বভৌমিক ধর্ম। দ্বিতীয় কারণ- জগতে যত শাস্ত্র আছে, তন্মধ্যে কেবল ইহারই উপদেশাবলীর সহিত বহিঃপ্রকৃতির বৈজ্ঞানিক অনুসন্ধানে যে ফল লব্ধ হইয়াছে, তাহার সম্পূর্ণ সামঞ্জস্য আছে। ...তৃতীয় কারণ- ইহার অদ্ভুত যুক্তিসিদ্ধতা।”*১৩

এইসব কারণেই স্বামীজী বেদান্তকে পৃথিবীর সার্বজনীন বলে আখ্যা দিয়েছেন। স্বামীজী তাই দৃঢ়কণ্ঠে, দৃপ্তভঙ্গিমায় বিশ্বের তাবড় তাবড় বিজ্ঞদের সভায় দাঁড়িয়ে উপনিষদের বাণী ঘোষণা করে বলে উঠেছিলেন -

*"শীঘ্রই প্রত্যেক ধর্মের পতাকার উপর লিখিত হইবে বিবাদ নয়, সহায়তা ; বিনাশ নয়, পরস্পরের ভাবগ্রহণ; মতবিরোধ নয়, সমন্বয় ও শান্তি।”*১৪

সমন্বয়াদী ভাবধারার আদর্শ

বৈদান্তিক ভাবনায় স্বামীজী সকল অস্তিত্বের মধ্যে ঐক্য অনুভব করেছেন; মানবের মধ্যে খুঁজে পেয়েছেন দেবত্বকে । এভাবেই তিনি গড়ে তুলেছেন সমন্বয়াদী ভাবধারার আদর্শ যা ধর্মের সঙ্গে ধর্মের, মানুষের সঙ্গে মানুষের, প্রতিটি প্রাণের সঙ্গে ব্রহ্মের, প্রাচ্যের সঙ্গে পাশ্চাত্যের । একত্রীকরণের এমন উচ্চ ধারণা, বিরাট প্রয়োগ-প্রচেষ্টা সমগ্র পৃথিবীর কাছেই এক নতুন দর্শন।

মানবতার আদর্শ প্রতিষ্ঠা

বৈদান্তিক ভাবধারায় উদ্বুদ্ধ হয়ে স্বামীজী মানবতার নতুন সংজ্ঞা প্রণয়ন করেছেন। জাত-পাত, ধর্ম-বর্ণ, লাঞ্ছিত, নিপীড়িত, দীন-দুঃখী, পতিত -অস্পৃশ্য- সবার মধ্যেই তিনি দেবত্বের অস্তিত্ব খুঁজে পেয়েছেন। তাই প্রতিটি মানুষের জন্য তাঁর প্রাণ কেঁদেছে। মায়া-মমতা-ভালোবাসায় বুকে আঁকড়ে ধরেছেন। দিয়েছেন মানুষ হবার শিক্ষা। ত্যাগ ও সেবার মধ্য দিয়ে গড়ে তুলেছেন মানবতার মহান আদর্শ। ত্যাগ ও সেবাধর্মের মধ্য দিয়ে বিবেকানন্দের অনুরাগী শিষ্যগণ আজও মানবতার ভাবধারা প্রতিষ্ঠার কাজ করে চলেছেন নিরলসভাবে। স্বামীজীর স্বপ্নের পৃথিবী গড়াই তাঁদের মূল লক্ষ্য ।

বিশ্বভ্রাতৃত্ব স্থাপন

বেদান্ত দর্শনের মূল কথাই হল একাত্মবোধ। আজ থেকে হাজার হাজার বছর আগে আমাদের মুনি-ঋষির কণ্ঠে উচ্চারিত হয়েছিল “বসুধৈব কুটুম্বকম্” । সমগ্র বিশ্বই আমার পরিবার, জগতের সবাই আমার আত্মীয় । ঋষির কণ্ঠে উচ্চারিত সেই ভারতীয় দর্শনের বাণী স্বামীজী শিকাগোর মহাধর্মসভায় সবার প্রথমে উচ্চারণ করেছেন। মহাধর্মসভায় বক্তৃতার শুরুতেই স্বামীজী আমেরিকাবাসীকে সম্বোধন করে বললেন *“Sisters and Brothers of America”*। এভাবে আন্তরিক আবেগের রাখিবন্ধনে ছোট্ট একটি সম্বন্ধের মধ্য দিয়ে স্বামীজী বিশ্বধর্মসভার মূল লক্ষ্যকে যেন সার্থক করে তুললেন।

অখণ্ডতার আদর্শ প্রতিষ্ঠা

বেদান্ত ভাবধারায় স্বামীজী সমগ্র বিশ্বে অখন্ডতার আদর্শ প্রতিষ্ঠা করার স্বপ্ন দেখেছেন । তাঁর জীবনব্রতের প্রধান উদ্দেশ্যই ছিল দুটি - *“One of world-moving, and another nation-making”*১৫

অর্থাৎ ভারতীয় জাতিগঠন এবং ভারতের বাইরে যে বিরাট পৃথিবী তাকেও পরিচালন। একসময় তিনি বলেছিলেন *"Truth is my God, the Universe my Country."*১৬ অর্থাৎ সত্যই আমার ভগবান, আর বিশ্বব্রহ্মাণ্ডই আমার স্বদেশ। এই সার্বজনীন আদর্শই সমগ্র মানব সমাজে স্বামীজী প্রচার করে গেছেন। নিজেদের অন্তরে অন্তরে এক অখণ্ড দৈবীসত্তাকে উপলব্ধি করা এবং সবার মধ্যে সেই দেবত্বকে প্রত্যক্ষ করা এটিই অদ্বৈত-বেদান্তের মূল তত্ত্ব। আর এই আদর্শকেই ভারতবর্ষ যুগ যুগ ধরে অবলম্বন করে এসেছে যা বিবেকানন্দ জগতে প্রচার ও প্রসার করে গেছেন। তাই বিবেকানন্দ শুধু ভারতবর্ষের আধ্যাত্মিক গুরু নন- সমগ্র পৃথিবীর তিনি আচার্য ।

সমষ্টির আত্মজাগরণ ও আত্মমোক্ষ

বেদান্তের মূল ভাবনাই হল জাগরণ। এই জাগরণ সবদিক থেকেই -দৈহিক, মানসিক, আত্মিক । রাজনৈতিক, সামাজিক, ধর্মীয় সবক্ষেত্রেই জাগৃতি প্রয়োজন অনুভব করেছেন স্বামীজী। পরাধীন জাতি বৈষম্যে জর্জরিত বিশ্ববাসীকে তার বিবেক অন্তরাত্মার জাগরণের পথ দেখিয়ে দিলেন বিবেকানন্দ। জীব ও জগৎ পরম সত্তার অংশ- এই বৈদান্তিক ভাবনায় তিনি সমষ্টির মুক্তির কথা ভেবেছেন। এ বিষয়ে তাঁর মত, "আত্মনো মোক্ষার্থে জগদ্ধিতায় চ"। অর্থাৎ আত্মমোক্ষ নয়, জগতের কল্যাণের মধ্য দিয়ে সমষ্টির মোক্ষই স্বামীজীর মূল উদ্দেশ্য।

শিবজ্ঞানে জীবসেবা

গুরুপ্রদত্ত 'শিবজ্ঞানে জীবসেবা' এই মহামন্ত্রে দীক্ষা নিয়ে স্বামী বিবেকানন্দ জগতের সকলের সেবায় আজীবন কাজ করে গেছেন এবং এই লক্ষ্যেই তিনি প্রতিষ্ঠা করেছেন 'শ্রীরামকৃষ্ণ মিশন' (১৮৯৭)। আজও সারা বিশ্ব জুড়ে বিবেকানন্দের এই ত্যাগ ও সেবাধর্মের আদর্শকে এই মিশনের সন্ন্যাসীদল বাস্তবায়িত করে চলেছেন।

বেদান্তের আদর্শই হবে বিশ্বমানবের ধর্মীয় আদর্শ

স্বামী বিবেকানন্দ তাঁর বাণী ও রচনার দ্বারা, ধর্ম ও কর্মসাধনার দ্বারা, ত্যাগ ও সেবাধর্মের দ্বারা বিশ্ববাসীকে এটাই বুঝিয়েছেন যে, একমাত্র বেদান্তের আদর্শই হবে বিশ্বমানবের ধর্মীয় আদর্শ। বেদান্তের মধ্যে যে ভাবধারার আদর্শ আছে তা কেবলমাত্র ভারতবর্ষের নয়, ভারতবাসীর নয় – তা বিশ্বজনীন। চিরন্তন মানবজাতির । অতীত, বর্তমান এবং অনাগত ভবিষ্যৎকালের সকল মানুষেরই জীবনের আদর্শ। বেদান্তের মধ্যেই নিহিত আছে সর্বধর্ম সমন্বয়ের কথা, আছে প্রেম-মৈত্রী ভালোবাসার কথা, আছে অখন্ডতার কথা, আছে সত্য-শিব-শান্তির মহামৃত্যুঞ্জয় মন্ত্র।

পরিশেষে বলা যায়,স্বামীজী যে মুক্তার সন্ধানে জীবনসমুদ্রে ডুব দিয়েছিলেন তা তিনি তুলে আনতে পেরেছিলেন। আজ ভারতবর্ষ তো বটেই, এমনকি পৃথিবীর বিভিন্ন দেশে স্বামীজীর নামে যে উত্তাল তরঙ্গ উঠেছে তাতে মনে হয়, স্বামীজী যেন নতুন করে আমাদের মধ্যে ফিরে এসেছেন। আজ বিশ্বব্যাপী যে-সংকট চলছে তা অপসারণের জন্য স্বামীজীর বাণী ও বৈদান্তিক ভাবধারার আদর্শ বিশল্যীকরণের কাজ করতে পারে নিঃসন্দেহে। কারণ স্বামীজী যে 'অমৃতকুম্ভ' আমাদের দান করে গেছেন তাতে আছে গোটা মানবজাতির সঞ্জীবনী সুধা । পৃথিবীতে যখনই সংকটের উদ্ভব হবে, তখনই স্বামীজীর বানী মুক্তির পথ দেখাবে । বলা বাহুল্য, স্বামীজী শুধু অতীত নন, তিনি চলমান সময়ের সঙ্গে আগত ভবিষ্যৎ । মানবজাতির মুক্তির কান্ডারি । যুগসমস্যা সমাধানের মহানায়ক। বিশ্বধর্ম প্রতিষ্ঠার মহাগুরু । তাই যতদিন আমাদের সভ্যতা টিকে থাকবে, মানুষ বেঁচে

থাকবে, জগতের অস্তিত্ব থাকবে- স্বামী বিবেকানন্দ ও তাঁর বেদান্ত ভাবনার প্রাসঙ্গিকতা আরও জোরালোভাবে উপস্থিত হবে। কেননা স্বামীজীর বাণী ও বেদান্ত সার্বজনীন- তা শুধু একালের নয়, তা চিরন্তন, শাশ্বত। তাই চিরকাল এর প্রাসঙ্গিকতা থাকবে।

তথ্যসূত্র

১) জন্মসার্ধশতবর্ষের শ্রদ্ধাঞ্জলি স্বামী বিবেকানন্দ, স্বামী চৈতন্যানন্দ (সম্পাদনা), উদ্বোধন কার্যালয়, কলকাতা, ১৪২২ পৃ., ৬৩৪, ৬৩৭ ।

২) বিশ্ববিবেক, অসিতকুমার বন্দ্যোপাধ্যায়, শঙ্করীপ্রসাদ বসু ও শঙ্কর সম্পাদিত, বাক্ সাহিত্য, ১৯৬৩, পৃ., ১২২-২৩

৩) The Complete Works of Swami Vivekananda, vol-I, Advaita Ashram, 1986, p. 24

৪) স্বামী বিবেকানন্দের বাণী ও রচনা, ৮ ম খন্ড, উদ্বোধন কার্যালয়, ১৪১৯, পৃ., ২৯০

৫) তদেব, ৫মখন্ড, উদ্বোধন কার্যালয়, ১৯৮৮, পৃ.,৮৫

৬) তদেব, ৬ষ্ঠ খন্ড, ১৪৯৮, পৃ., ২১০

৭) তদেব, ৩য় খন্ড, ১৪০৬, পৃ.,২৮৬

৮) তদেব, ৮ম খন্ড, ১৪১৯, পৃ.,২৬০

৯) তদেব, ২য় খন্ড, ১৪০৭, পৃ., ১৩৫

১০)The Complete work of Swami Vivekananda, Vol-I, Advaita Ashrama, 1986, p. 342

১১) স্বামী বিবেকানন্দের বাণী ও রচনা, ১০ম খন্ড, উদ্বোধন কার্যালয়, পৃ., ২০৯

১২) C.W.N, Vol. I, p. 139 - 40

১৩) স্বামী বিবেকানন্দের বাণী ও রচনা, ৮ম খন্ড, উদ্বোধন কার্যালয়, ১৪১৯, পৃ., ২৯১

১৪) তদেব, ৫ম খন্ড, পৃ., ১০২

১৫) C.W.N, Vol-I, p.157

১৬) C.W.N, Vol-V, p.92

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 167-172
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सोशल मीडिया में हिन्दी की उड़ान

डा0 डी0 सी0 पाण्डेय
असि0 प्रोफे0 हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय हल्द्वानी शहर, किशनपुर गौलापार कु0 वि0 वि0 नैनीताल, उत्तराखण्ड. – 263139

सरांश :

बहुआयामी नवसोपानों को स्पर्श करती आज की हिन्दी की प्राचीनता एवं गतिशिलता सर्वविदित है। अपने आँचल में विविध भाषाओं के शब्दों को समाहित करने की अद्भुद समाहार शक्ति से विभूषित हिन्दी का फलक संख्यानुयायियों की दृष्टि से किसी परिचय का मोहताज नहीं है। डिजिटल युग के दौर में हिन्दी भाषा की महत्ता दिन–प्रतिदिन प्रमाणित होकर सामने आ रही है। इसमें सन्देह नहीं कि इन्टरनेट, सूचना प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक आदि क्षेत्र में हिन्दी भाषा ने प्रमाणित किया है कि वह समय के अनुसार स्वयं को ढालने में समर्थ है। सोशल मीडिया का जन्म विभिन्न व्यक्तियों, समाजों का विचारों के अभिव्यक्ति के लिए हुआ था जहाँ लोग भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर विचारों का सहज आदान–प्रदान कर सकें। आज इसके दुरूपयोग की भी घटना संज्ञान में आती हैं। इस चुनौती से निपटने के लिए सरकार इंटरनेट आधारित सेवाओं का भी नियमन करती है। साइबर क्राइम, साइबर टेररिज्म, डिजिटल अरेस्ट, ए. आई. की बढ़ती घटनाओं के कारण सोशल मीडिया का सावधानी से प्रयोग अपेक्षित है किन्तु सोशल मीडिया के प्रयोग अनुप्रयोग, दिशा निर्देशन आदि में भाषा का माध्यम निर्विवाद रूप से हिन्दी की सर्वस्वीकार्यता निःसन्देह है।

बीज शब्द :

सोशल साइट्स, सोशल मीडिया, भूमण्डलीयकरण, साइबर, डिजिटल, ग्लोबल हिन्दी, इन्टरनेट।

प्रस्तावना :

विगत् सहस्त्राब्दि के अन्तिम दो दशकों में जब तथाकथित बुद्धिजीवी इस बात का ढोल पीट रहे थे कि कम्प्यूटरों पर अंग्रेजी का वर्चस्व होने के कारण भाषाओं के अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में नव सीमांकन होगा तथा कुछ भाषाविद् यह दावा करते हुए सुने गये कि अनेक भाषाएँ सदा के लिए लुप्त–विलुप्त हो जायेगी। क्योंकि प्रेषण–सम्प्रेषण के तकनीकी कौशलों के कारण इण्टरनेट अंग्रेजी को छोड़कर सभी भाषाओं को निगल जायेगा। किन्तु विगत् चार दशकों के क्रमंशः उदारीकरण, निजीकरण, वैश्रवीकरण, डिजिटलीकरण, कृत्रिम बुद्धिमता, रोबोटिक विज्ञान डाटा विज्ञान व मशीन लर्निंग आदि ने समूची मानवता के लिए नव सम्भावना के द्वार खोले, जहाँ देश, काल, सीमा, लिंग, मजहब, सम्प्रदाय जाति, क्षेत्र, वर्चस्व आदि की संकीर्ण सीमाओं को तकनीक ने बोना कर दिया लगता है। सूचना की दृष्टि से आज पूरा विश्व हमारी मुट्ठी में है। पूरा संसार एक गाँव–बस्ती के रूप में परिवर्तित हो

गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इंटरनेट विज्ञान की वह अनुपम निधि हैं जिसने विश्व मानचित्र के प्रति आम अवाम की दृष्टि को द्रुतगति से परिवर्तित करने का कार्य किया है आम से खास तक सभी को त्वरित सूचनाएं आसानी से प्रदान करनें में इन्टरनेट का महत्व निर्विवाद है। आज इण्टरनेट की उपस्थिति, भोज्य पदार्थों में नमक की तरह से प्रमाणित होती जा रही है। सोशल मीडिया के प्लेटफार्म में हिन्दी भाषा का सतत प्रयोग उसे निरन्तर लोकप्रियता के पायदान पर पहुंचा रहा है।

मूल पत्र :

इण्टरनेट के जनक प्रोफे0 जे0 सी0 लिक्लाइडर की परिकल्पना में आज का परिदृश्य अवश्य रहा होगा। इंटरनेट का प्रारम्भ सन 1969 ई0 में अमेरिकी रक्षा विभाग द्वारा एडवांस्ड रिसर्च एजेंसी नेट के विकास के लिए किया गया। भारत में इण्टरनेट सन 1995 ई0 में आया उसी साल मोबाइल फोन की सेवा भी शुरू हुई।[01] आज जीवन से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में इण्टरनेट हमारे साथ सहयात्री सिद्ध हो रहा है। व्यापार, कारोबार, बाजार, शिक्षा, शोध, चिकित्सा, यात्रा, विज्ञापन, अनुसंधान, राजनीति, साहित्य, कला, संगीत, पर्यावरण, मौसम, गुप्तचरी, रक्षा, सुरक्षा, उत्पादन, उपयोग, विनिमय, वितरण, राजस्व, खनन, विपणन, आदि लगभग सभी क्षेत्रों में सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने सोशल मीडिया को नये आयाम प्रदान किये हैं। यही कारण है कि इण्टरनेट की विशेष सौगात सोशल मीडिया के प्रति जनाकर्षण दिनों–दिन बढ़ता ही जा रहा है। लाभ के साथ हानि भी चलती है, किन्तु भय–आशंका से उसका लाभ न लेना समझदारी नहीं कहलाती। सूचना की चोरी, यौन अपराध, अश्लीलता, हैकिंग, वायरस भेजना–धमकाना, डिजिटल अरेस्ट करना, पहचान छुपाना–चुराना, ब्लैकमेलिंग, धोखाधड़ी, ट्रोलिंग, ए. आई. द्वारा नकली झूठ फैलाकर राजनीतिक व आर्थिक लाभ लेना आदि इसके नकारात्मक पहलू अवश्व हैं परन्तु ऑनलाइन अपराध, वैचारिक व मानसिक प्रदूषण को रोकने समाप्त करने के लिए साइबर अपराध नियन्त्रण विषयक कदम का अनुपालन सहित सावधानी एवं जागरूकता भी वांछित है। डिजिटल रूप से सशक्त भारत में जहाँ साक्षर किसान घर बैठे बीजों, मौसम की जानकारी सरलता से प्राप्त कर रहा है, वह चाहे ई लर्निंग, ई–कामर्स, ई–बाजार, ई–मेल, ई–गर्वनेन्स या ई–चौपाल आदि इन सबकी भाषा का माध्यम वही है जो जनता का बड़ा हिस्सा बोलता, सुनता समझता है अर्थात् हिन्दी भाषा। आज विश्व के सात अरब से अधिक लोगों में से चार अरब लोग लगभग इन्टरनेट से जुड़े हैं। विश्व में चीन और अमेरिका के बाद इन्टरनेट का प्रयोग करने वाले भारत में ही है।[02] हिन्दी भाषा और साहित्य का भारतीय अखण्डता, एकता एवं सांस्कृतिक समृद्धि से नाभि–नाल का सम्बन्ध सर्वविदित है। भाषायी विभेद के आधार पर विष वमन करने वालों को इसका उत्तर सोशल मीडिया में हिन्दी के अविरल सशक्त उपस्थिति की प्रतिशता से दिया गया है। यह उचित है कि एक दौर वह भी था जब पाठक हिन्दी भाषा व्याकरण की समझ विकसित करने के लिए स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं, साक्षात्कार आदि का अध्ययन–श्रवण करते थे। भूमण्डलीकरण के प्रभाव के कारण अब भाषा भी बाजार को ध्यान में रखकर पढ़ी–गढ़ी जा रही है। भला हिन्दी भाषा का सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर इसके कलेवर में समयानुकूल होना स्वाभाविक ही है। उ0 प्र0, म0 प्र0, राजस्थान, विहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, हिमांचल, दिल्ली, हरियाणा, चण्डीगढ़ एवं सीमावर्ती अन्य राज्यों की रोटी–बेटी की भाषा हिन्दी का बाजार देश की कुल आबादी का आधा से अधिक होने के कारण बाजार की दृष्टि से इस पट्टी पर टक–टकी लगाये सोशल मीडिया के व्यापारी देखे जा सकतें है। अपने उत्पाद को कम से कम समय–लागत में अधिक से अधिक लोगों तक सोशल मीडिया से हिन्दी भाषा में विज्ञापन की कला द्वारा प्रस्तुत या विक्री करने की मंशा बाजारवादी ताकतों की वर्तमान में सरलता से समझी जा सकती है। फलतः हिन्दी भाषा के प्रति लोगों का रूझाान बढ़ा है।

साहित्य, शिक्षाा और संस्कृति के विकास का उन्नयन के लिए भी सोशल मीड़िया का प्रयास श्लाघनीय माना जा सकता है। हिन्दी भाषा के ब्लॉग लेखक, यूनीकोड, अनुनाद, सिनेमा, धारावाहिक, विज्ञापन, क्रीड़ा, राजनीति, दूरदर्शन के विविध चैनल भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष

रूप से अपने कार्यक्रमों द्वारा हिन्दी भाषा को बढ़ाने का ही कार्य कर रहे हैं। हिन्दी को आज खुले आसमान में कुलाँचे भरते हुए देखा जा सकता है। इस पुनीत कार्य में इंटरनेट की भूमिका निःसन्देह निर्णायक रही है। इन्टरनेट डॉट ओ0 आर0 जी0 द्वारा स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध निःशुल्क सेवाओं से ही डिजिटल इंडिया की यात्रा को सरलता से समझा जा सकता है। सभी तक इन्टरनेट की सुविधा का पहुंचना हिन्दी भाषाा की प्रगति का एक आधार बनता है। नेट न्यूट्रिलिटी का मतलब होता है कि नेटवर्क ऑपरेटर कोई भेदभाव न करें आप जिन सेवाओं का प्रयोग करना चाहते हैं उसमें कोई सीमा न बाँधों। इन्टरनेट के खुलेपन का यह बहुत जरूरी हिस्सा है और हम पूरी तरह इसके पक्ष में हैं।[03]

विभिन्न जनसरोकारों के प्रति लोगों में चेतना बढ़ाने या कभी जनप्रमाद, अफवाह द्वारा सामाजिक सुरक्षा को चुनौती देता सोशल मीडिया भी शासन द्वारा नियमन–नियन्त्रण की दृष्टि में रहता है। लोकपाल की नियुक्ति हेतु भारत में अन्ना आन्दोलन, 2014 के लो0 स0 व इसके बाद के विभिन्न चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। ट्यूनीशिया की चमेली क्रान्ति से लेकर अफगानिस्तान, श्रीलंका, बग्लादेश, नेपाल आदि का तख्तापलट में सोशल मीडिया की भूमिका को समझा जा सकता है। शासन–प्रशासन भी सामान्य स्थानीय भाषा में स्थिति को नियन्त्रित करने की घोषणा करता दिखता है। सोशल मीडिया तकनीक का प्रयोग करते हुए हिन्दी भाषी क्षेत्र के राजनेताओं द्वारा अपने सोशल हैंडलर्स, एक्स प्लेटफार्म पर जनता से संवाद करते दिखते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय भाषाओं के लिए गूगल खासतौर से निरन्तर अनुसंधान कर रहा है। इण्टरनेट एण्ड मोबाईल एसो0 ऑफ इण्डिया (आई0 ए0 एम0 आई0) तथा मार्केटिग रिसर्च से जुड़ी संस्था आई0 एम0 आर0 द्वारा विगत कुछ वर्षों से भारतीय भाषाओं को प्रमुखतया हिन्दी भाषा में नेट सर्फिग की स्थिति पर डेटा बनाती रही है।

आज जब हमारी दैनिक आवश्यकताओं की समस्त सूचनाओं का संग्रह एन्ड्रोयड फोन–इण्टरनेट पर संग्रहित है जिसके चलते हमारे सोचने–समझने, पढ़ने–लिखने, स्मरण करने की क्षमताओं का ह्रास हुआ है किन्तु भाषागत् आदान–प्रदान के इस सरल साधन ने सूचनाओं के विस्फोटक दौर में पाठकों तक पहुंच को सरल बना दिया है। अपने ही देश में हिन्दी के उपयोगी साफ्टवेयर विकसित हो चुके हैं। ऐसे लोग जो देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा को लिखने में कम सक्षम है वो रोमन लिपि में हिन्दी का बढ़–चढ़कर प्रयोग करते है। इन्टरनेट की वजह से ही हिन्दी भाषा का दायरा दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। ब्लाग, वेबसाइटस और सोशल मीडिया पर हिन्दी की सुदृढ़ पकड़ स्वप्रमाणित है। वैश्विक मंच पर हिन्दी को दमदार उपस्थिति देने में नेट की भूमिका निर्विवाद है दूर देश में बैठे हिन्दी भाषा प्रेमी को जोड़ने का कार्य यह नेट ही कर रहा है। आज एक लाख से अधिक ब्लाग हिन्दी में उपलब्ध है पन्द्रह से अधिक खोज इंजन हिन्दी में उपलब्ध हैं। हिन्दी के उदयीमान लेखक–लेखिकाओं के लिए इंटरनेट लांचिग पैड का कार्य कर रहा है और तो और सात समन्दर पार श्री रामचरितमानस जैसी लोकप्रिय पुस्तकें इन्टरनेट पर पढ़ी जा रही है।[04]

आकड़ों में सोशल मीडिया :

इसमें सन्देह नही कि इण्टरनेट ने हिन्दी को गैर हिन्दी भाषियों के मध्य जिस सरलता से अल्पसमय पहुँचाया है वैसा कार्य विगत हजार वर्षो के इतिहास में नही देखा गया। हिन्दी भाषा में पुरुस्कृत होने वाले अनेक नामचीन हस्तियों और हिन्दी की तरफ मुँह फेरने वाले नेता, अभिनेता, खिलाड़ी, उद्योगपति, अधिकारी वर्ग आज उसकी लोकप्रियता के कारण हिन्दी भाषा की शरण में हैं चाहे उनका उद्देश्य तात्कालिक विविध लाभ ही क्यों न हो? अन्य भाषा–भाषी भी हिन्दी के प्रति बढ़ते लगाव के कारण उसे सोचने जानने का प्रयास कर रहे हैं। संस्कृत की आधारशिला पर सुसज्जित हिन्दी की बुलन्द इमारत में अंग्रेजी, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, चीनी, तुर्की तथा जापानी आदि अनेक भाषाओं के शब्द ऐसे रच–पच गये हैं कि आपस में एकाकार से लगते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने उत्पाद के विज्ञापनों में हिन्दी भाषा के प्रयोग में निमग्न दिखती हैं। सोशल मीडिया के इस हिन्दीमय माहौल में सिनेमा, टी0 वी0 शो, ओ0 टी0 टी0 मल्टीप्लक्स साक्षात्कार के माध्यम से हिन्दी ग्लोबल ध्वजवाहक बनी हुई है। स्मार्टफोन में इन्टरनेट के जरिए सोशल मीडिया में हिन्दी भाषा

आधारित विविध तथ्यों को देखना व अन्वेषित करने की प्रवृति बढ़ती जा रही है। '33% अधेड़ उम्र की महिलाओं के सिर चढ़कर बोल रहा है स्मार्ट फोन का नशा, 50% मुख्यतः सोशल मीडिया पर चैटिंग के लिए लेती हैं स्मार्टफोन का सहारा 67% फोन पर अधिक समय गुजारने तो 33% पोस्ट पर प्रतिक्रिया को लेकर चिंतित रहती दिखीं।' [05]

आज की युवा पीढ़ी को अपने दैनिक जीवन का अधिकांश हिस्सा चैटिंग सोशल मीडिया में व्यय करता देखा जा सकता है। युवा ही क्या प्रत्येक वय–उम्र के आम–खास जन आबाल–वृद्ध को सोशल मीडिया में डूबा देखा जा सकता है विषय चाहे भिन्न –भिन्न ही क्यों न हो ? मिंट के सहयोग से हुए मार्केट रिसर्च फर्म 'यू गव' के हालिया सर्वे में यह तथ्य सामने आया कि भारतीय शहरों में रहने वाले पचास फीसदी से अधिक युवा सप्ताह में कम से कम चार घंटे या तो सोशल मीडिया में गुजार देते हैं या फिर इन्टरनेट सर्फिंग में मशगूल रहते हैं। इस सर्फिंग का अपने पाठयक्रम या कार्यालयों कार्य से सरोकार कम ही देखा गया है पर इसकी भाषा माध्यम में हिन्दी की प्रतिशतता अपेक्षा से कहीं अधिक दिखती है। शोधकर्ताओं के अनुसार साहित्य, संगीत, कला, फोटोग्राफी, कुकिंग, बागवानी, समाज–सेवा सहित अन्य रचनात्मक कार्यो में शहरी युवा कुछ खास दिलचस्पी नहीं रखते। उन्हें किताबें पढ़ना, नई जानकारियाँ जुटाना, सोशल मीडिया पर दोस्तों के साथ समय व्यतीत करना, जिम में पसीना बहाना अधिक अच्छा लगता है। निम्नांकित तालिका और तथ्यों से और अधिक स्पष्ट होता है कि जिसमें 180 शहरों के पाँच हजार लोगों पर सर्वे कर निष्कर्ष निकाला गया कि खाली समय में हमारे युवा क्या करते हैं ? और उनकी सोशल मीडिया का भाषा का माध्यम अधिकांशतय हिन्दी की रहता है [06]:–

क्रम संख्या	इण्टरनेट अन्य पर व्यतीत विषय क्षेत्र	प्रतिशत
1.	संगीत सुनना, वाद्ययन्त्र बजाना	14.08%
2.	पढ़ना	58.04%
3.	इण्टरनेट सर्फिग, सोशल मीडिया पर चैटिंग	54.09%
4.	ऑन लाइन शो का लुत्फ उठाना	46.4%
5.	टी0 वी0 देखना	40.3%
6.	पसंदीदा पकवान बनाना	31.7%
7.	योग व्यायाम	37.3%
8.	बाहर खेलना–कूदना	29.06%
9.	फोटोग्राफी	25.04%
10.	घर के अन्दर गेम खेलना	22.01%
11.	कला, रचनात्मक कार्य	22.01%
12.	बागवानी	17.08%

विभिन्न उम्र अन्तराल के लोगों का सोशल मीडिया के सन्दर्भ में समय विभाजन प्रतिशत के अनुसार इस तरह है :–

क्र0स0	वय अन्तराल	सप्ताह में न्यूनतम एक घंटे योग व्यायाम करने वाले	सप्ताह में न्यूनतम चार घंटे इण्टरनेट, सोशल मीडिया से चिपके रहने वाले	टी0 वी0 देखनें वाले	ऑनलाइन से फिल्मों का लुत्फ उठाने वाले
1.	38–53 साल	41.04%	55.65%	92.78%	40.26%
2.	29–37 साल	42.92%	54.56%	91.29%	55.55%
3.	22–28 साल	47.32%	56.87%	83.62%	71.46%
4.	18–21 साल	47.05%	56.99%	75.44%	82.34%

सोशल मीडिया की अतिशयता मानसिक स्वास्थ के लिए हितकारी नहीं है यह जानते समझते हुए भी प्रत्येक उम्र, वर्ग का आम–ओ–खास इसमें इस कदर डूबा है कि उसकी भले ही अन्य दिनचर्या प्रभावित हो जाये पर इसे बढ़ते फैलते रोग की चपेट में आने से अब विरला ही बच सकता है । परन्तु हिन्दी भाषा के पाठ़को–उपभोक्ताओं तक पहुंचने के लिए उत्पादक सोशल मीडिया में हिन्दी भाषा में विज्ञापन द्वारा प्रचार करता दिखता है। क्योंकि देश की कुल आबादी का 50% से अधिक लोग हिन्दी पट्टीधारी जो हैं, जो हिन्दी भाषा की लोकप्रियता को दर्शाती है। कोरोना काल में सोशल मीडिया से जनता की भाषा में अर्थात् हिन्दी भाषा में उपचार एवं सावधानी को प्रचारित–प्रसारित कर जन चेतना का कार्य सम्पादित किया गया। भले ही कुछ ढपोरशंखी भी उसी काल में पैदा हुए उनका माध्यम भी हिन्दी भाषा ही था। सच झूठ में से उचित–अनुचित का चयन भी जनता स्वयं करती दिखती है।

उपसंहार :

अन्तर्जालीय यानी इण्टरनेट से जुड़े इस भ्रम को भी हिन्दी तोड़ चुकी है जो इस तकनीक पर अंग्रेजी मात्र के वर्चस्व को लेकर पश्चिमी देशों एवं अमेरिका के चन्द लोगों ने पाल रखा था । इधर हिन्दी ने अपने तेवर–कलेवर बदले हैं। वह बाजार की भाषा भी बन चुकी है। विज्ञापन एवं प्रौद्योगिकी के प्रसार की भाषा भी बन चुकी है। समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की क्षमता युक्त हिन्दी भाषा अपनी सहज सम्प्रेषणीयता की गुणवत्ता के कारण हिन्दी व्यवहार की भाषा का स्थान पा चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्राप्त अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, चीनी, स्पेनिश व अरबी से हिन्दी कहीं कमतर नहीं है। हिन्दी की प्रासंगिकता को विश्व की सबसे बड़ी पंचायत में इस तर्क के साथ प्रस्तुत किया जाता है कि विश्व के बाईस देशों में लगभग सौ करोड़ लोगों की यह प्रमुख भाषा है। यू0 एन0 ओ0 आदि यदि लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास रखते हो तो उसे हिन्दी को विश्व भाषा घोषित कर देना चाहिए। सोशल मीडिया के इस घनघोर दौर में हिन्दी भाषा–भाषियों की भाषा विषयक गुण ग्राह्मता, अनुकरणीयता एवं प्रयोज्यता इसे गलोबल भाषा बनाने के लिए पर्याप्त है। भले ही कुछ छुट–पुट रुग्ण मानसिकता वाले क्षेत्रीय भाषावाद के टुटपुंजीये समय–समय पर ध्यान खींचने मात्र को असफल वितंडावाद का झंडा खड़ा करते रहते है।

औद्योगिक, राजनितिक, क्रीड़ा, सिनेमा, विज्ञापन, सेवा, आदि क्षेत्र के विशेषज्ञों की समझ में अब प्रचार-प्रसार के वेग को हिन्दी भाषा के रोका जाना सम्भव नहीं है। जो लोग भारतीय मूल के नहीं है वे भी आज हिन्दी की लोकप्रियता के कारण उसके पक्षधर बन गये हैं। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया के डिजिटिलीकरण की तकनीक में हिन्दी का भविष्य उज्जवल एवं स्वर्णिम है। सोशल मीडिया द्वारा हिन्दी भाषा की उपादेयता को इससे समझा जा सकता है कि सरकारी–गैर सरकारी विभिन्न परियोजनाओं को आम जन–मन तक उसकी भाषा में समझने–समझाने का कार्य हिन्दी भाषा बखूबी कर रही है जिससे योजनाएं तो लोक–प्रिय होती ही हैं किन्तु भाषा की स्वीकृति भी कम नहीं होती। जैसे – जन–धन योजनाा, डिजिटल योजना,

उज्जवला योजना, स्किल इण्डिया योजना, भारत नेट परियोजना, स्टॉटअप योजना, जल शक्ति मिशन, आयुष्मान भारत, प्रधानमंत्री जन औषधि योजना, सतत विकास एवं समावेशी विकास, सागरमाला योजना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति आदि के माध्यम में सोशल मीडिया के सफल प्रयोग के साथ ही हिन्दी भाषा की सहज सम्प्रेषणीयता व सर्वस्वीकार्यता की भूमिका को हल्के में नहीं जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

01. जोशी प्रमोद, विश्लेषण, सर चढकर बोलता सोशल मीडिया का जादू, सम्पा0, राष्ट्रीय सहारा, देहरादून, मंगलवार, 22 अक्टूबर 2013 पृ0 स0 08.।
02. जैन योगेश चन्द्र, नि0 अरिहन्त पब्लि0 इंडिया लिमि0, इन्टरनेट मानव के लिए विज्ञान का वरदान पृ0 स0 229।
03. जुकरबर्ग मार्क, संस्था–फेसबुक, हर किसी को मिले इन्टरनेट की सुविधा, हिन्दुस्तान, देहरादून, सम्पा0 पृ0स0 10., 17 अप्रैल 2015।
04. अग्रवाल अनिल, परी0 म0, नि0, संक, 2016–2017, ग्लोबल होती हिन्दी 7R/5 ताशकंद मार्ग, सिविल लांइस इलाहाबाद, पृ0 स0 179।
05. हिन्दूस्तान, चलते–चलते, देहरादून, 11 सितम्बर 2018, दिन में दो सौ बार स्मार्टफोन खगालती हैं महिलाएं पृ0 स0 14
06. टी0 वी0 पर भारी इन्टरनेट की खुमारी हिन्दुस्तान 11 सितम्बर 2018. पृ0 स0 14।

ई. मेल. drdcpandey3075@gmail.com
दूरभाष संख्या : 9411319412

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 173-177
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत एवं नेपाल के किन्नर समुदाय की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ अनीता कुमारी
वरिष्ठ न्यायिक अनुवादक,
दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली

सेक्सुअलिटी को लेकर एशिया–प्रशांत क्षेत्र के समाज के विभिन्न समूहों में मतभेद की स्थिति बनी रहती है। एशिया और प्रशांत महाद्वीप के बहुत से देशों की संस्कृति में सेक्सुअलिटी पश्चिमी देशों की तुलना में अस्थायी होती है। इन क्षेत्रों में किन्नर समुदाय से संबंधित उन सभी कानून एवं नीतियों की कमी है, जिससे एक नागरिक के तौर पर इनके अधिकारों को संरक्षित एवं संवर्द्धित किया जा सके ताकि इन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल सके और इनका जीवन समान्य हो सके।

नेपाल और भारत एशिया महादेश के दो पड़ोसी देश हैं। दोनों की तुलना करते हैं तो देखते हैं कि दोनों देशों के सांस्कृतिक और समाजिक समानता होते हुए भी किन्नर समुदाय को लेकर दोनों की सोच और व्यवहार में बहुत अन्तर है जिसका प्रभाव किन्नर समुदाय के जीवन और जीवन–यापन दोनों पर पड़ता है।

भारत की तरह नेपाल भी 'हिन्दू' बहुसंख्यक देश है। अतः हिन्दू धर्म से संबंधित मिथकों का यहॉ के समाज पर भी बहुत प्रभाव है। किन्नर समुदाय की उत्पत्ति का संबंध भारत की तरह यहां भी मनुस्मृति, महाभारत, शंकर के अर्धनारीश्वर आदि मिथकों से जोड़ कर देखा जाता है। मनुस्मृति और अन्य वैदिक साहित्य में तृतीय प्रकृत्ति का वर्णन मिलता है। नेपाल के विमर्शकार इस समुदाय के इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को लेकर आम जनमानस में ट्रांसफोबिया वाले मानसिकता को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं। किन्नर समुदाय की उत्पति को लेकर जो धारणा भारत के समाज में है वही नेपाल के समाज में भी है क्योंकि दोनों कि सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं में बहुत समानता रहा है। दोनों देशों की धार्मिक आस्था भी लगभग समान है। अतः किन्नर समुदाय को लेकर दोनों देश ऐतिहासिक स्तर पर समान रहे हैं। भारत चुकि दीर्घकाल तक औपनिवेशिक दासता के अधीन रहा, अतः भारतीय समाज सम्राज्यवादी नीतियों द्वारा समय–समय पर प्रभावित होता रहा। अंग्रेजो द्वारा पारित क्रिमिन्लस ट्राइब्स एक्ट 1871 ने भारतीय समाज में किन्नरों की स्थिति को काफी खराब कर दिया।

नेपाल में हालांकि प्रत्यक्ष तौर पर कभी भी औपनिवेशिक शासन नहीं रहा, लेकिन आस.–पास के औपनिवेशिक नीतियों से नेपाल भी अछूता नहीं रहा। नेपाली समाज भी भारत की तरह समावेशी और लौकतांत्रिक रहा है लेकिन किन्नर समुदाय के मामले में नेपाली समाज की सोच भी भारतीय समाज से बहुत अलग नहीं थी और नेपाल में भी लंबे समय तक यह समुदाय वंचना और उपेक्षा का शिकार रहा है लेकिन नेपाली समाज ने बाद के दिनों में अपनी इस आरोपित और प्रतिगामी सोच को बदला है और इस दकियानूसी सोच से बाहर आने में नेपाली सरकार ने भी अपने देश के लोगो की काफी मदद की है तथा इस देश ने इस समुदाय के कल्याण के लिए कई नीतिगत प्रयास किये है। नेपाल में इस समुदाय के प्रति न केवल संवैधानिक स्तर पर बल्कि समाजिक स्तर पर भी काफी तेजी से बदलाव आया है। भारत अभी भी इस मामले में नेपाल से काफी पीछे है।

भारत में इस समुदाय की स्थिति में सुधार के लगातार प्रयास किये जा रहे हैं जिसका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

भारत में देखें तो 2011 की जनगणना के अनुसार 4.9 लाख किन्नर समुदाय की जनसंख्या है। आंकड़ों के अनुसार "इस समुदाय में साक्षरता दर 46 प्रतिशत है जबकि सामान्यतः पूरे देश में साक्षरता दर 74 प्रतिशत है। भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय की शिक्षा की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं है। 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम के तहत 'यह समुदाय ' डिसएडवांटेज ग्रूप' के वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है। इस समुदाय की औसत शिक्षा मैट्रीक या बारहवीं तक ही है। समाज का इस समुदाय के प्रति हेय दृष्टि के कारण इनका नमांकन दर बहुत कम है।

भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय अपनी पहचान और मानवाधिकार के लिए 1990 से संघर्षशील हो गया था। इनका यह संघर्ष 1993 से अधिक मुखर हुआ है। वास्तविक धरातल पर उनका संघर्ष दिखाई देता है 1993 में जब पहली बार इस समुदाय के लोगों ने पुलिस उत्पीड़न तथा एड्स भेद–भाव और आईपीसी की धारा 377 रद्द करने की मांग की। 377 को खत्म कर अपराधीकरण को समाप्त करने की मांग रखी। भारत में किन्नर समुदाय अपनी पहचान और मानवाधिकार के लिए 1990 से ही संघर्षशील हो गया था। यह संघर्ष वैश्विक स्तर पर इस समुदाय की जागरूकता का परिणाम था, भारत में यह नहीं कहा जा सकता था कि इस समय तक किन्नर समुदाय के लोगों में अपने अधिकार को लेकर जागरूकता आ चुकी थी बल्कि अभी बाहरी प्रभाव के कारण यहाँ के किन्नर इस बात को जानना शुरू किये थें कि वे भी मानव हैं तथा उनके भी मानवाधिकार हैं।

1991 में प्रकाशित "लेस देन गे" रिपोर्ट बहुत लोकप्रिय हुई, इस रिपोर्ट के माध्यम से इस समुदाय ने अपनी बहुत सी मांगों को सरकार के सामने रखा इनमें कुछ इस प्रकार की मांगें थीं– एल.जी.बी.टी.क्यू लोगों के लिए सामान्य नागरिक अधिकारों, समलैंगिक विवाह, एल.जी.बी.टी.क्यू इस समुदाय के लोगों के लिए अभिभावक बनने का अधिकार अर्थात् गोद लेने का अधिकार, आई.पी. सी की धारा 377 की समाप्ति की मांग आदि रखी गई।

' 2001 में नाज फाउंडेशन के द्वारा 377 दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका दायर किया गया, इस पर सुनवाई करते हुए 2005 में दिल्ली उच्च न्यायलय ने धारा 377 को अपराधिक श्रेणी के कानून से बाहर कर दिया। पुनः इसी याचिका पर सुनवाई करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय ने धारा –377 को अपराध की श्रेणी में सम्मिलित कर दिया, इस निर्णय का विरोध देश भर के एल.जी.बी.टी. समुदाय द्वारा किया गया। एक लम्बे संघर्ष के बाद सर्वोच्च न्यायालय 15 अप्रैल, 2014 को अपने ऐतिहासिक फैसले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस समुदाय को 'तृतीय लिंग' के रूप में परिभाषित किया, इस परिभाषा के बाद 'अनुच्छेद –15' स्वतः इस समुदाय के लोगों लिए भी प्रभावी हो गया। भारतीय संविधान के भाग–3 के अनुच्छेद 14–18 में सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्राप्त है और जाति, धर्म, जन्म–स्थान और लिंग के आधार पर किसी भी तरह के भेद–भाव को गैरकानूनी घोषित किया गया है। लेकिन वैधानिक स्तर पर इस समुदाय की पहचान की परिभाषा स्पष्ट ना होने के कारण इन्हें संवैधानिक अधिकारों का लाभ नहीं मिल पा रहा था। अतः 2014 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में ठोस कदम उठाते हुए किन्नर समुदाय को 'तीसरे लिंग' के रूप में कानूनी पहचान दी। अप्रैल 2014 के निर्णय से किन्नर समुदाय को जन्म प्रमाण पत्र, राशन कार्ड, पासपोर्ट और ड्राइविंग लाइसेंस में तीसरे लिंग के तौर पर अपनी पहचान दर्ज करने का कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ। इस कानून से उन्हें एक–दूसरे से विवाह करने और तलाक करने का भी अधिकार मिला। यह समुदाय अब किसी बच्चे को कानूनन गोद ले सकते हैं तथा उत्तराधिकार कानून के अंतर्गत अपना उत्तराधिकारी भी बना सकते हैं। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण (नालसा) का निर्णय लेस्बियन, बाई सेक्सुअल और गे लोगों पर लागू नहीं होगा, क्योंकि उन्हें तीसरे लिंग के समुदाय में शामिल नहीं किया जा सकता अर्थात् किन्नरों के समलैंगिक संबंधों को भी एक तरह से कानूनी तौर पर स्वीकृति मिल गई।

7 सितम्बर 2018 को सर्वोच्च न्यायालय ने एक और ऐतिहासिक फैसला दिया तथा 158 वर्ष पुरानी ब्रिटिश कानून की धारा 377 के अमानवीय भाग को अतार्किक एवं असंवैधानिक घोषित करते हुए रद्द कर दिया, इस तरह किन्नर समुदाय को अपराधिक श्रेणी से बाहर कर दिया गया।

भारतीय संसद द्वारा ' ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 को 5 दिसम्बर 2019 को पारित किया गया। इस अधिनियम के पारित होने के बाद प्रत्येक किन्नर व्यक्ति को अपनी

पहचान के प्रमाण पत्र के तौर पर स्वयं को पुरुष, स्त्री या थर्ड जेंडर के तौर पर पेश करने का अधिकार मिल गया है। इसके लिए उन्हें जिलाधिकारी के पास जाकर अपने लिए प्रमाणपत्र बनाना अनिवार्य है। यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्ति ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जिसका लिंग जन्म के समय उन्हें दिए गए लिंग के साथ मैच (अलाइन) नहीं होता है।

अधिनियम आगे कुछ आधार तय करता है और इस समुदाय के खिलाफ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है जिसमें कार्यक्षेत्र, शैक्षिक, स्वास्थ्य और अन्य संस्थानों द्वारा अनुचित व्यवहार शामिल है। इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू, धारा 4(2) है इसमें एक किन्नर व्यक्ति को "स्व–कथित लिंग पहचान" का अधिकार देता है, अर्थात अपने स्वयं के लिंग निर्धारण के लिए व्यक्तिगत तौर पर समझ को विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। इसके लिए उसे किसी सर्जरी आदि से गुजरने की जरूरत नहीं बल्कि उसकी समझ अनुसार ही उसके लिंग का निर्धारण किया जाएगा। धारा 5, 6 और 7 में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किन्नर व्यक्ति को पहचान प्रमाण पत्र प्रदान करना आवश्यक है, जो उन्हें एक किन्नर व्यक्ति के रुप में उनकी पहचान को मान्यता देगा। यदि कोई ट्रांसजेंडर व्यक्ति पुरुष या महिला के रूप में लिंग बदलने के लिए सर्जरी करवाता है तो वे एक संशोधित प्रमाण पत्र (रिवाइज्ड सर्टिफिकेट) भी प्रदान कराया जाएगा। एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, यौन और आर्थिक शोषण (इकनॉमिक एब्यूज) सहित किसी भी तरह की हानि या चोट देने पर इस अधिनियम के तहत 6 महीने से लेकर 2 साल तक की कैद और जुर्माने की सजा हो सकती है।

वैश्विक स्तर पर इस समुदाय की जागरूकता ने इनके लिए मानवाधिकारों को बहाल किया, जिसका प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा और आजादी के बाद निरंतर इस समुदाय की स्थिति में सुधार के प्रयास हो रहें हैं, लेकिन भारत में सुधार व्यवहारिकता की तुलना में सैंद्धांतिक ज्यादा है। वैधानिक स्तर पर अधिकार और सुविधायें दिये जा रहे हैं लेकिन ज़मीनी स्तर पर ये सुविधायें इस समुदाय तक पहुंच नहीं पा रहे हैं। शिक्षा के अभाव में अधिकार महज एक कागज़ी जुमला है। इस समुदाय के साथ समाजिक न्याय तभी संभव होगा जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस समुदाय के प्रति संवेदनशील हो, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में इस समुदाय के प्रति संवेदना का विकास किया जाए और यह विकास घरों और स्कूलों से ही संभव है।

किन्नर समुदाय के अधिकारों को लेकर यदि कोई देश जागरुक है तो वह है नेपाल। यहॉ संवैधानिक अधिकारों का व्यवहारिक स्तर पर सटीक प्रयोग किया जा रहा है जिससे ना केवल नेपाल में इस समुदाय की स्थिति बदली है बल्कि वैश्विक स्तर पर भी इस देश ने किन्नर समुदाय के प्रति वैचारिक प्रगतिशीलता वाले देश के रुप में अपनी छवि बना ली है। इस कारण ंआज किन्नर समुदाय के अधिकार और विकास के मामले में नेपाल इतना आगे है कि विदेशी यात्रियों द्वारा इस देश को श इमंबवद वि स्ळठज्फ़ तपहीजे पद ेपंश[1] का दर्जा दिया जाता है।

नेपाल में किन्नर शब्द के लिए प्रसिद्य अम्ब्रैला टर्म स्ळठज्फ का प्रयोग ना कर च्ङैळप्ैष्ह ;च्मवचसम वि डंतहपदंसप्रमक `मगनंस वतपमदजंजपवदए ळमदकमतएपकमदजपजल ंदक `मग बींतंबजमतपेजपबद्ध इस टर्म का प्रयोग किया जाता है। यह टर्म ज्यादा व्यापक है। नेपाल में च्ङैळप्ैष्ए 2001 से ही सक्रिय हो गया था। इस आन्दोलन ने अपने पहले लहर में स्वयं को समलिंगी/तीसरो लिंगी आन्दोलन के रूप में पहचान दर्ज कराई जिसका प्रभाव 2007 और 2016 के मामलों में परिलक्षित हुआ जो नेपाली समाज में मिल का पत्थर साबित हुआ।

इस आंदोलन की दूसरी लहर 2017–2018 में शुरू हुई। यह दूसरी लहर उन आवाजों के असंतोष से उभरी जो आंदोलन की पहली लहर से दबी और बहिष्कृत महसूस कर रही थीं। इस आन्दोलन ने समलैंगिक के अधिकारों के साथ–साथ उनसे जूड़ी भाषा एवं शब्दावली में समलैंगिक होने के अर्थ को खोजा और इस अर्थ के पहचान को किस प्रकार आकार दिया जाए; ऐसे मुददों पर भी व्यापक चर्चाओं को जन्म दिया।

दूसरी लहर ने नेपाली और नेपाल भाषा (नेवा) में कई तरह के नवशब्दों का निर्माण भी किया है तथा इसने देश के भीतर समलैंगिक मुद्दों पर अधिक समावेशी, व्यापक चर्चा और विमर्श को संभव बनाया है। इस दूसरी लहर ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए नेपाली शब्द पैरालिंगिक भी शुरू किया है। पहले,

[1] Lgbt Right in Nepal every thing you should know before you visit, category , LGBT right, Nepal, Queer in the world, Cecilia Miller.

ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए कोई नेपाली शब्द नहीं था, उन्हें तीसरे लिंग के व्यक्ति के रूप में ही संदर्भित किया जाता था, भले ही वे खुद को तीसरे लिंग के रूप में अपने पहचान को न मानते हों। पैरालिंगिक शब्द उन ट्रांसजेंडर पुरुषों और महिलाओं के लिए है जो तीसरे लिंग की पहचान से जुड़े नहीं हैं।

नेपाल एलजीबीटी सर्वेक्षण 2013 में बताया गया है कि देश में 4.196 प्रतिशत एलजीबीटी समुदाय के सदस्य हैं जिसमें लेसबियन–0.31 प्रतिशत, गे–1.35 प्रतिशत, बायोसेक्सुअल–0.1 प्रतिशत, ट्रांसजेंडर–2. 17 प्रतिशत, इंटरसेक्स 0.05 प्रतिशत। 2016 में 900,000 एलजबीटी के सदस्यों की संख्या अनुमानित है। हाल के वर्षों में, नेपाल ने स्ळठज्फ (लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर और क्वीर) समुदाय के अधिकारों को मान्यता देने और उन्हें बढ़ावा देने में उल्लेखनीय प्रगति की है। ऐतिहासिक रूप से, नेपाली समाज रूढ़िवादी सांस्कृतिक मानदंडों और पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं से गहराई से प्रभावित रहा है, जिसके कारण अक्सर स्ळठज्फ व्यक्तियों के साथ व्यापक भेदभाव, अन्याय और सामाजिक बहिष्कार होता रहा है। हालाँकि, लोकतांत्रिक परिवर्तन और प्रगतिशील कानूनी ढाँचों को अपनाने से स्ळठज्फ अधिकार व्यापक और सुलभ हुये हैं।

नेपाल दक्षिण एशिया के उन पहले देशों में से एक बन गया है, जिन्होंने लैंगिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों को संवैधानिक रूप से मान्यता दी है। 2015 का नेपाली संविधान समानता, गैर–भेदभाव और पहचान के अधिकार की गारंटी देता है, जो स्ळठज्फ समावेशन के लिए एक कानूनी आधार प्रदान करता है। इसके अलावा, 2007 में सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले ने सरकार को ऐसे कानून बनाने का निर्देश दिया, जो स्ळठज्फ व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करें और कानूनी रूप से एक तृतीय लिंग श्रेणी को मान्यता दे।

अनुच्छेद 18 महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह रोजगार, शिक्षा, सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच और सामाजिक भागीदारी सहित जीवन के सभी पहलुओं में तृतीय लिंगी व्यक्तियों के विरुद्ध भेदभाव को कानूनी रूप से प्रतिबंधित करता है। इसी तरह अनुच्छेद 42 लैंगिक और यौन अल्पसंख्यकों सहित हाशिए पर पड़े अन्य अल्पसंख्यक समूहों के लिए सामाजिक न्याय का अधिकार सुनिश्चित करता है। तीसरे लिंग के अधिकारों के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रावधानों में से एक अनुच्छेद 12 है, जो स्व–निर्धारित लिंग के आधार पर नागरिकता के अधिकार की गारंटी देता है। इसका अर्थ है–नागरिकों को नागरिकता प्रमाण पत्र, पासपोर्ट और मतदाता पहचान पत्र सहित आधिकारिक दस्तावेजों पर अपनी लिंग पहचान चुनने की स्वतंत्रता है। यह अनुच्छेद स्व–पहचान के अधिकार को एक मौलिक मानव अधिकार के रूप में पुष्ट करता है, जिससे तीसरे लिंग के व्यक्तियों को नौकरशाही बाधाओं के बिना कानूनी मान्यता और पहचान मिलती है। साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करता है कि तीसरे लिंग के लोग सरकारी सेवाओं, यात्रा अधिकारों, शिक्षा और रोजगार तक बिना बाधा पहुँच बना सकें, जो पहले आधिकारिक मान्यता के अभाव में सीमित थें।

वैधानिक स्तर पर ही नहीं बल्कि समाजिक स्तर पर भी यहॉ का किन्नर समुदाय काफी मुखर है। 2019 से नेपाल के सात प्रांतों में युवा किन्नर एकत्रित हुऐं और 6 माह तक सोशल मीडिया पर चर्चा के बाद 30 मार्च 2020 को राष्ट्रीय स्तर पर 'मांग पत्र' तैयार किया गया जिसमें कई महत्वपूर्ण मांगे रखी गईं जैसे कि अधिकारिक दस्तावेजों पर ट्रांस पुरुष और ट्रांस स्त्री का 'एम' तथा 'एफ' से सूचित करने का अधिकार, ट्रांस व्यक्ति को नाम और उसके लैंगिक पहचान को सूचित करनेवाले निशान को परिवर्तित करने का अधिकार एवं निजता के साथ–साथ डेटा की सुरक्षा सभी व्यक्तियों के लिए आधारभूत अधिकार होना चाहिए इस तरह की तमाम मांगे रखी गईं। इस 'मांग पत्र' को अंतर्राष्ट्रीय 'क्वैर फोबिया' दिवस अर्थात 17 मई 2020 को प्रकाशित किया गया। हालांकि, अभी भी नेपाल की संसद में ये मांगे विचारणीय है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि किन्नर समुदाय के अधिकार, उनके विकास एवं उनकी उन्नति को लेकर नेपाल की सरकार ज्यादा प्रगतिशील दिखाई देती है। सुनील बाबू पंत के प्रतिनिधित्व में आरंभ हुआ यह आन्दोलन नेपाल के कोने–कोने तक अपनी पहुंच बनाया और सबका ध्यान इस समुदाय पर हो रहे अत्याचार और शोषण की तरफ आकर्षित कराया। अपने–आप में यह आन्दोलन अन्य पड़ोसी देशों की तुलना में ज्यादा समावेशी और सफल रहा है।

भारत में सुधार की जो मांगे आ रही हैं, वे मुख्यतः बाहरी प्रभाव में ज्यादा हैं, यहां अभी भी किन्नर समुदाय में ऐसे प्रतिनिधित्व का आभाव है जिससे किन्नर समुदाय के अधिकार और विकास को व्यापकता मिले और यह आन्दोलन महज शहरी आन्दोलन की संकिर्ण सीमा से परे अख़िल भारतीय आन्दोलन बन सके।

सन्दर्भ ग्रंथ

- पाठक, डॉ. विनय कुमार, किन्नर-विमर्श दशा और दिशा
- ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) बिल, 2016 , मंत्रालय : सामजिक न्याय और अधिकारिता
- सुहासिनी सिंह, क्रिम्निलाइजेशन ऑफ़ ट्रांसजेंडर पीपल इन इंडियाः क्रिम्निल ट्राइब्स एक्ट
- Blue Diamond Society(2014).BDS Bulletin. Kathmandu:BDS. Blue Diamond society (2009.Basic information on sexual and Gender Minorities Kathmandu.BDS
- Cecilia Miller, LGBT Rights in Nepal: Everything you know before you should visit, https://queerintheworld.com/lgbt-rights-in-nepal/Queer world
- LGBTQ and Third Gender Rights in Nepal: Legal Protection, Blog, LGBTQ and third Gender Right in Nepal, ALPINE Law https://lawalpine.com/blog/third-gender-rights-lgbtq-protection-nepal

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 178-181
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल की दृष्टि में भारतीय चित्रकला

प्रियंका कुमारी गर्ग,
सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

कला के क्षेत्र में डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल निर्विवाद रूप से इस युग के प्रतिनिधि थे। मथुरा एवं लखनऊ पुरातत्व संग्रहालय के संग्रहालयाध्यक्ष एवं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या संस्थान में प्रोफेसर के रूप में उनके जीवन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय कला को प्रकाश में लाना रहा। उनके अनुसार "कला श्री व सौंदर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में सौंदर्य व श्री का निवास रहता है। जिस सृष्टि में श्री नहीं, वह रसहीन होती है। जहां रस नहीं, वहां प्राण भी नहीं रहता। जिस तरह रस, प्राण और श्री तीनों एकत्र रहते हैं, वहीं कला रहती है।"[1] जीवन के अनंत रस के अनुभव हेतु अनेक स्रोतों में से कला और साहित्य रसानुभव का श्रेष्ठ द्वार है। कला के संबंध में उनकी विचारधारा भारतीय अध्यात्म से प्रभावित है। उनके अनुसार "कला का मूर्त रूप तो एक प्रतीक या संकेत मात्र है। वह हमें उस अव्यक्त रूप तक ले जाता है जो कला की परिधि में विजड़ित नहीं होता, जो अमृत है, रसवान है।"[2] वे कला में प्रतीकों के माध्यम से दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पक्ष की व्याख्या के पक्षपाती हैं। विश्व में चारों ओर अध्यात्म सौंदर्य, नीति सौंदर्य एवं भौतिक सौंदर्य की सत्ता है। मनुष्य का मन जब भी सौंदर्य को देखा है तो आनंद से द्रवित हो जाता है। "जिस प्रकार अध्यात्म और दर्शन, धर्म और चरित्र की विशिष्ट उपासना के द्वारा अनंत सर्वव्यापक रस-तत्त्व तक पहुँचने की सतत चेष्टा भारतीय संस्कृति में पाई जाती है, उसी प्रकार सौंदर्य की आराधना के द्वारा रस को आत्मसात् करने का प्रयत्न भारतीय जीवन-पद्धति की विशेषता रही है।"[3]

भारतीय संस्कृति में प्रारंभ से ललित कलाओं का वर्चस्व रहा है। चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत एवं साहित्य भारतीय जनमानस में उसी तरह व्याप्त हैं, जिस तरह धमनियों में रक्त। अगर कोई भारतीय संस्कृति को समझना चाहता है तो उसे भारतीय ललित कला का परिचय भी होना चाहिए। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में मिले आभूषण, मनके, मूर्तियां एवं मुद्राएं तत्कालीन उन्नत कला के प्रतीक हैं। ललित कलाओं के मध्य चित्रकला अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अपनी पुस्तक 'भारतीय कला' में डॉक्टर अग्रवाल जातक कथाओं में प्राचीन चित्रकला को इंगित करते हैं। "महाउम्मग्ग प्रासाद के मुख्य गर्भ में, जो बड़ा आस्थान-मण्डप ज्ञात होता है, चतुर चित्रकारों ने बहुत से भित्तिचित्त लिखे थे (कुसल चित्तकारा नानप्पकार चित्तकम्म करिसु)।"[4] उन्होंने आस्थान-मण्डप के दस प्रकार के चित्रों की सूची भी प्रदान की है। "आरम्भकाल में ही भारतीय चित्रकला का यह बड़ा सटीक वर्णन प्राप्त है, जो इस प्रकार है--सक्कविलास-सिनेरुपरिषण्ड-सागर-महासागर-चतुमहादीप-हिमवन्त-अनोतत्त-मनोसिलातल-चन्दसूरिय-चातु-महाराजिकादि-छकामसग्गादि विभत्तयो, महाउम्मग्ग जातक, ५।४३२।"[5] आस्थान

मंडप में कुशल चित्रकारों ने ये दस प्रकार के भित्ति चित्र बनाए। चित्र बनाने से पूर्व दीवारों पर उल्लोकमृत्तिका या नवनीतमृत्तिका का महीन लेप देकर चित्र बनाने के लिए भूमिबंधन किया गया।

गुप्त काल को भारतीय कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इसी युग में चित्रकला अपने उच्चतम शिखर तक पहुंची, जिसका सबसे जीवंत प्रमाण अजंता की गुफाओं में बने चित्र हैं। अजंता की गुफाओं के चित्रों को भारत की राष्ट्रीय चित्रशाला कहना अनुचित न होगा। "अजंता की कला को बाणभट्ट ने त्रिलोक का संपुंजन कहा है, अर्थात् तीनों लोकों में जितने चर-अचर प्राणी हैं, उन सबके लिए उस कला में द्वार खुला है।"[6] अजंता की कला में छोटे से श्वेत हंस से लेकर महामहिम गजेंद्र तक, अंतपुर के परिचायकों से लेकर यक्ष, सिद्ध, गंधर्व आदि सभी को स्थान प्राप्त हुआ है। डॉ अग्रवाल के अनुसार अजंता के उदार नेपथ्यधारी रमणीय आकृति सम्राट और साम्राज्ञी केवल अपने रूप सौंदर्य के कारण आकर्षक नहीं बने, जितना धर्ममय जीवन की योजना के कारण जिसके केंद्र सर्वातिशायी बुद्ध थे। "जिस रससमुद्र का प्रतीक अजंता की चित्रशाला है, जिसके विगलित प्रवाह ने न केवल भारतवर्ष बल्कि एशिया भूखंड के दूरतम प्रदेशों को भी अपने सौम्य प्रभाव से आप्लावित कर दिया था, उसकी रसोर्मियों का आवाहन रूप-सौंदर्य के एक-एक अंकन और चित्रण पर आश्रित नहीं है। उसका श्रेय तो बुद्धरूपी अमित सौंदर्यमय चंद्रमंडल को है, जिसके द्वारा भावों का वह विशाल मंदिर प्रकाशित है, जिसको अजंता में लिखा गया"[7] अजंता के चित्र केवल अपनी सौंदर्य के लिए विख्यात नहीं है। उन्होंने चित्रकला की जिस नवीन शैली को जन्म दिया वह भारत एवं भारत से बाहर चित्रकला का आदर्श बनी रही। ग्वालियर की बाघ गुफा, पुदुकोटा रियासत की सिद्धनिवास गुफा एवं सिंहल की सिंहगिरि गुफा के चित्र अजंता की शैली के हैं। अजंता की गुफाओं से विकसित चित्रकला भारत में लगभग सात-आठ सौ वर्षों तक इसी रूप में विकसित होती रही। डॉ अग्रवाल के अनुसार 11वीं शताब्दी के तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर के चित्रों में अजंता की परंपरा पाई जाती है। चीन और जापान के चित्रों में भी अजंता की छाप मिलती है। जापान के हारीयुजो और नारा मंदिरों के भित्ति चित्र अजंता शैली से प्रेरित हैं।

डॉ अग्रवाल के अनुसार 11वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक पश्चिमी भारत में चित्रकला एक नए रूप में विकसित हुई। गुजराती अथवा पश्चिमी भारत की शैली में चित्र हस्तलिखित ताड़ पत्रों पर एवं 14वीं शताब्दी के मध्य भाग से कागज की पोथियों में मिलने लगते हैं। "इनका आकार छोटा, रेखाएँ नुकीली, शबीह डेढ़-चश्मी, अर्थात् जिसमें एक आँख का अपांग भाग बाहर की ओर निकला हुआ रहता है और रंग चटकीले पाए जाते हैं। चित्रों में अधिकतर श्वेतांबर जैन संप्रदाय के हैं।"[8] जिस प्रकार बोलचाल की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव पड़ा, वैसे ही चित्रकला में भी देहाती चित्रों की संख्या बढ़ने लगी। 16वीं शताब्दी के अंत तक उत्तर भारत में एक नई चित्रकला शैली ने जन्म लिया। इसमें भारतीय और विदेश से आई हुई पुरानी परंपराएं मिलकर एकमेक हुई। अकबर के शासनकाल में विकसित हुई मुगल चित्रकला शैली ने लगभग तीन सौ वर्षों में जो विकास प्राप्त किया, उसने समस्त भारत को प्रभावित किया। डॉ अग्रवाल अपने चित्रकला संबंधी अध्ययन में मुगल, राजस्थानी एवं हिमाचल चित्रकला शैली पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हैं।

डॉ अग्रवाल के अनुसार अकबर से शाहजहां तक लगभग 100 वर्ष का समय (1556 ई से 1658 ई तक) मुगल काल के उदय और उत्कर्ष का काल है। मुगल काल में कला के सभी क्षेत्रों -स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला, सिक्के और वस्त्रों की नई प्राण प्रतिष्ठा हुई। बाबर और हुमायूं के समय की मुगल कला पर स्पष्ट विदेशी छाप थी, परंतु अकबर के समय से मुगल काल ने भारतीय कला का रूप धारण कर लिया। "रेखा और रंगों की निपुणता, शबीह लगाने की सच्चाई, व्यक्तिगत चरित्र की चित्रात्मक अभिव्यक्ति, ये ऐसे गुण हैं, जिनके कारण मुगल चित्र कला-प्रेमियों के विशेष आदर के पात्र बन गए।"[9] मुगल चित्रकला में राग रागिनी के विषयों को स्थान मिला। हुमायूं के साथ एक ईरानी चित्रकार अब्दुस्समद भारत आया था, जिसने बालक अकबर को चित्रकारी की शिक्षा दी थी। उसकी चित्रकला से प्रसन्न होकर अकबर ने उसे शीरीं कलम की उपाधि दी थी। अकबर के हृदय में चित्रकला के

प्रति एक विशेष पूजा बुद्धि थी। कला और साहित्य के उद्धार के स्वप्न को सम्राट अकबर ने फतेहपुर सीकरी में पूर्ण किया, जहां प्रासाद और प्रांगण में कलावंत उस्तादों ने कुछ ईरानी शैली और कुछ ठेठ भारतीय शैली के भित्तिचित्र बनाए। चित्रकला के क्षेत्र में अकबर का सर्वाधिक योगदान सीकरी के चित्र कार्यालय (कारखाने) की स्थापना थी। इसके लिए अकबर ने गुजरात, तुर्क, कश्मीर, मध्य एशिया, ईरान, पंजाब से लगभग 100 उस्ताद चित्रों को बुलावा भेजा। अब्दुस्समद और मीर सैयद अली दो ईरानी उस्तादों को छोड़कर शेष सभी चित्रकार हिंदू थे। उन चित्रकारों के मध्य भीम गुजराती और सूर गुजराती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुजराती चित्रकारों का यह संबंध मुगल चित्रकला में राजस्थानी शैली के प्रवेश का नवीन मार्ग बना। हम्ज़ानामा और रज़्मनामा के चित्रों में राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक मूल्यवान कड़ी सिद्ध हुआ। अकबर के चित्र निर्माण विभाग का सबसे सुंदर फल हम्ज़ानामा है, जिसमें अमीर हम्ज़ा के किस्सों को बड़े कपड़ों पर तैयार किया गया है। महाभारत का फारसी अनुवाद रज़्मनामा, जिसे स्वयं अकबर ने सचित्र जिलों में तैयार करवाया। 199 सुंदर चित्रों से अलंकृत यह ग्रंथ जयपुर महाराज के पोथीखाने में सुरक्षित है। जहांगीर के समय में मुगल चित्रकला का तप्त हुआ सूर्य अपने मध्यान्ह पर पहुंचा। उसके काल में बिशनदास, फरूखबेग कलमकी, अबुल हसन, मंसूर, मनोहर, गोवर्धन और नादिर जमां जैसे उस्ताद चित्रकारों ने मुगल चित्रकला को शिखर तक पहुंचाया। शाहजहां के काल में भावों की अभिव्यक्ति में कमी आना शुरू हुआ और औरंगजेब के काल तक मुगल चित्रकला अपने अवसान की ओर अग्रसर हुई।

मुगल चित्रकला का केंद्र बिंदु सम्राटों का निजी जीवन था, वहीं राजस्थानी चित्रकला लोक संस्कृति के चित्रण के लिए विख्यात हुई। प्रेम, शृंगार और भक्ति के भावों के कारण राष्ट्रीय या जातीय जीवन की दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला का स्थान ऊंचा माना जाता है। "राजस्थानी चित्र मुख्यतः रसात्मक हैं। अतएव इन चित्रों की भाषा मानवीय हृदय के अति सन्निकट है। श्री कुमारस्वामी के शब्दों में राजस्थानी चित्रकला विश्व की महान् चित्रशैलियों में स्थान पाने योग्य है।"[10] मनोभावों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति राजस्थानी चित्र शैली का प्राण है राजस्थानी चित्रकला में छोटे चित्रों की परंपरा का विकसित रूप प्राप्त होता है। जनता के काव्य संगीत और नाट्य से राजस्थानी चित्रकला का घनिष्ठ संबंध था। राजस्थानी चित्रकला स्त्रियों की सुंदरता के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसमें भारतीय नारी के आदर्श सौंदर्य की छटा बिखरी हुई है। अनेक प्रकार के चटकीले रंग राजस्थानी चित्रकला की विशेषता है। लाल, पीले, हरे, बैंगनी, किरमिजी, काले, सफेद और सुनहरे रंगों की खुलाई चित्रों को मनोहर बना देती है। डॉ अग्रवाल के अनुसार राधा और कृष्ण की लीला, रामायण महाभारत की कथाएं, ढोला मारू और माधवानल-काम-कंदला सदृश लोक कथाएं, ऋतुओं के चित्र और बारहमासा, राजाओं की प्रतिकृतियां या शबीह राजस्थानी चित्रकला के विस्तृत विषय हैं, लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता रागमालाओं का चित्रण है जिसके लिए भारतीय चित्रकला में राजस्थानी शैली का विशिष्ट स्थान है।

श्री आनंद कुमारस्वामी ने 'राजस्थानी पेंटिंग्स' में राजस्थानी चित्रकला के अंतर्गत हिमाचल चित्रशैली को स्थान प्रदान करते हुए इसके सौंदर्य और रस का बखान किया। हिमाचल चित्रकला शैली को कांगड़ा चित्रकला अथवा पहाड़ी चित्रकला भी कहा जाता है। जम्मू से टिहरी और पठानकोट से कुल्लू तक लगभग 150 मील लंबे और 100 मील चौड़े पहाड़ी क्षेत्र कांगड़ा चित्र शैली के अंतर्गत आते हैं। महाभारत में इस क्षेत्र को रावी, व्यास और सतलज की नदी घाटियों में बना होने के कारण त्रिगर्त कहा गया है। हिमाचली चित्रकला शैली का विकास 17वीं और विशेष रूप से 18वीं शताब्दी में हुआ। 19वीं सदी के मध्य में कांगड़ा चित्र शैली अंतिम बार चमककर लुप्त हो गई। कांगड़ा चित्रकला शैली का केंद्र बिंदु नारी का सौंदर्य है, जिसके चारों ओर इन चित्रों का अंकन हुआ है। "नारी का जो अष्टयाम और बारहमासी जीवन है, उसी के ताने-बाने से पहाड़ी चित्रशैली का सुरम्य पट बुना हुआ है। प्रेम और शृंगार, संयोग और वियोग, उसे किमखाबी वस्त्र को सजावट प्रदान करते हैं।"[11] सूर से लेकर मतिराम, देव और

बिहारी की रचनाओं में व्यक्त स्त्री-सौंदर्य के दर्शन हमें कांगड़ा के चित्रों में होते हैं। इन चित्रों में भागवत के दशम स्कंध में कृष्ण की बाललीला और यौवनगत विलासलीला के सुंदर चित्र प्राप्त होते हैं। कृष्ण का गोचरण, वंशी की मोहिनी तान, गोवर्धनधारण, दानलीला और कालियादमन जैसी लीलाओं के साथ रामायण महाभारत नल दमयंती और सत्यवान की कथाएं हिमाचली चित्रकला शैली के विषय हैं। इस प्रकार डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय चित्रकला शैली में भारतीयता एवं सौंदर्य की खोज की है।

शोध संदर्भ:-

1. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला का अनुशीलन, कला और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 181
2. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, लेख- विश्वकर्मा, भारतीय साहित्य, अप्रैल-जुलाई, 1960, पृष्ठ संख्या 4
3. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला का सिंहावलोकन, कला और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 199
4. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला (प्रारंभिक युग से तीसरी शती ईस्वी तक), पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, 2020, पृष्ठ संख्या 69
5. वही, पृष्ठ संख्या 69
6. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला का सिंहावलोकन, कला और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 201
7. वही, पृष्ठ संख्या 201
8. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय ललित कला की परंपराएं, माता भूमि, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 76
9. डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, मुगल चित्रकला, माता भूमि, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 92
10. वही, राजस्थानी चित्र शैली, पृष्ठ संख्या 97
11. वही, हिमाचल चित्रकला, पृष्ठ संख्या 102

Email-gargpriyankak1985@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 182-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक भारतीय समाज में महिलाऐं

डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव
प्रोफेसर,
शास.महाविद्यालय नगरी,जिला–धमतरी (छ0ग0)

''जहाँ जीवन है वही समाज है ''

इससे स्पष्ट होता है कि समाज न केवल मानव – प्राणियों में ही पाया जाता है। बल्कि अन्य जीवित– प्राणियों में ही पाया जाता है। समाज सामाजिक सबंधो का ताना बाना है, जो सदैव परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य एवं सामाजिक प्राणी है जो बिना समाज के नही रह सकता। समाज और सामाजिक जीवन ही उसका स्वभाव है। इस दृष्टि से मानव समाज उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं मानव। समाज के बदलते स्वरूप, रूचियों परिस्थितियों के सम्मुख साहित्य नर और नारी के मध्य प्रतिस्पर्धी के रूप में आता है। तेजी से बदलते समय के सापेक्ष सामाजिक स्थितियां, मूल्य व मान्यताएँ सभी बदलती है। ये कारक कभी बाहय होते है और कभी आन्तरिक ऊर्जा भी बदलाव की दिशा में योग करती है।

समाज की प्रकृति को किसी एक परिभाषा के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी प्रकृति अत्यन्त जटिल है। समाज सामाजिक सम्बधों का जाल है, जिन्हें आंखो द्वारा देखा नहीं जा सकता और न ही हाथों के द्वारा स्पर्श किया जा सकता है। समाज का अस्तित्व वही संभव है, जहां सामाजिक प्राणी एक दूसरे के साथ इस प्रकार से व्यवहार करते है, जो पारस्परिक ज्ञान से निर्धारित होते है। सामाजिक सम्बन्धों के लिए एक मनोवैज्ञानिक स्थिति का होना आवश्यक है। मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्रारम्भं परिवार के द्वारा ही हुआ है। संभवत यही मानव समाज का आदि रूप है। स्त्री पुरूष जो समाज का निर्माण करते है, एक पुरूष अन्य पुरूष के साथ मिलकर परिवार नही बना सकता है और न ही स्त्री ही स्त्री के साथ मिलकर पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकती है। परिवार रूपी समाज की रचना हेतु पुरूष और स्त्री दोनों परमावश्यक है। प्रत्येक समाज में नारी को भांति – भांति की पात्रता अभिजीत करनी पड़ती है। चूंकि आज नारी का कार्य क्षेत्र परिवार तक ही सीमित नहीं रह गया है, उसे अपने कार्य स्थल पर भी अनेक रूपो में अपना दायित्व निर्वहन करना पड़ता है।

एक ही नारी को एक ही दिन में कई प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है, कभी मां कभी पत्नी, प्रेमिका,सखि,बहिन,सास,बहू,ननद–भाभी, शिक्षित महिला,अशिक्षित महिला आदि। आजकल की कामकाजी नारी के रूप अत्यधिक विस्तृत हो चूके है। स्पष्ट है कि नारी शक्ति रूप है, जगत जननी है। नारी के सबन्ध यहां तक कहा गया है कि ''उसमें पृथ्वी के समान क्षमा, सूर्य के समान तेज, समुद्र के समान गंभीरता , चन्द्रमा के समान शीतलता एवं पर्वत के समान उच्चता के एक साथ दर्शन होते है। जहां नारी के इतने मर्यादित एवं चरित्र रूप उसे एक उज्जवल छवि प्रदान करते है, वही उसके परित्यक्ता, रखैल एवं वेश्या

वाले रूप उसकी छवि को धूमिल बनाते है। नारी रूपों का वह क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है तथा इन रूपों को विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त करना अत्यधिक कठिन है।

नारी के विभिन्न रूपों में मां का रूप सर्वाधिक गौरवशाली है। पत्नी के रूप में व्यक्तित्व का विकास अवश्यक होता है। किन्तु मातृत्व के बिना उसके जीवन में पूर्णता नहीं आती, यह रूप आकर्षक, गरिमा, साफल्य का बोध कराता है। बच्चों को जन्म देना उसका पोषण करना प्रत्येक स्थिति में उसकी रक्षा करना हर स्थिति में उसका कुशल क्षेम चाहना मातृत्व की पहचान है। पर बच्चों को परिवरिश में अपना सम्पूर्ण न्योछावर कर देती है।

आज की मां शिक्षित है तो अपने पारिवारिक दायित्वों को बहन करने के साथ–साथ वह अपनी बच्चों को स्वयं से अधिक शिक्षित करने का कर्तव्य भी भली प्रकार वहन कर सकती है। इस संदर्भ में लगभग 200 परिवारों का सर्वेक्षण कार्य किया गया। अलग–अलग जाति धर्म, समुदाय के जिसमें से यह जानकारी प्राप्त हुआ है कि लगभग 95 प्रतिशत महिलाएं प्राथमिक, माध्यमिक तक की शिक्षा प्राप्त की है। कुछ महिलाएं तो अनपढ़ है। परन्तु अपने संतति को स्वयं से अधिक शिक्षित करने का कर्तव्य भी भली प्रकार वहन कर रही है।

जिन नारियों को बच्चों को जन्म देने का सौभाग्य भले ही प्राप्त नहीं हुआ हो किन्तु वे भी मतृत्व एवं वात्सल्य से परिपूर्ण हो सकती है, स्वयं के न सही अन्य माताओं के बच्चों का पालन–पोषण भी अपने बच्चे की तरह करने के भाव रखती है। इस प्रकार मां के ह्रदय में छुपी अपनी संतान के प्रति कोमलता, विशालता एवं सहिष्णुता ने नारी को श्रेष्ठ पद पर आसीन कर उसे इस सुन्दर ब्रम्हाण्ड की जननी से सुशोभित कर दिया है।

नारी के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिकाएं पत्नी की है। पति–पत्नी के सहयोग से ही दाम्पत्य जीवन का निर्वाह होता है, परन्तु उसके पारम्परिक पति परायण रूप के साथ–साथ नारी स्वातंत्र की भावना भी समाहित होती है। जिसमें उसका स्वयं का अस्तित्व निहित होता है। यदि पत्नी अनपढ़ है या शिक्षित भी है और पति उसे किन्ही कारणों से मारता या प्रताड़ित करता है। तब भी वह नारी पति परायणता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

भारतीय पत्नी अधिकांशतः तभी पति का विद्रोह करती है, जब वह पति के अवगुणों से अत्यधिक दुःखी हो जाती है, तथा यदि वह शिक्षित होती है तो पति का घर त्यागकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपनी सन्तान का पालन करती है।

नारी और पुरूष का आकर्षण एक शाश्वत एवं नैसर्गिक सत्य है। यह आकर्षण जिस भावना का जन्म देता है, वह प्रेम है। पुरूष के जीवन का सत्य है संघर्ष और नारी–जीवन का सत्य है समर्पण। नारी का अपने प्रिय के प्रति अनन्य प्रेम उसकी श्रद्धा और भक्ति का परिचायक है। बहू नारी जीवन का वह भूमिका है जो बड़ी निरही मानी गई है। यद्यपि वह गृह स्वामिनी के पद की उम्मीदवार होती है और गृह लक्ष्मी के रूप में उसका स्वागत होता है। वह वंशवृद्धि का पर्याय होती है। घर की खुशहाली की चाबी होती है, परिवार के सभी सदस्यों की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति करती है। बहू के रूप में नारी आज्ञाकारी, सह्रय और उदार रूप में प्रतिविम्बित होता है।

भारतीय परिवार में सास का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। पति की मां हो या पत्नी की मां दोनो ही सास श्रद्धा की पात्र होती है, और अनुराग की मूर्ति । लड़के की सास तो अपने दमाद की उन्नति की कामना करती है, लड़की की सास की छवि अवश्य खराब है। यह एक बिडम्बना है। सास की भूमिका अलग–अलग पहली प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस समस्या का समाधान अंसभव सा लगता है। लगभग 95 प्रतिशत सास बहू में दुराव देखने को मिलता है। एक ममतामयी मां होती है किन्तु बहू के आने पर अपने अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप हुआ देखकर कुछ–कुछ रूखी और कभी–कभी कठोर भी हो जाती है, यह कठोरता बुढ़ापा तक चलता है। जिस आशा और विश्वास के साथ माता–पिता अपने पुत्र के लिए बहू ढूढ़कर लाते है। वही बहू जीव का जंजाल बन जाती है। बुढ़ा अवस्था में आदमी जब स्वयं के नित्यकर्म को करने में अक्षम होता है तो भोजन तो दूर एक गिलास पानी नसीब नहीं होता, परन्तु बहू स्वयं के माता–पिता के लिए पूरा प्राण समर्पित कर देती है। कई परिवार के माता–पिता जीवन के अंतिम पड़ाव में

अनाथलय का शरण ले लेते है। यह समस्या विकराल रूप धारण करते जा रहा है। कई बहूयें अपने सास–ससूर पर हाथ उठातें है। उन बूढ़े माता पिता को कही का नहीं छोड़ते है। इस समस्या का समाधान वर्तमान समाज को निकालना होगा।

नारी जीवन का एक कोमल पक्ष बहिन के रूप में प्रकट होता है। बहिन के व्यक्तित्व में मां एवं बहिन के कुछ तत्व समाहित होते है, जैसे बहिन यदि भाई से बड़ी है तो उसका स्नेह मातृत्व में परिवर्तित हो जाता है। यदि वह छोटी है तो भाई से उसी प्रकार की अपेक्षाएं रखती है, जैसे कोई बच्ची अपने पिता से । बहन के रूप नारी में अपनों के प्रति कोमलता मधुरता और त्याग की भावना निहित होती है। परन्तु यह सव विवाह के पूर्व । विवाह बाद भाभी और ननद की कहानी किसी को बतलाने की आवश्यकता नहीं।

यद्यपि विवाह परम्परागत एवं मुख्य उद्‌देश्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नारी के मातृत्व को उसकी पूर्णता और गरिमा से जोड़ा जाता है। नारी का समस्त अभिनन्दन उसके मातृ रूप में संस्थित होने का अर्चन है। नारी के मातृत्व को धरती और बीज जैसे रूपकों से जोड़कर उसकी सार्थकता को मातृत्व तक सीमित किया गया है। बाँझ नारी और बंजर भूमि किसी काम की नहीं होती।

विवाह संस्था के अन्तर्गत मातृत्व का महिमा मंडन होता है और विवाहेतर मातृत्व कलंक और कलुष। मातृत्व का महिमा मंडन का नही विधिवत पिता बनने, मातृत्व से सम्भावित नारी की सता पर नकेल डालने का है। स्त्रियों के मूल्य को लेकर जबरदस्त अज्ञान व्याप्त है। केवल पुरूष वर्ग में नहीं अपितु स्त्रियों में भी। स्त्रियों के क्या क्या कर्तव्य है , उनका क्या योगदान है ?

समानताएं व विभिन्नताएं क्या है ? इन सबका हिसाब लगाया जाना चाहिए ? देश में कितने धर्म जातियां, उनके रीति रिवाज है। किन्तु किसी भी समाज में स्त्री अनुकूल जीवन जी रही है, ऐसा देखने में नही आया। सब जगह स्त्री हताश है, ऐसा लगता है।

स्त्रियों की अभी भी बहुत बड़ी संस्था ऐसी है जो, मुश्किल से पेट पालने की स्थिति में है, गरीब है, निरूपाय सी है, रीति रिवाजों के जालों में उलझी हुई है। इन्हे गौरवपूर्ण जीवन सुलभ हो सके, इसके लिए प्रयत्न करना उच्च एवं मध्यवर्ग की स्त्रियों की जिम्मेदारी है। गरीब तबकों में पुरूषों की अपेक्षा रोजी, मजदुरी कमाने वाली स्त्रियों की संख्या ज्यादा है। इतना ही नहीं गरीब परिवारों में एक मात्र कमाऊ व्यक्ति स्त्री ही होती है। ऐसे गरीब परिवार हमारे देश में 45 से 50 प्रतिशत होगे।
गरीब परिवारों में ही स्त्रियां एवं कन्या अधिक कठिन एवं उपेखित जिन्दगी जीति है।

सामान्यतः परिवार की यह भ्रामक कल्पना है कि पति नौकरी करने जाए और पत्नि घर संभाले, कढ़ाई, विनाई करें और शाम को जब पति नौकरी से लौटकर आए तो गर्म चाय पिलाए। ताजी रोटियां बनाकर खिलाए। घर में शान्ति फैलाएं।
हमारी स्त्रियां घर की रानियां है। घर की देवियां है, वे ही तो पर्दे के पीछे घर चलाती है। उन्हीं के पास तो सारी सत्ता है, ये तो सिर्फ उच्च वर्ग की दिखवा है।

सच देखा जाय तो महिलाएं दासी बनकर रह गई है। जहां पेट भरने के लिए स्त्री, बच्चे , पुरूष सभी परिश्रम कर रहे हों वहां शाम को तीनों घर में बैठकर खाना खाऐगें, विचारो का अदान–प्रदान करेगें ऐसा भ्रामक सत्य है। कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलता है पति घर परिवार छोड़कर कई महिनों के लिए काम की तलाश में गये तो महिलाएं आत्मनिर्भर होकर घर का काम काज संभालती है। इतना ही नहीं अल्पायु में यदि पति की मृत्यु हो जाने पर महिलाएं बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी अपने कंधो पर लेती है।

वैसे तो आज लगता है कि स्त्री–पुरूष में बराबरी स्थापित हो गई है, परन्तु यह छलावा मात्र है। पुरूष प्रधान समाज में औरत का स्थान गुलाम जैसा है, वैवाहिक जीवन में पुरूष ही फैसला करता है और उस पर अमल करती है। स्त्रीयों की अभी भी बहुत बड़ी संस्था ऐसी है जो मुश्किल से पेट पालने की स्थिति में है, निरूपाय सी है, रीति–रिवाजों के जालों मे उलझी हुई है। गरीब परिवारों में एक मात्र कमाऊ व्यक्ति स्त्री ही होती है। ऐसे गरीब परिवार 50 से 60 प्रतिशत होगें। गरीब परिवारों में ही स्त्रियां एवं कन्या अधिक कठिन एवं उपेक्षित जिन्दगी जीती है।

नारी केवल तुम श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो । अवनी अंबर तल में।।

संदर्भ ग्रंथ –

(1) बोरकर डॉ. हेमलता – कार्यशील महिलाओं की सामाजिक भूमिका एवं संघर्ष
(सिंघई पब्लिशर्स, सिंघई पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स रायपुर)

(2) कस्तवार डॉ. रेखा – स्त्री चिंतन की चुनौतियां
(राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली,पटना,इलाहाबाद)

(3) रल्हरी डॉ. सुमन – महिला एवं मानवाधिकार
(रितु पब्लिकेशन्स जयपुर)

(4) कुसुम डॉ. नरेन्द्र शर्मा – धर्म सामाजिक आयाम एवं नारी
(गौतम बुक कम्पनी 260 ⁄ 5 राजापार्क जयपुर 302004)

(5) नटाणी डॉ. शोभा – भारतीय समाज और नारी दशा एवं दिशा
(मार्क पब्लिशर्स आम्रपाली सर्किल वैशाली नगर जयपुर)

(6) शर्मा डॉ. श्रीमती मंजू – नारी के प्रति अत्याचार एवं मानवा अधिकार
(मार्क पब्लिशर्स)

(7) सक्सेना डॉ. रीता – महिला अधिकार एवं कानून
(रितु पब्लिकेशन्स जयपुर)

मो. 9617808055 , 9424237228

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 186-188
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में विवाह और स्त्री की नई पहचान

पिंकी
शोधार्थी हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोधसार

विवाह भारतीय समाज की सबसे पुरानी और सामाजिक संस्था मानी जाती रही है। जहाँ स्त्री का रूप पत्नीत्व, मातृत्व और पालनकर्ता तक सीमित रही है। लेकिन इक्कीसवीं सदी में सामाजिक, वैचारिक मूल्यों में तेजी से बदलाव आया है। यह बदलाव हिंदी उपन्यासों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जहाँ स्त्री अब पारंपरिक परिभाषाओं से बाहर निकलकर स्वतंत्र सोच, आत्म निर्भरता और नई पहचान के साथ उभर रही है।

प्रस्तावना

आज स्त्री की स्वतन्त्र अस्मिता इसीलिए स्त्री लेखन की प्रधान स्वर है। जैसे-जैसे स्त्री अपनी पहचान के प्रति जागृत होती गयी है। वैसे-वैसे ही वह संगठित होती गयी है। और अपने-आप को प्रस्तुत करने की दिशा में कदम बढ़ाती गयी है। अर्चना वर्मा स्त्री की 'स्वतन्त्र' स्वायत पहचान से जुड़े खतरों के प्रति उसे आगाह करते हुए कहती है, स्वतन्त्र स्वायत की इस परिकल्पना में अस्मिता को केवल मैं के रूप में प्रस्तुत करने की आग्रह स्त्री को केवल देह में बदल और देह को पण्य में, यही स्त्री अस्मिता की यही पहचान थी पहले किन्तु भूमण्डलीकरण के बाद आयी बहुलतावादी सोच अब ऐसी सार्वभौम पहचान की दलील पेश कर रही है। जो पूर्व की सारी स्थितियों को खारिज करता है। कामकाजी महिलाओं के श्रम के दृश्यमान होने से समाज में महिलाओं के अवदान की पहचान क्षेत्र, व्यापार के क्षेत्र में पढ़ी-लिखी महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है। स्त्री के नई पहचान इस वातावरण का हिस्सा है।'' भूमण्डलीकरण के दौर में अब विवाह अनिवार्यता नहीं वैकल्पिक है। रिश्तों में समानता, स्वतंत्रता, संवाद की माँग प्रमुख है।

हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचन्द जयशंकर प्रसाद जैसे लेखक जहाँ विवाह को कर्तव्य परायण और सामाजिक मर्यादा से जोड़ते हैं। वहीं मैत्रयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, अनामिका, सुधा अरोड़ा आदि लेखिकाएं विवाह की बारीकियों और उसमें मौजूद स्त्री संघर्ष के रूप को प्रस्तुत करती है।

मृदुला गर्ग 'उसके हिस्से की धूप' इस उपन्यास के केन्द्र में स्त्री पात्र मनीषा है। जो स्व खोज की यात्रा पर आधारित नायिका है। जो अपने जीवन में प्रेम, पहचान और लेखन के माध्यम से एक पहचान को तलाशना चाहती है। मनीषा का पहला पति जितेन है। किन्तु भावनात्मक तौर पर वह मनीषा से दूरी बना लेने पर उसकी जिंदगी में मधुकर प्रेम संबंध और बाद में दूसरा पति के रूप में स्वीकारती है। मनीषा स्वः की तलाश में स्त्री है। जो कहती है-

‘‘मैं औरत हूँ लेकिन सिर्फ शरीर नहीं हूँ... मेरे भीतर भी कुछ है। जो साँस लेता है।’’

यहाँ वह स्पष्ट करती है। स्त्री को केवल शरीर या भूमिका ‘पत्नी न प्रेमिका के तरह मत देखो उसकी भी आत्मा और स्वतंत्र सोच है।

इसी प्रकार ‘चाक’ मैत्रेयी पुष्पा जी का एक यथार्थवादी उपन्यास है। जिसकी मुख्य पात्र विद्या है। तथा वह एक शिक्षिका भी है। और वह विधवा स्त्री है। और समाज की परम्परा और रूढ़ियों से बनी स्त्री नहीं बनना चाहती है। वह अपने आत्म सम्मान और स्वतंत्र सोच के साथ जीवन व्यतीत करना चाहती है। ‘विद्या’ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिए शिक्षा, अधिकार की बात करती है। किन्तु वह एक विधवा होते हुए भी दलित युवक जस्सू से प्रेम करती है। जिससे समाज उसे अपवित्र और चरित्रहीन समझता है। परन्तु विद्या अपने निर्णयों से नहीं डरती है। वह बार-बार सामाजिक बंधनों को तोड़ अपनी स्वयं की पहचान बनाना चाहती है। वह बनी बनाई पद्धति पर जीवन नहीं जीना चाहती है। और वह आधुनिक सोच-विचार रखती है। और कहती है- ‘‘अगर विधवा का जीवन सिर्फ भजन पूजन और आँसू के लिए है। तो जीवन नहीं सजा है।’’

‘औरत’ उपन्यास जो कि अमृता प्रीतम द्वारा लिखा मौन चीख है जिसमें एक स्त्री आत्म संवेदना बोलती है। यह उपन्यास स्त्री की सबसे बड़ी लड़ाई समाज से नहीं, बल्कि उस सोच से है। जो उसे कमतर मानती है। और उसके अधिकारों को रोकती है।

‘‘मैं चुप रही, ताकि सब ठीक रहे... पर मेरे भीतर की आवाज भरती रही’’

यह स्त्री की आंतरिक घुटन और सामाजिक दबाव को दर्शाता है। जहाँ सही होते हुए भी गलत होने पर चुप्पी शांती की आग में जलाती है।

आधुनिक रण और आधुनिक स्त्री खुद में सवाल करती है।

‘‘मैं कौन हूँ

क्या मैं सिर्फ किसी की पत्नी और बहू हूँ या मेरा कोई अस्तित्व है,

औरतें केवल विवाह के लिए नहीं बनाई गई हमारी भी अपनी पहचान है। यह केवल एक स्त्री की कहानी नहीं है। यह हर उस स्त्री की कहानी है। जो चुप और दबाई गई और जो अब जागृत और जागना चाहती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राजनीति से लेकर चाँद तक जाने की ताकत स्त्री रखती है। और वह वर्तमान विवाह के मापदण्ड को त्यागती है। जहाँ विवाह घर, परिवार की जिम्मेदारी तक ही सीमित और स्त्री की पहचान पुरुष से होती थी वह खुद की पहचान बनाई है। 21वीं सदी में भूमण्डलीकरण के दौर में महा महिम राष्ट्रपति एक महिला है। एक प्रमुख पार्टी की अध्यक्ष महिला है। लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार है। और विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री के पद पर भी महिलाओं ने अपनी जड़ें मजबूत की है। इतना सब होने के बाद देश की स्त्रियां उसी सोच का शिकार नहीं रही है। जिस भाषा का उनके साथ बर्ताव किया जाता है। जिन तेवरों में मर्दाना रूतबा और स्त्री का बेबाक समर्पण ही नजर आती है। आज समय और वातावरण में बदलाव आया है। स्त्री स्वयं की पहचान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यावसायिक हर स्तर पर अपनी पहचान बना रही है व हर क्षेत्र में एक नई पहचान की अवधारणा भी बन रही है। नारी अब अबला नहीं आत्म निर्भर है।’’ परिभाषा को बदलने की आवश्यकता है स्त्री स्वयं आत्मनिर्भर है।

छिन्नमस्ता (प्रभा खेतान) में प्रिया के माध्यम से प्रभा खेतान ने एक स्वतन्त्र, स्व अस्तित्व को निर्मित करने वाली नायिका का चरित्र गढ़ा है। जिसने भारतीय पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था को चुनौती देते हुए अपने महत्व का बोध कराया है। प्रिया का चरित्र बहुत कुछ प्रभा खेतान से मिलता है जो अपने दकियानुमा समाज से विद्रोह कर एक स्वतन्त्र इमेज बनाती है। अरविन्द जैन ‘‘शायद पहली बार हिन्दी उपन्यास की नायिका परिवार,

पूंजी और परम्परा की चैखट लाँघ देशी-विदेशी सभी सीमाओं के उस पार तक स्त्री के पक्ष में वकालत के साथ-साथ एक खतरनाक बौद्धिक विमर्श का जोखिम भी उठाती है।''

निष्कर्ष

इस प्रकार स्त्री केवल कमजोर, दब्बु एक आधार व एक स्त्री का एक दायरा व बंधन जो तैयार किया गया था आज उन सभी दायरों व खाँचों व बंधनों को स्त्री तोड़ती हुए नजर आती है। और विवाह के नए मानदण्ड तैयार किए खुद की पहचान शिक्षा, तकनीक, ज्ञान-विज्ञान से लेकर हर जगह पर अपनी पकड़ जमाई बैठी है। विवाह चार दीवार व पुरुष के लिए बनाई रोटी तक सीमित नहीं है। रोटी बनाने से लेकर कमाने तक हुनर स्त्री रख रही है।

संदर्भ

1. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से की धूप हिंदी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2019
2. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 2018
3. औरत, अमृता प्रीतम, पेंगुइन रेन्डम हाउस, 2020
4. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, मनोज पाण्डे, लोकभारती प्रकाश, 2019
5. आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, 2012
6. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सौंदर्यशास्त्र के आधार, घनश्याम शर्मा, 2018

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 189-197
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान और विज्ञान परम्परा : सातत्य एवं विकास

डॉ. केशव लुइटेल
सहायक-आचार्य,
संस्कृत विभाग गुरुचरण महाविद्यालय, सिलचर

शोधसार :
प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ज्ञान और विज्ञान के रहस्य भावनात्मकता और तात्विक उच्च स्तर पर पहुंच गई है, तर्कसंगतता और अवलोकन संबंधी तरीके स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। भारतीय चिंतन ने वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, योग, गणित, खगोल विज्ञान और वास्तुकला जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वैदिक संहिताओं - ब्राह्मण, सूत्र, उपनिषद, पुराण, स्मृति और दर्शन से लेकर आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, वास्तुकला, रसायन विज्ञान, परमाणु विज्ञान और धातुविज्ञान में विविध प्रकार के वैज्ञानिक विचार समाहित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की सारस्वत समृद्धि न केवल इसके आध्यात्मिक मूल्यों से, बल्कि इसके सैद्धांतिक विचारों, प्रयोग और सामयिक रचनात्मकता से भी पहचानी जाती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली विश्व की सबसे पुरानी और समृद्ध परम्पराओं में से एक है। यह शोध आलेख भारतीय ज्ञान प्रणाली की ऐतिहासिक यात्रा की समीक्षा करता है तथा इसकी सांस्कृतिक विरासत के महत्व को समझाता है। इसके अलावा, भारतीय पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों के योगदान और आधुनिक युग में उनकी उपयोगिता कैसे बची हुई है, इसका अध्ययन किया जाता है। यह इस ज्ञान प्रणाली के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान करने तथा वैश्विक स्तर पर इसके प्रभाव की गहन समीक्षा करने का एक प्रयास है।

कुञ्जी शब्द : -वेद, उपनिषद, योग, आयुर्वेद, गणित, खगोल विज्ञान, वास्तुकला,, भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक विरासत।

प्रस्तावना:

भारतीय ज्ञान परंपरा में मुक्ति के लिए उपयोगी ज्ञान और साधना के लिए उपयोगी विज्ञान की समान रूप से चर्चा की गई है। भारतीय चिंतन परम्परा में ज्ञान और विज्ञान दो अलग-अलग सम्प्रत्यय हैं। जिस प्रकार जीवन दिशा की दो धाराएँ हैं- श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग। उसी प्रकार इस मार्ग पर प्रेरित बुद्धि के भी दो रुप है- (1) ज्ञान बुद्धि और (2) विज्ञान बुद्धि। अमरकोष के अनुसार -

मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः ।
मुक्तिकैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम् ।।

अमरकोष-धीवर्गः 1.5.6.1.2

अर्थात् मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर बुद्धि को ज्ञान कहते हैं- जबकि शिल्प और शास्त्र की ओर उन्मुख बुद्धि को 'विज्ञान'।
भगवद्गीता के कथन अनुसार ज्ञान और विज्ञान दो शब्द के अर्थ -मोक्ष के लिए और व्यवहार के लिए प्रयोग किया गया है -

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।

(अब मैं तुम्हारे समक्ष इस ज्ञान और विज्ञान को पूर्णतः प्रकट करूँगा जिसको जान लेने पर इस संसार में तुम्हारे जानने के लिए और कुछ शेष नहीं रहेगा।)

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।

हे अर्जुन! मैं तुम्हें विज्ञान सहित परम गुह्य ज्ञान बताऊँगा जिसे जानकर तुम भौतिक जगत के कष्टों से मुक्त हो जाओगे।

ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना गया है। भारत और भारतीयता के प्रति विश्व भर के देशों की आस्था और विश्व गुरु के रूप में इसकी प्रतिष्ठा के मूल में इसकी समृद्ध ज्ञान और चिंतन की परंपरा और उससे निकले सूत्र और मार्ग ही रहे हैं। अपनी इसी विशिष्टता के बल पर वह सदैव संसार का पथ प्रदर्शन करता रहा है। भारत में सदैव ऐसी शिक्षा व्यवस्था रही है जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को महत्व देती हो। इस व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति में ऐसे चारित्रिक और नैतिक गुणों के साथ-साथ सामाजिक भावना का विकास किया जाता रहा है, जिससे कि आगे चलकर वह संस्कृति तथा सभ्यता का संरक्षण करते हुए उत्तम नागरिक के रूप में सामाजिक सुधार करके राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर रहे। वैदिक ऋषियों ने अज्ञान को नष्ट करने वाले ब्रह्म रूपी प्रकाश को गुरु की संज्ञा दी है-

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

गुरुस्तोत्रम्

भारतीय मनीषा ने जिस गुरु तत्व की अभ्यर्थना की है, वह अपने आप में अद्भुत है। हमारी सनातन संस्कृति में गुरु को मात्र एक व्यक्ति नहीं ऐसी मार्गदर्शक सत्ता माना गया है जो भ्रम व अज्ञान के सभी आवरण हटाकर शिष्य के अन्तः को आत्मज्ञान की ज्योति से आलोकित कर देता है। भारतीय ज्ञान परंपरा ज्ञान और बुद्धिमता का सुंदर संगम है; जिसमें ज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म, भोग और त्याग का सामंजस्य दिखाई देता है। वैदिक काल से ही भारतीय हिंदू शिक्षा प्रणाली नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों को बढ़ावा देती रही है। इस शिक्षा प्रणाली ने सदियों से भारतीय समाज में विनम्रता, सत्यनिष्ठा, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सार्वभौमिक सहानुभूति के गुणों का विकास किया है।

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्।। विष्णुपुराण १-१९-४१।।

(अर्थात् कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाये। इसके अतिरिक्त जो भी काम है वे सब निपुणता देने वाले मात्र हैं।)

इसी चिर पुरातन गुरु-शिष्य परम्परा के कारण प्राचीन काल में हमारा भारत आत्मविद्या के शीर्ष पर था। संस्कृति के पुण्य प्रवाह में हमारी आध्यात्मिक धरा के तप:पूत आचार्यों के आत्मज्ञान की प्रखर ऊर्जा ने समूचे राष्ट्रजीवन को प्रकाशमान किया था तथा अपने सुपात्र शिष्यों के माध्यम से इस दिव्य आत्मविद्या के सतत प्रवाहमान बने रहने की व्यवस्था भी सुनिश्चित की थी। शाश्वत जीवन मूल्यों और सुसंस्कारों के सतत बीजारोपण की इस अमूल्य परम्परा ने हमारे भारत को

दुनिया का सर्वाधिक महान राष्ट्र और विश्वगुरु बनाया था। मनु-स्मृति का यह कथन प्रसिद्ध है कि *'अखिल विश्व के समस्त भागों से जिज्ञासु मानव ज्ञान की खोज में इस आर्यावर्त में आएंगे और देश के सुसंस्कृत साहित्य एवं संस्कृति से नैतिकता और चरित्र का पाठ सीखेंगे।'*[1] उस काल में अनेकानेक जिज्ञासु विदेशियों ने भारत को ज्ञान का अपरिमित स्त्रोत बताया। भारत की गुरु-शिष्य परम्परा की महत्ता को उजागर करते हुये पाश्चात्य दार्शनिक शोपेनहॉवर[2] का यह कथन प्रशंसनीय है कि विश्व में यदि कभी कोई सर्वाधिक प्रभावशाली व सर्वव्यापी सांस्कृतिक क्रांति आई है तो वह केवल उपनिषदों की भूमि-भारत से। जिज्ञासु शिष्यों ने ज्ञानी गुरु के समीप बैठकर उनके प्रतिपादनों को क्रमबद्ध कर उपनिषदों के रूप में दुनिया को जो दिव्य धरोहर दी है, उसका कोई तुलना नहीं है। मैक्समूलर का कहना था, *'यदि मुझसे पूछा जाए कि आकाश मंडल के नीचे कौन सी वह भूमि है, जहां के मानव ने अपने हृदय में दैवीय गुणों का पूर्ण विकास किया तो मेरी उंगली भारत की ओर ही उठेगी। यदि मैं स्वयं से पूछूं कि वह कौन सा साहित्य है जिससे अब तक ग्रीक, रोमन व यहूदी विचारों में पलते आये यूरोपवासी प्रेरणा ले सकते हैं तो मेरी उंगली केवल भारत की ओर ही उठेगी।'*[3] स्वामी विवेकानंद का कहना था, हमें गर्व है कि *''हम अनंत गौरव की स्वामिनी इस भारतीय संस्कृति के वंशज हैं, जिसके महान गुरुओं ने सदैव मुमूर्षु मानव जाति को अनुप्राणित किया है। समय की प्रचण्ड धाराओं में जहां यूनान, रोम, सीरीया, बेबीलोन जैसी तमाम प्राचीन संस्कृतियां बिखरकर अपना अस्तित्व खो बैठीं, वहीं एकमात्र हमारी भारतीय संस्कृति इन प्रवाहों के समक्ष चट्टान के समान अविचल बनी रही क्योंकि हमें हमारी आत्मज्ञान सम्पन्न दिव्य-विभूतियों का सशक्त मार्गदर्शन सतत मिलता रहा''।*

भारत में यह परम्परा बिना किसी बाधा के युगों तक लगातार चलता रहा। पौराणिक युग में परशुराम, कणाद, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, सांदीपनि, व्यास, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अगत्स्य आदि ऋषि महर्षियों की सुदीर्घ श्रृङ्खला ने हमारे देश को ऐसे-ऐसे नररत्न दिये, जिनका आज भी कोई तुलना नहीं है।

वैदिक युग में प्रारम्भ हुई यह परम्परा 18वीं-19वीं सदी तक क्रमशः चलती रही। भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक के साथ साथ क्रान्ति को दिशा दिखाने वाली भी रही है। सन्त एकनाथ, ज्ञानेश्वर, स्वामी गोविंदपाद के शिष्य शंकराचार्य, शंकराचार्य के शिष्य विद्यारण्य, ईश्वरपुरी के शिष्य महाप्रभु चैतन्य, पूर्णानंद के शिष्य विरजानंद, विरजानंद के शिष्य दयानंद, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानंद व उनकी शिष्या निवेदिता, समर्थ रामदास के शिष्य शिवाजी, चाणक्य के शिष्य चंद्रगुप्त, रामानंद के शिष्य कबीर, कबीर के शिष्य रैदास,

---

[1]. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनुस्मृति 2/20)

[2] *In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. The Upanishads have been the solace of my life and will be the solace of my death," (Arthur* Schopenhauer, *The world as will and Representation, Preface to the First edition ,p-xiiii)*

[3]. *If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered over the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant, I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of the Semitic race, the Jewish, may draw the corrective which is most wanted to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human a life... again I should point to India.* ***(Max Müller, India, What Can It Teach Us (1882)***

पतंजलि के शिष्य पुष्यमित्र, ये कुछ ऐसे नाम हैं जो इस परंपरा में देवसंस्कृति के पन्नों में पढ़े जा सकते हैं। ऐसे ही महान गुरुओं व आचार्यों की छत्रछाया कारण आज भी हमारा राष्ट्र प्राणवान बना हुआ है।

भारतीय वांग्मय में हमें गुरुकुल व्यवस्था के विहंगम दिग्दर्शन होते हैं। वैदिक काल में शिक्षा को व्यवस्थित रूप देने के क्रम में सर्वप्रथम दो प्रश्न उभरे। प्रथम 'क्या' सिखाया जाए तथा द्वितीय 'कैसे' सिखाया जाए? इन प्रश्नों के अन्तर्गत उन विषयों का समावेश हुआ जिनके ज्ञान से मानव समाज में उपयोगी भूमिका निभाने में सक्षम हो सका। प्राचीन काल में शिक्षारूप यह उच्च कोटि का कार्य नगरों और गाँवों से दूर रहकर शान्त, स्वच्छ और सुरम्य प्रकृति की गोद में किया जाता था। इनका संचालन राजाश्रय व जनसहयोग से होता था। इन गुरुकुलों में हर वर्ण के छात्र साथ पढ़ते थे। गरीब-अमीर में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। सबको समान सुविधाएं दी जाती थी। गुरुकुल में प्रवेश करने के आठ साल की उम्र निर्धारित थी। इस गुरुकुलीय शिक्षा का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक विकास और चरित्र निर्माण के साथ विद्यार्थी को स्वावलंबी बनाना तथा भावी जीवन की चुनौतियों के लिए तैयार करना था।

प्राचीन भारत में तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, धारा, तंजोर, काशी, कर्नाटक, नासिक आदि की शिक्षा संस्थाएं समूचे आर्यावर्त में प्रसिद्ध थीं। हिन्दू सम्प्रदायों एवं मठों के आचार्यों के प्रभाव से ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग मठ शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गये थे। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि के मठ प्रसिद्ध थे। बौद्ध विहारों में भी सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएं स्थापित हुई थीं। इन संस्थाओं में धार्मिक ग्रन्थों का अध्यापन एवं आध्यात्मिक अभ्यास कराया जाता था। अशोक (300 ई. पू.) ने बौद्ध विहारों की विशेष उन्नति करायी थी। इनमें गुरु किसी एक कुल का प्रतिनिधि न होकर सारे विहार का ही प्रधान होता था। इनमें नालन्दा विश्वविद्यालय (450 ई.), वल्लभी (700 ई.), विक्रमशिला (800 ई.) प्रमुख शिक्षण संस्थाएं थीं।

भारत सदा से विद्या का उपासक रहा है। शास्त्रज्ञ कहते हैं- सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् सच्ची विद्या वह है जो हमारे अन्तस से प्रभुत्व को मिटाकर देवत्व की भावना जाग्रत करती है, हमें जीवन का सत्य स्वरूप और सन्मार्ग दिखाती है। पश्चिमी चिंतन में गुरु का कोई महत्व नहीं है, इसीलिए वे लोग शिक्षा व विद्या का भेद नहीं जानते। आज यूरोप की भौतिक उन्नति, प्रगति, विकास और ज्ञान का सम्बन्ध आधुनिक शिक्षा से है। मगर यह शिक्षा सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान, सूचना संग्रह, डिग्रियों और शारीरिक सुख भोगों तक सीमित है। वहां शिक्षक और छात्र तो हैं; पर गुरु और शिष्य नहीं। शिक्षा तो है; पर विद्या और दीक्षा नहीं। हम सब भलीभांति जानते हैं कि देश में मशीनी मानव विकसित करने वाली इस शिक्षा की बुनियाद अंग्रेजों के शासन में पड़ी थी। मैकाले प्रणीत शिक्षा पद्धति के कारण हमारी नई पौध अपनी जड़ों से कटती चली गयी। आज जितना अधिक शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है, उतना ही मानसिक प्रदूषण भी बढ़ रहा है। शिक्षा बढ़ रही है पर जीवन विद्या घट रही है।

भारत का जीवन-दर्शन रहा है शिक्षा-विद्या, भोग योग, भौतिकता आध्यात्मिकता, शरीर-आत्मा, प्रकृति परमात्मा आदि का सन्तुलन एवं समन्वय। हम भारतीय अज्ञान के नहीं, ज्ञान के उपासक रहे हैं। जीवन के हर क्षेत्र में विशुद्ध रूप में ज्ञान की प्रतिष्ठापना करना हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। पश्चिमी जगत मनुष्य का आकलन इस बात से करता है कि तुम्हारे पास क्या है ? क्योंकि उनका जीवन दर्शन भोगप्रधान है। जबकि भारतीय चिंतन में व्यक्ति को इस तराजू पर तौला जाता है कि तुम क्या हो ! क्योंकि हमारा भारतीय दर्शन आत्मप्रधान है। एक समय हमारी देवभूमि की इसी ज्ञान-संपदा ने विश्व को दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। यदि इस दृश्य को बदलना है तो हमें गुरु शिष्य परम्परा को पुनर्जीवित करना ही होगा।

बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यावश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिए बिना नहीं चल सकती है, क्योंकि एक

तरफ तो हम आधुनिकता के दौर में भागे जा रहे हैं, वहीं हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है जैसाकि उपनिषदों में कहा गया है कि यदि दृष्टिहीन को रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य कैसे प्राप्त हो सकेगा। सा विद्या या विमुक्तये ज्ञान वह है जो मुक्ति देता है। इस एक पंक्ति में ज्ञान के विषय में भारतीय दृष्टिकोण का सार समाहित है, जो स्वाभाविक रूप से अमर, अनंत और मूल्य-आधारित है। यहां एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है जिसे अब तक उपेक्षित रहे हिंदू इतिहासविज्ञान पर विचार करते समय अनुत्तरित नहीं छोड़ा जा सकता: हम अपनी ज्ञान प्रणाली को अमर क्यों मानते हैं? इसका एक शब्द में उत्तर है, यह आर्ष विद्या है, ऋषियों का दर्शन है। पूर्णत्व क्या है? या मानव अस्तित्व का उच्चतम स्तर क्या है? मन की स्पष्टता और जीवन की शुद्धता से परिपूर्ण, जैसे हमारे ऋषि थे। अब तक के महानतम मस्तिष्क, जिन्होंने मौलिक प्रश्नों के उत्तर ढूंढें और जो उनके मौलिक विचारों के रूप में सामने आये। आत्म-अनुशासन और ध्यान के माध्यम से उन्होंने जीवन की सच्चाई जानने का प्रयत्न किया और जो जाना उसे प्रभावशाली ढंग से जीवंत संवादों द्वारा, गूढ़ और सुंदर कविता के माध्यम से मानव मात्र के समक्ष व्यक्त किया। इस बुद्धिमत्तापूर्ण और समग्र दृष्टिकोण ने प्राकृतिक क्रम के जिस अनन्त सिद्धांत को प्रतिपादित किया, उसने हमारे साहित्य और ज्ञान प्रणाली को अमर बना दिया।

पश्चिमी मान्यता के विपरीत, हमारे यहाँ ज्ञान केवल तथ्य, जानकारी, कौशल, अनुभव या शिक्षा का नाम नहीं है, बल्कि ज्ञान वह है जो मानव जाति को मुक्त करने में सक्षम हो। यह केवल जानना भर नहीं बल्कि अनुभूति है।य ह भारतीय विचारों में अंतर्निहित है और यहाँ तक कि हमारे राष्ट्र का नाम "भारत" भी इसे अभिव्यक्त करता है। भारत का अर्थ है, वह देश जो 'ज्ञान देने' और 'ज्ञान लेने' में प्रसन्नता का अनुभव करता है। मैक्स मुलर ने अपनी पुस्तक India: What It Can Teach Us? (भारत: हमें क्या सिखा सकता है), में इसे अपने शब्दों में इस प्रकार लिखा है –

" प्लेटो और कांट का अध्ययन करने वालों को भी यह बात अच्छी तरह से ध्यान देने योग्य है कि "अगर मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के नीचे मानव मन ने अपने सबसे अच्छे उपहारों को विकसित किया है, अधिक से अधिक गहराई से विचार किया है, जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं का समाधान खोजा है, तो मैं भारत की ओर इंगित करना चाहूंगा। और अगर मैं खुद से पूछूं कि हमारे आतंरिक जीवन को, अधिक व्यापक, अधिक सार्वभौमिक, वस्तुतः जिसे वास्तविक मानव जीवन कहा जा सके, ऐसा बनाने हेतु कौन सा साहित्य उपयुक्त हैं, तो मैं निश्चित रूप से, बहु प्रचारित ग्रीक और रोमन विचार या सेमेटिक या यहूदी विचारों की अपेक्षा,... पुनः भारत की ओर इंगित करूंगा। " [4]

ज्ञान प्रणाली का पश्चिमी दृष्टिकोण एक संगठित संरचना और एक गतिशील प्रक्रिया में समाहित माना जा सकता है, जिसमें ज्ञान की सामग्री, घटकों, विभागों, या प्रकारों का सृजन और उनका प्रतिनिधित्व करना समाहित है।

---

[4] *If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of one Semitic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India."(**Friedrich Max Müller, India: What Can it Teach Us?)***

श्रीमद्भगवद्गीता[5] में भी ज्ञान को स्वयं का महान शुद्धिकर्ता और मुक्तिदाता के रूप में व्यक्त किया गया है। जहां तक भारत की ज्ञान परंपरा का संबंध है, उसमें तीन शब्दों पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। वे हैं - दर्शन, ज्ञान और विद्या। दर्शन अर्थात दृष्टिकोण या तत्व ज्ञान जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है। जब यह ज्ञान किसी विशेष प्रभाव क्षेत्र में एकत्रित, और किसी उद्देश्य के लिए व्यवस्थित होता है, तब इसे विद्या या अनुशासन कहा जाता है।

मुंडकोपनिषद में[6] संगठित ज्ञान की सम्पूर्ण रचना को दो भागों में विभक्त किया गया है - परा विद्या (परम तत्व का ज्ञान) और अपरा विद्या (सांसारिक ज्ञान)। हमारे यहाँ विद्या के १८ सैद्धांतिक विषय हैं [7]। इसके अतिरिक्त ६४ प्रयुक्त या व्यवहारिक विषय भी हैं, जिन्हें कलाओं के रूप में जाना जाता है। विद्या चार वेदों, चार उपवेदों और छह वेदांगों या सहायक विज्ञानों जैसे - स्वर-विज्ञान, व्याकरण, छंद, खगोल विज्ञान, अनुष्ठान और भाषाशास्त्र में फैली हुई हैं। कलायें जन सामान्य के जीवन का अभिन्न अंग हैं, क्योंकि ये उनके जीवन को एक उद्देश्य देती हैं। भारतीय परंपरा में कला और शिल्प के बीच तुलना कोई तुलना नहीं थी, ना तो कला को शिल्प से बेहतर माना गया और ना ही शिल्प को कला से श्रेष्ठ।

भारत की मौखिक परंपरा (उक्ति परंपरा) ज्ञान का एक विशाल भंडार है। प्राचीन भारतीयों ने ज्ञान को याद रखने के लिए विभिन्न संसाधनों का व्यवहार किया और इस मौखिक संस्कृति के ढांचे का गठन कर इसके माध्यम से ज्ञान को बचाए रखा। भारतीय विचार प्रणाली में, मोक्ष अंतिम लक्ष्य है, किन्तु वह भी भौतिक जगत की मूल्यों पर नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि हर व्यक्ति के जीवन में चार लक्ष्य हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ज्ञान मुक्ति का एक साधन है और वह ज्ञान केवल कुछ लोगों के पास भंडार करने को नहीं है। अन्य प्रणालियों के विपरीत, हम परम्परा को भी एक प्रमाण मानते हैं, जो समग्रता की चिरंतन विशेषताओं को सुनिश्चित करता है।

भारतीय विचार के समान दुनिया में कोई और विचार नहीं है, क्योंकि यह विविधता को मान्यता देता है और जो भौतिकवाद से आदर्शवाद तक, चार्वाक से वेदांत तक सभी विचारों को सम्मान प्रदान करता है। साथ ही स्वीकृति और एकीकरण के सभी चरणों में, हमने यह सुनिश्चित किया है कि ज्ञान से न्याय कभी पृथक न हो। स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन ऑफ़ द वर्ल्ड के 11 संस्करणों में दुनिया की सभी सभ्यताओं का इतिहास लिखने वाले प्रसिद्ध अमेरिकी इतिहासकार विल दुरंत, उन कुछ आधुनिक इतिहासकारों और शिक्षाविदों में सम्मिलित हैं, जिन्होंने भारत की दिव्यता और महानता को स्वीकार किया। उन्होंने लिखा है - *"भारत हमारी सभ्यता की मातृभूमि है, और संस्कृत यूरोप की सभी भाषाओं की मां: वह हमारे दर्शन की मां है, भारतीयों के माध्यम से हमारे अधिकांश गणित की मां है, बुद्ध के माध्यम से ईसाई धर्म में सन्निहित सिद्धांतों की मां है, ग्राम समुदाय के माध्यम से स्व-सरकार और लोकतंत्र की मां है। भारत मां कई अर्थों में हम सब की माता है "।* [8]

---

5. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ श्रीमद्भगवद्गीता -४-३७-३८

6. तत्र अपरा ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदः शिक्षा कल्पः व्याकरणं निरुक्तम् छन्दः ज्योतिषम् इति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ मुण्डकोपनिषद्- १-१-५)

7 अंगानि वेदाश्चत्वरो मीमांसा न्यायविस्तर:। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥२८॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात्।अर्थशास्त्रं परं तस्मात् विद्याह्यष्टादश स्मृता:॥२९॥

8. *India was the motherland of our race, and* ***Sanskrit*** *the mother of Europe's languages: she was the mother of our philosophy; mother, through the Arabs, of much of our mathematics; mother, through the Buddha, of the ideals embodied in Christianity; mother, through the village community, of self-government and democracy.* ***(Mother India is in many ways the mother of us all.")*** ***Story of Civilization: Our Oriental Heritage - By Will Durant*** *MJF Books. 1935. p 410 - 415 and 554).*

अन्य एक पाश्चात्य पण्डित कहतें है कि – *"प्राचीन भारतीय ऋषियों ने ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जो हजारों साल से सैकड़ों परिवर्तनों के बीच भी जीवित है। साम्राज्य टूटे, समाज बदला, फिर भी शिक्षा की ज्योति ज्यों-की-त्यों जगमगाती रही। यही नहीं इस शिक्षा के फलस्वरूप ऐसे अनेक विचार-मनीषी व्यक्ति हुये जिन्होंने भारत ही नहीं, बल्कि सारे संसार के शिक्षित समाज पर प्रभाव डाला। भारतीय शिक्षा के इस जीवित स्वरूप एवं इस सफलता को देखकर आज भी शिक्षा-वैज्ञानिक आश्चर्य करते हैं"*। [9]

शिक्षा जीवन के सन्निकट थी और विद्यार्थी को सब परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति प्रदान करती थी। हस्त-कला या किसी ललित कला मे दक्षता प्राप्त करना विद्यार्थियों की विशेष योग्यता होती थी और मब विद्यार्थी किसी-न किसी विशेप कला में प्रवीण होते थे।

भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो के विषय में अल्तेकर ने लिखा है कि *"धार्मिक भावनाओं का विकास, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्त्व-विकास सामाजिक-शिक्षा एवं राष्ट्रीयता का प्रचार भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे"*। [10]

वास्तव में, हिंदू ज्ञान प्रणाली ने सार्थक वाद-विवाद और आत्मसात के माध्यम से प्रगति की है और यही हिंदू धर्म का प्रमुख और अनोखा वैशिष्ट्य हैं। हमारी संस्कृति और राज्यतंत्र पर एक हजार वर्षीय औपनिवेशिक आक्रमण और अधीनता सहित कई कारणों से, हमारा स्वदेशी ज्ञान बड़े पैमाने पर दूषित हुआ और हमारे मुख्य विचारों से दूर किया गया। यह समय की मांग है कि हमारे पारंपरिक ज्ञान प्रणाली को पुनर्जीवित करने और उसे पुनः प्राप्त करने के लिए प्रशासनिक और बौद्धिक स्तर पर प्रयत्न किये जाएँ।

उपसंहार

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से कहीं अधिक समुन्नत और उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ। शिक्षा की यह अवधारणा भारतीय परंपरा में वर्षों से अपनाई गई है। तदनुसार, विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। भारतीय शिक्षा प्रणाली की मजबूती इस तथ्य का परिणाम थी कि अनेक विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण और भारत के बड़े भूभाग पर उनके शासन के बावजूद भारत का नैतिक और सांस्कृतिक आधार सशक्त रहा। आक्रमणकारी मंदिरों और मूर्तियों को नष्ट कर सकते थे, लेकिन वे भारतीयों के विचारों व मूल्यों को नष्ट नहीं कर सके। 1835 में लागू किये गये अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम के माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने भारतीय भाषाओं, विशेषकर संस्कृत शिक्षा पर रोक लगा दी तथा अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित किया। यह कहना खेदजनक है कि अंग्रेजों के जाने के बाद भी भारतीय शिक्षा प्रणाली पर मैकाले का एकछत्र शासन पिछले सात दशकों से जारी रहा।

---

[9]. *"Not only did Brahaman educators develop a system of education which survived the crumbling empires and the changes of society, but they also, through all these thousands of years, kept aglow the torch of higher learning, and numbered amongst them many great thinkers who have left their mark not only on the learning of India, but upon the intellectual life of the world." (F. E. Kcay. Indian Education in Ancient and later Times. P. 18.)*

[10]. *"Infusion of a spirit of piety and religiousness, formation of character, developnient of personality, inculcation of civic and social duties, promotion of social eficiency and prcscrvation and spread of national culture may be described as the chief aims and ideals of ancient Indian Education." (Altekar. Education in Ancient India, pp. 89.)*

विदेशी आक्रान्ताओं ने भारतीयता की सनातन धारा को अवरुद्ध करने के क्रम में शिक्षा व्यवस्था को बहुत क्षति पहुंचायी और इसको उस अनुपात में विकसित नहीं किया जिस अनुपात में होना चाहिए था। स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ ही शिक्षा को लेकर भी प्रयत्न चलती रही। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा के विस्तार के लिए अनेक प्रयास किए किन्तु उसमें कई अपरिपक्वता थी। हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था जिस महान आध्यात्मिक मूल्यों पर अधिष्ठित थी मैकाले की शिक्षा नीति के प्रभाव में उसकी उपेक्षा की गयी। इससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अत्यधिक क्षति हुई। ऐसे में यह नई शिक्षा नीति अत्यंत ही उत्साहजनक है। इसकी व्यापकता और दूरदर्शिता स्पष्टतः देखी जा सकती है। भारतीय परिवेश और परम्परा के अनुकूल यह शिक्षा नीति भारतीयता की प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यन्त निर्णायक सिद्ध हो सकती है। इक्कीसवीं सदी की भारत की इस पहली और महत्वाकांक्षी शिक्षा नीति में भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों को स्थिर रखते हुए नई सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में कठोर पदक्षेप उठाया गया ऐसा प्रतीत होता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल प्राचीन है, बल्कि आधुनिक समय में भी इसका महत्व अमूल्य है। आज इस ज्ञान प्रणाली का प्रभाव एक बार फिर प्रौद्योगिकी और विज्ञान के माध्यम से वैश्विक स्तर पर देखा जा रहा है। भारत की इस सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत का अध्ययन और संवर्धन आवश्यक है। भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अतीत की स्मृति मात्र नहीं है, बल्कि आज भी समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है। इस ज्ञान का उपयोग शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और अध्यात्म के क्षेत्र में आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए किया जा रहा है। योग और आयुर्वेद को व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति मिल रही है, जबकि भारतीय गणित और खगोल विज्ञान की अवधारणाओं का उपयोग आधुनिक प्रौद्योगिकी में किया जा रहा है।

भारत को अपनी परंपराओं का सम्मान करते हुए उन्हें पुनर्जीवित करने का प्रयास करना चाहिए। अनुसंधान, शिक्षा और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणाली को नई पीढ़ी तक विस्तारित करने की आवश्यकता है। नूतन शिक्षा नीति नव प्रजन्म की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के अनुकूल हो तथा भारतीय ज्ञान और मूल्य परंपरा के विशिष्ट उपयोग से राष्ट्रीय चरित्र को परिष्कृत करने वाला हो। भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति से सम्बंधित हमारी ऐतिहासिक उत्तराधिकार को रक्षा करने, उसका अनुसन्धान करने, एक बहु विषयक और समग्र शिक्षा की भूमिका तैयार करने तथा भारतीय भाषाओं को शिक्षा प्रक्रिया में आधारभूत रूप में अन्तर्भुक्त करने वाली, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर समन्वय को सम्बर्धन करने तथा सतत मूल्यांकन करने वाली नूतन शिक्षा नीति हो यही मेरा शोधपत्र का उद्देश्य है। नूतन शिक्षा नीति राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता, सामाजिक कुशलता तथा राष्ट्रीय अनुशासन आदि भावनाओं को विकसित करने में सहायक हो। वह अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के साथ ही राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देने की भावना से ओत प्रोत हो यह वर्तमान युग की अपेक्षा है ऐसा मेरा मानना है।

सन्दर्भसूची

1. उपाध्याय बलदेव- ‘*वैदिक साहित्य और संस्कृति’(१९५५)* शारदा मन्दिर ,वाराणसी।
2. उपाध्याय बलदेव (१९९७) *भारतीय दर्शन* , शारदा मन्दिर, वाराणसी (उ.प्र.)
3. पोद्दार हनुमान प्रसाद जी – ‘*कल्याण’- हिन्दुसंस्कृति अङ्कः (१९९९)* गीताप्रेस,गोरखपुर।
4. गैरोला वाचस्पति- ‘*वैदिक साहित्य और संस्कृति* ‘(२०१३) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,जबाहर नगर, दिल्ली।
5. जोशी लक्ष्मण शास्त्री – ‘*वैदिक संस्कृतिका विकास* ‘(१९५७) हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।
6. उपाध्याय रामजी –‘*भारतीय संस्कृति का उत्थान* (१९७८) रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहावाद -२
7. उपाध्याय बलदेव (१९९७) ‘*भारतीय दर्शन* ‘, शारदा मन्दिर, वाराणसी(उ.प्र.) ।

8. हेबालकर शरद, अनु. प्रा. विद्याधर बलबन्त सरदेसाई *'भारतीय संस्कृति का विश्व-संचार'* (२०१३) सुरुचि प्रकाशन, केशव-कुञ्ज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली।
9. मुखर्जी भास्वति (जनवरी 29, 2015) 'भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत : विश्व के लिए सभ्यता का धरोहर' **http://mea.gov.in/**
10. **http://www.ugtabharat.com/**
11. Kapil Kapoor , Avadhesh Kumar Singh(2005) *Indian Knowledge Systems* (2 Vols.)
    a. D.K. Printworld Pvt. Ltd, New Delhi.
12. Radhakrishnan, S. (1956). Indian Philosophy. Oxford University Press.
13. Sharma, R. (2008). Chanakya: The Legend. Penguin India.
14. Meulenbeld, G. J. (1999). A History of Indian Medical Literature. Egbert Forsten.
15. Joseph, G. G. (2011). The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics. Princeton University Press.
16. Feuerstein, G. (2001). The Yoga Tradition: Its History, Literature, Philosophy, and Practice. Hohm Press.
17. Fergusson, J. (1910). History of Indian and Eastern Architecture. Cambridge University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 198-201
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आज के परिवेश में पत्रकारिता की दशा और दिशा

डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव
प्रोफेसर,
शास.महाविद्यालय नगरी,जिला–धमतरी (छ0ग0)

मनुष्य के जीवन में प्रारम्भ से लेकर आज तक पत्रकारिता का बड़ा महत्त्व रहा है। हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास 170वर्ष पुराना है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति निष्ठा लग्न परिक्षा एवं अपूर्व त्याग के लिए विख्यात रहे है। प्रारम्भ में स्वाधीनता के लिए संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही पत्रकारिता का कर्तव्य था और अपने ऊँचे आर्दशों का पालन प्रारम्भ से ही करती आ रही है। तब पत्रकारों के आदर्श महान थे और साधन सीमित।

आज पत्रकारिता के साधन असीमित है और उनके आदर्श छोटे हो गए है। पत्रकारिता के लिए अनेक पत्रकारों ने कष्ट एवं यातनाओं को सहते रहने के बावजूद अपने हौसले बुलन्द रख एवं अपने कर्तव्य से डिगे नहीं। आधुनिक समय में जबकि पत्रकार कला का पूर्ण विकास हो गया है तो क्या आज हम पत्रकारिता एवं पत्रकारों से संतुष्ट है ? उस समय जब मुद्रण कला का विकास नही था एवं बिजली जैसी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थी , तब पत्रकारों द्वारा अपने आदर्शो के लिए पत्रकारिता अपनाई गई। कमाना एवं नाम कमाना उनका मकसद नहीं था। ऐसे कई उदाहरण है जब दीपक की मंद रोशनी में रात–रात भर लिखते और सुबह घर–घर जाकर उन लिखे पत्रो को बांटते। निरन्तर काम करते करते, उनकी आंखो की रोशनी जाती रही लेकिन वे अपनी कलम को मजबूती से थामें रहे। आचार्य देवीदत्त शुक्ल जी का नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से लिया जा सकता है। लक्ष्मी शंकर व्यास जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि वे भारत मित्र कार्यालय में प्रतिदिन 12 बजे आते और दो घंटे डाक देखकर वे लेखन सम्बधी कार्य करते। इसके बाद वे रात के लगभग 8 बजे कार्यालय में आ जाते और रातभर कार्यालय में ही रहते। उस समय की पत्रकारिता अत्यंन्त कठिन थी क्योंकि उस समय पाठको की रूचि नही रखते और संपादक को स्वंय उनके पास जाकर पत्र पढ़कर सुनाना पड़ता था।

पराधीनता के काले दौर अर्थात् स्वतंत्रता पूर्व अखबार महज संवाद, सूचना, सन्देश , पैगाम और समाचार प्रसारित करने वाले कोरे अखबार ही नही थे, बल्कि वह खबरगिरि के साथ–साथ वृहत्तर उद्देश्यों से सम्पृक्त स्वतंत्रता संग्राम के स्वतः स्फूर्त बहुत बड़े आंदोलन भी थे। इस समय के समाचार पत्रो में उन दबे–कुचले वर्ग के लोगों की दर्द और देश को शब्द दिए, जिनकी अपनी कोई आवाज नहीं थी। तत्कालीन समाचार पत्रों ने शोषितों और बेजुबानों के कष्टों को साझा किया, जन आन्दोलनों का माध्यम बन, उनके संघर्षमयी जीवन गाथा के मुख प्रवक्ता बने।

“ ऐ अहले नजर शाके नजर खूब है, लेकिन।
जो सच की हकीकत को न समझे वो नजर क्या ? ।।

पत्रकारिता शब्द का जन्म संस्कृत भाषा के पत्र शब्द में कृ (करना) धातु जिन+तल+ताप् प्रत्ययों के योग से हुआ है, जिसका आशय होता है –पत्र पत्रिकाओं के लिए समाचार और लेख आदि लिखना इधर उर्दू में पत्रकारिता के लिए खबरनवीती कहते है। पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में जर्नल्जिम शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। जर्नलिज्म शब्द की व्युत्पति फ्रांसीसी भाषा के जर और जर्नल शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ एकदिन, और समाचार पत्र है। इस आधार पर जर्नलिज्म को हिन्दी में पत्रकारता कहना चाहिए परन्तु प्रमाद के चलते पत्रकारिता शब्द चलन में आ गया।

समाज एवं समय के सन्दर्भ में सजग और सचेत रहकर नागरिकों में दायित्व–बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते है। प्रारम्भ में पत्रकारिता का आशय समाचारों का संकलन और प्रसारण था, किन्तु जैसे–जैसे समाचार–पत्रों में समाचार प्रेषक, मुद्रण एवं वितरण के साधनों में वैज्ञानिक –प्रगति होती गई, पत्रकारिता का क्षेत्र विस्तृत होता गया। पत्रकारिता का कार्य खालिस समाचारों का संकलन– प्रसारण, आकर्षक, शीर्षक तथा उद्याोग धन्धों के विज्ञापन छापना आदि ही नहीं है, बल्कि यह न्याय परायण तेजस्विनी, पुण्य संचारिणी होने के साथ–साथ समाज के मंगलकारी तत्वों का भी प्रकाशन करती है

स्वतंत्र पत्रकार इन्हें ''सिटीजन जर्नलिस्ट विज्ञान के विकास के चरम् चरण 'नवीन प्रौधोगिकी' से लैस उन्नत संचार माध्यमों की उपस्थिती ने देश की कई पारम्परिक और प्रचलित तकनीकों का खात्मा कर दिया। अभी हाल ही में 15 जुलाई सन् 2013 ई. से देश में टेलीग्राम सेवा बंद कर दी गई । पहली बार सन् 1850 ई. में तत्कालीन सरकार ने भारत के लिए पहला टेलीग्राफ कानून पारित कर इसे आम जनता के उपयोग के लिए सुलभ बना दिया था।

स्वतंत्र पत्रकार – इन्हे 'सिटीजन जर्नलिस्ट' अथार्त 'नागरिक पत्रकार भी कहते हैं। ये किसी समाचार–पत्र समूह के नियमित कर्मचारी नहीं होते है तथा इस सन्दर्भ में इनके पास अपनी स्वतंत्र बेवसाइट भी नहीं होती। वस्तुतः समाचार–पत्र प्रायः किसी–न–किसी रूप में औद्योगिक घरानों या समूहों की सम्पत्ति होते है और स्वामियों के हित अनुरूप ही समाचार पत्रों की दिशा–दशा निरूपित होती है। सम्पादकीय कैसा होगा, किसी परिघटना की उपेक्षित करना है या नमक–मिर्च लगाकर तूल देना है, इत्यादि राजनीतिक सरोकर वस्तुतः इन्हीं स्वामियों के होते है, जो सत्ता–प्रतिष्ठान के साथ सम्बन्ध के आधार पर स्वरूप पाते है।

पूर्ण कालिक पत्रकार – जो पत्रकार एक पेशे के रूप में पत्रकारिता को अपनाते है, शौक के रूप में नहीं – उन्हें हम पूर्णकालिक पत्रकार कह सकते है, क्योंकि शौकिया पत्रकार कभी–कभी पत्रकारिता से जुडता है, अन्य समयों में वह पत्रकार नहीं होता। व्यावसायिक होने के कारण पूर्णकालिक पत्रकार प्रायः किसी संगठित समूह समाचार–पत्र से जुड़ता है अन्यथा अपनी औकात और क्षमता के अनुसार वह स्वतंत्र रहकर कार्य करता है, लेकिन वह पत्रकार बारहमसी होता है अर्थात पूर्णकालिक होता है।

स्टाफ पत्रकार बड़े समाचार माध्य, चाहे वे प्रिन्ट मीडिया से सम्बधित होते है या इलेक्ट्रानिक मीडिया से, किसी–न–किसी औद्योगिक घराने से वित्तपोषित होते है। वस्तुतः यह पत्रकारिता औद्योगिक घराने का ही एक व्यावसायिक क्षेत्र है, अतः किसी संगठित क्षेत्र की भांति यहां वेतनभोगी पत्रकार रखे जाते है।

श्रमजीवी पत्रकार 'श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम' के अनुसार श्रमजीवी पत्रकार की परिभाषा इस प्रकार है '' ऐसा व्यक्ति जिसका मुख्य व्यवसाय पत्रकार का है और अन्तर्गत सम्पादक, अग्रलेख लेखक ,समाचार सम्पादक, उपसम्पादक , फीचर लेखक , प्रकाशन–विवेचन , रिपोर्टर, संवाददाता, व्यंग्य–चित्रकार, फ्रूफ रीडर, समाचार–छाया चित्रकार भी है, किन्तु ऐसा कोई व्यक्ति इसके अन्तर्गत नहीं है । आमतौर पर पत्रकार बुद्धिजीवी ही होता है, किन्तु अपनी औकात के कारण बड़े समाचार माध्यमों से जुड़ा होकर वह सम्पादन एवं विवेचन की क्रिया तक केन्द्रित होते है क्योंकि वह पत्रकारिता का शक्तिकेन्द्र होता है।

विश्व बाजारवाद ने दुनिया की शक्ल बहुत तेजी से बदली है। स्वार्थ और शोषण की पद्धतियाँ अब पहले के मुकाबले कहीं जटिल हैं। आज बाजार हर चीज और प्रसंग पर हावी है। उक्त बाजारवाद के कारण भारतीय समाज में भयावह अराजकता और बेमरजाद हालात पैदा हो गए है। दुर्भाग्य से पत्रकारिता

के चरित्र को भी इसने स्खलित कर दिया है। पत्रकारिता के सरोकार बदल गए। इसके सारे मूल्य तंग हाशिए पर चले गए।

किन्तु पराधीन समय की पत्रकारिता अपने सर्जनात्मक और बौद्धिक उदग्र प्रतिभा से तत्कालीन चुनौतियों से जूझने मे सन्नद्ध थी । अव्वल तो यह कि उस समय की पत्रकारिता ने अपने देश की सांस्कृतिक पहचान और विरासत की रक्षा की। सहकार–संवाद को आगे बढ़ाया। उस समय हर मोर्चो पर टूट रही जिन्दगी की लय को फोकस किया, साझी पहचान की रक्षा की। कुल मिलाकर अपने सृजन,चिन्तन–मनन से दुसरे लोगो को सोते जगाया–जागरूक किया। संवेदना और मानवता का नया भूगोल बनाया। पराधीनता के दौर में पत्रकारिता ने एक परिपक्व बुद्धिजीवी की जिम्मेदारी बखूबी निभाते समाज में व्याप्त तमाम तरह के पाखंडो पर हमला किया और सच्चे विचारों और मूल्यों को वाणी दी। पत्रकार केवल समाचार ही नही लिखा बल्कि समाज को एक नही दिशा भी देता है। सुर्य के प्रकाश की तरह लोगों को राह भी दिखाता है।

भारत में पत्रकारिता के विकास की स्थिति को देखा जाए तो हमे बहु संक्षेप में उस समय की स्थितियों पर भी लौटकर देखना होगा जब ब्रिटिश सरकार की दमन नीति लागू हुई जैसे–जैसे विकास होता गया त्यों त्यों ब्रिटिश सरकार ने पत्रो कुंठित बनाने के लिए कानून बना दिए उस समय के कानून के अनुसार पत्र का मुद्रक पत्र के अन्त में अपना नाम प्रकाशित को लिखकर भेजना होगा, रविवार को पत्र का प्रकाशन ठाना और सरकारी अधिकारी के निरीक्षण से पूर्व कोई पत्र प्रकाशित न किया जाना, एक आवश्यक नियम बना दिया गया था।

इस प्रकार अपने कठिनाइयों में हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने वाली एक ही चीज थी वह थी हमारी स्पिरित। उस समय के अधिकांश हिन्दी पत्रकार इस क्षेत्र में इस लिए आए कि वे देश के लिए कुछ करना चाहते थे। आज के युवाओं में '' चलो कोई नौकरी नही मिल रही तो पत्रकारिता ही सही '' , की बात उस समय कम थी। क्योंकि तब के अखबार सार्वजनिक चंदे से चलते थे और कमाई का कोई साधन न था।

पत्रकारिता कालान्तर में वाजिब–मुनासिब कुल सवाल दर पेश है, यथा–वया इस समय के अखबारों में विचारों का अन्त हो गया है, यदि नही,तो फिर समाचार और विचार के बीच सम्प्रति अन्तद्वैन्द क्यों बढ़ा है ? समाचार पत्रों एवं पाठक की आस्था गिरी–ठिठकी मनुष्य के पक्ष में निरन्तर लाभ लेने वाली पत्रकारिता को ग्लैमर की भूटन ने फलकजद क्यों बना दिया ? अभी सवालों की कड़ी टूटी नही है कि आज की पत्रकारिता अपनी पाखंडी शालीनता कब तक दिखाती रहेगी ?

भारत में पत्रकारिता की नींव तत्ख–तेवर और विरोध के स्वरों के साथ पड़ी थी, पर बाद में वही पत्रकारिता अपना अनुशासन तोड़ हक–हलाल की कमाई में क्यों लग गई ? दरअसल कुछ अपवादों को छोड़कर पत्रकारिता सम्बन्धी उक्त त्रासद विडम्बनाओं की वजह से अखबारी दुनिया में भरोसे के लिए इस समय कुछ नहीं बचा हैं।

वस्तुतः इस देश में नव उदार पूंजीवादियों का एक व्यापक विशाल बाजार बन गया है। यद्यपि अस्सी के दशक में पैदा हुए इस बाजार का फिलहाल कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं है। प्रभाव जोशी मानते थे कि भारम में हालिया बाजार आज की सबसे बड़ी शक्ति है, पूंजी ब्रम्हा है और मुनाफा मोक्ष। एक खासियत यह है कि इस बाजार का निर्लज्ज उपभोक्तावादी वर्ग भी बगल में खड़ा है। आज की पत्रकारिता इसी बाजार की शक्ति से प्रचलित है। यह बाजार ही पत्रकारिता का मूलमंत्र बन गया है।

सच तो यह है कि आज यह बाजार पसरता जा रहा है। यह बाजार आदमी को माल की तरह खरीद रहा है। जिस पत्रकारिता को विद्वानों ने आदर्शपूर्वक '' पांचवां वेद तथा वर्तमान युग का सबसे प्रभावशाली, अविष्कार कहा था। सम्प्रति वही पत्रकारिता विश्वास, मूल्य और भावनाओं को ठेस पहुंचाती बाजार और मंडी का माल बन गई है। आम तौर सर्वजन की आवाज अखबारों से गायब होती चली गई। पॉजिटिव न्यूज के नाम पर मूददे भूला दिए गए।

आश्य यह है कि आज कि पत्रकारिता पाठक केन्द्रित न रहकर मालिक, मालिक–सेवक, सम्पादक/पत्रकार केन्द्रित हो गई/अखबारों मे बड़ी पुंजी का हित प्रधान हो गया। प्रचार और उपहारों को

प्रमुखता मिलने लगी/इन सबका कुपरिणाम यह हुआ कि समाचार–पत्रों की मानसिक बुनावट बदल गई। अखबारों में खबरों की जगह सिकुड़ती चली गई, फलतः समाचारों की दुनिया छोटी हो गई।

आज बाजारवादी दबाव के कारण पत्रकारिता भले ही पीत,शीत,मीत और क्रीत रोगो का शिकार होकर अपने लक्ष्यों और मिशन से दखलित हो गई हो, संयम की जगह प्रभोलन के दबाव में भले ही मनोरंजन का उद्याोग बन गई हो बाजारवादी आक्रामकताओं के कारण आज पत्रकारिता भले ही पद–स्खलित हो गई हो, परन्तु उसके पास परम्परा से प्राप्त शानदार संस्कार अब भी सुरक्षित है। आज भी वह साम्प्रतिक मुद्दो और समस्याओं से टकराती है। अपनी लक्ष्य भेदी दृष्टि से एक तक तार्किक सनिधि तक पहुंचती है। आज भी उसके भीतर सर्जनात्मक ऊर्जा है, समाज सुधार का कड़वा तथा रागदीप्त सच सुरक्षित है।

आज भी वह अपनी अदम्य आशावादिता से लैस है। उपभोक्ता संस्कृति की मुक्त बाजार व्यवस्था के दबाव के बावजूद आज भी वह खोखली व्यवस्था का चेहरा बेनकाब करती है। पेड न्यूज अर्थात पैसा लेकर खबर छापने के कारण भले ही इसकी निंदा और आलोचना हुई, क्योंकि भ्रष्टाचार भी हिंसा का ही संस्करण माना जाता है – फिर भी भारतीय बुद्धि जगत से लेकर आमजनों के बीच इसके प्रति लोगों के मन में विश्वास एवं समादार बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ –

(1) आधुनिक पत्रकार कला – आचार्य रामकृष्ण खाडिलकर, पृ. 2
(2) पत्रकारिता के सिद्धांत – कमलापति त्रिपाठी, पृ. 78
(3) आधुनिक पत्रकारिता – आचार्य रामकृष्ण खाडिलकर, पृ. 2
(4) हिन्दी पत्रकारिता – डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 70
(5) साहित्यक पत्रकारिता – डॉ. राम मोहन पाठक, पृ. 19
(6) सम्पादन कला एवं फ्रूफष्ठान – डॉ. हरिमोहन पृ. 12
(7) हिन्दी पत्रकारिता – संवाद और विमर्श – कैलाश नाथ पांडेय
(8) हिन्दी पत्रकारिता – अध्ययन और आयाम – सविता चडढा
(9) पत्रिका सम्पादन कला – डॉ. रामचन्द्र तिवारी , पृ. 58
(10) हिन्दी पत्रकारिता – सविता – चढढा – पृ. 01.02.03

मो. 9617808055 , 9424237228

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 September 2025 Page No. : 202-203
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिकीकरण में संवेदनाओं का क्षीण होना

डॉ. कृष्ण कान्त भट्ट
सहायक प्रोफेसर भाषा विभाग,
सेन्ट विन्सेंट पल्लोटि कॉलेज बेंगलूरु

आज के समय में संवेदनाओं का महत्व कम हो रहा है। क्यों कि संयुक्त परिवार विकृत हो रहे हैं लोग रोजगार की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रस्थान कर रहे हैं ,इस कारण परिवार के मुख्य सदस्य दादा दादी नाना नानी से दूरियां बढ़ती जा रही है। इसी कारण से बच्चों में अपने बड़ों के प्रति सम्मान और प्यार की कमी देखने को मिलती है। आधुनिकता में सराबोर समाज किधर जा रहा है इस बात पर विचार करना परम आवश्यक है। अगर समाज आधुनिकता की दौड़ में ऐसे ही चलता रहा तो संवेदनाओं के मूल्य विलुप्त हो जाएंगे। हमारी पुरानी संस्कृति को आगे आने वाली पीढ़ीयो के लिए बचा पाना बहुत मुश्किल प्रतीत हो रहा है।आधुनिकीकरण और संवेदना के अर्थ को जानना बहुत जरूरी है। यहां हम दोनों को अलग-अलग समझने का प्रयास करेंगे।

आधुनिकीकरण का अर्थ :

व्यक्ति को समय और वातावरण की परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको अपडेट करना। जैसे प्राचीन समय में लोग युद्ध तलवार, भाले , खंजर या मल्ल युद्ध आदि तरीकों से युद्ध करते थे , और सूर्यास्त होने के बाद कोई भी किसी पर धोखे से हमला कर पराजित करने का प्रयास नहीं करता था। उस समय के लोगों में कर्तव्यपरायणता, निष्ठा , ईमानदारी एवं सम्मान की भावनाएं कूट -कूट कर भरी थी।

संवेदना का अर्थ ; जब आप दूसरे की भावनाओं को समझकर उनके साथ सामंजस्य पूर्ण व्यवहार स्थापित करें, जिससे कि उनकी भावनाओं को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचे और वह आपके समक्ष किसी प्रकार से असहज न महसूस करे।

आज के युग में इनका महत्व घटता जा रहा है। हम संवेदनाओं के बारे में बहुत कमजोर हो चुके हैं। उनके प्रति कोई लगाव नहीं रहा है, हम स्वार्थी होते जा रहे हैं। आधुनिकता की दौड़ में अन्धे होकर नैतिक मूल्यों से दूर हट कर दौड़ते जा रहे हैं। जीतने की होड़ में, संवेदनाओं को पीछे छोडते जा रहे हैं। क्या इसके परिणामों पर कुछ विचार करने आवश्यकता है ?

विश्व प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण वैश्वीकरण और सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक मांनदण्डों में परिवर्तन आ रहा है। व्यक्ति के जीने के तरीके बदल रहे है।जीवन शैली में पूर्णत: परिवर्तन होने जा रही है। संवेदनाओं के लिए लोगों के हृदय में कोई स्थान नहीं है। लोग प्रतिदिन प्रगति और शक्ति के लिए नए-नए प्रयोग कर इतिहास रचने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन संवेनाओं के प्रति लोग पूरी तरह से लापरवाह हो रहें हैं। क्यों कि आधुनिकता के नकारात्मक

पहलुओं के कारण लोग घंटों -घंटों सोशल मीडिया पर बने रहते हैं,और उन उपकरणों का सही कम ,गलत इस्तेमाल अधिक करते हैं। जिसके कारण परिवार के लोगों के साथ समय बिताने के लिए उनके पास थोड़ा समय नहीं होता। उनके इस व्यवहार से माता-पिता का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक हैं। दूसरी तरफ बच्चों के कार्य की व्यस्तता को देखते हुए समाज और परिवार को धैर्य बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

आज साधनों की सम्पन्नता के कारण हर कार्य रिमोट संचालित हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में हम देखें तो आज बहुत से स्कूल कालेजों में रोबोटिक टीचर पढ़ाने का काम कर रहे हैं। बच्चे उसके व्यवहार से खुश दिखते हैं, वह वहां पर जो देखते हैं इस तरह से उनका घर में व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। बच्चे परिवार के सदस्यों में भी रोबोट जैसे व्यवहार की कल्पना करने लगते हैं।यह सोच वास्तविक प्यार से दूर कृतिम जीवन शैली की तरफ हमें जीने के लिए प्रेरित करती दिखाई दे रही है जो हमारे लिए एक सकारात्मक कम नकारात्मक संवेदनाओं का जन्म दे रही है।मेडिकल एवं औद्यौगिक क्रान्ति के कारण,, पारम्परिक स्टाइल का लोप होने लगा है।

आज युद्ध कला में पूर्ण रूप से परिवर्तन हो चुका है, समय की मांग के अनुसार लोग तलवार के स्थान पर राइफल, मिसाईल से सज चुके हैं।आवागमन के नए साधनों में एक दूसरे को नजदीक ला दिया है। कृषि और उद्योग में क्रांति होने के कारण हम स्वयं पर निर्भर हो गए। नए-नए वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा हमारे पारम्परिक साधन खत्म हो गए हैं , व्यक्ति की आपसी मानसिक दूरियां बढ़ गई है। लोगों ने शारीरिक श्रम करना छोड़ दिया है। वह शारीरिक रूप से कमजोर हो गए हैं। अनेक प्रकार की बीमारियों ने उन्हें दबोच लिया है। विशेष तौर से मानसिक बीमारी , जिसे हम संवेदना का क्षीण होना भी कह सकते हैं।

आज के समय में लोगों के पास समय बहुत कम है वह कितने व्यस्त रहते हैं इसका एहसास सिर्फ उन्हीं को होता है। घर की परंपराओं मान मर्यादाओं सामाजिक कार्यों सहानुभूति के लिए किसी के पास शायद ही कुछ समय होगा जो अपने माता-पिता के लिए चंद मिनट निकाल कर उनसे प्यार के शब्दों में बातें कर उनके हृदय को शांत पहुंचने का प्रयास करते होंगे। ऐसे लोगों की संख्या मेरी अपने विचार से सर्वे करने से बहुत कम होगी , आज मां, को खाने के लिए फोन से बुलाया जाता है। लेकिन प्राचीन समय में सभी अपने बुजुर्गों को पहले खाना खिलाते थे परिवार का मुखिया होने का उन्हें एहसास दिलाते थे। उनकी इच्छानुसार कार्य करते थे। उनके सम्मान का पूरा पूरा खयाल करते तत्पश्चात खुद भोजन करने बैठेते थे। बच्चों के पास समय नहीं है , कि वह अपने मां-बाप के पास बैठ कर कुछ बात कर सके और उनके मन के विचारों को तवज्जो देते हुए कुछ सीखे।

इसीलिए माता-पिता, समाज के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता का ह्रास हो रहा हैं। हमें आधुनिक शैली जीने के साथ-साथ सामाजिक संवेदनाओं को जागृत करने की आवश्यकता है। माता-पिता की जिम्मेदारी है कि वह अपने बच्चों के लिए, समाज के नव निर्माण लिए समय अवश्य निकाले , अपने बच्चों को संवेदनशील बनाते हुए , रोबोट बनने की कल्पना से दूर रखने का प्रयास करें ; तभी हमारे जीवन में संवेदनाओं का क्षीण होना रूक सकेगा। आज विश्व में भारत का डंका बज रहा है, उसके लिए हमारे अविष्कारक एवं सरकारी तंत्र जिम्मेदार है। जिनके प्रयास से डीजिटल भारत बन रहा है। लेकिन सामाजिक संवेदनाओं का ह्रास हो रहा है।

अंत में हम कह सकते हैं की यदि हमें संवेदनशील व्यक्तियों का निर्माण करना है तो आधुनिकीकरण के साथ-साथ पारिवारिक और सामाजिक संवेदनाओं का भी ध्यान रखना पड़ेगा, जिससे बच्चे आने वाली पीढ़ी में अच्छे नागरिक बनकर नए समाज का निर्माण कर सकें, जो भारत की प्राचीन धार्मिक सहनशील परंपरा है।

डॉ. कृष्ण कान्त भट्ट
एस वी पी सी बंगलौर कर्नाटक